Only for Private Circulation

टिळक महाराष्ट्र विद्यापीठ

गुलटेकडी, पुणे-४११०३७

दूरशिक्षण विद्याशाखा

हिंदी साहित्य का इतिहास

H-203

मार्गदर्शक पुस्तिका

एम. ए. हिंदी - भाग २

प्रस्तावना

दूर शिक्षा की व्याप्ती असीम है । इसने उन लोगों के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिये हैं, जिन्हे उच्च शिक्षा का मौका नकारा गया । आज जब कि ग्यान का लगातार बढना समय के साथ रहेने के लिए अनिवार्य है, दूर शिक्षा तेजी से होते तकनिकी विकास की सहायता से सभी सीमाएं लांघ रही है । छात्र भले ही दुरी पर हों हमारें विद्वान प्राध्यापकों द्वारा रचित अध्ययन साहित्य उनको शिक्षा का एक परिपूर्ण अनुभव देगा ।

एम. ए. हिंदी भाग २ में आप कुछ आधुनिक कवियों की रचनाओं को पढेंगे । इस के अलावा इस साल आप हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करेंगे जो विविध काल में रचि सभी प्रकार के हिंदी साहित्य का ब्योरा लेगा । 'भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा' यह विषय आपको हिंदी भाषा के तत्त्व और घटकों से अवगत कराएगा । तथा 'अनुवाद विज्ञान' यह वैकल्पिक विषय आपको भाषा के एक नए पहेलू और कार्य से परिचित कराएगा ।

यह अध्ययन साहित्य परीक्षा में आपकी मदद करने के साथसाथ आपमें हिंदी के आधुनिक काव्य तथा हिंदी साहित्य के इतिहास के प्रति रुचि निर्माण करे, आपको हिंदी भाषा के विविध तत्त्वों, घटकों तथा पहेलूओं के प्रति सजग बनाए इस आशा के साथ हम यह अध्ययन साहित्य आपको सौंप रहे हैं ।

हम विद्यापीठ के मा. कुलगुरू डॉ. दीपक तिलक, दूरशिक्षण विद्याशाखा के अधिष्ठाता श्री. रत्नाकर चांदेकर तथा कुलसचिव, डॉ. उमेश केसकर इनके आभारी हैं जिन्होंने हर कदम पर हमें प्रोत्साहित किया तथा हमारा मार्गदर्शन किया ।

अपनी व्यस्तता से समय निकालकर इस अध्ययन साहित्य को तय्यार करनेवाली डॉ. यश:श्री कर्वेजी के भी हम बहुत आभारी हैं ।

आप सभी को हार्दीक शुभकामनाएँ ।

प्रा. नीलिमा मेहता
विभागप्रमुख, दूरशिक्षण विद्याशाखा

-: मंतव्य :-

'हिंदी साहित्य का इतिहास' यह पुस्तिका पूरी करके आपतक पहूँचाते हुए संतोष हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तिका लिखते समय छात्रों को युगीन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के आधार पर हिंदी साहित्य के इतिहास का परिचय होगा।

हिंदी गद्य के आविर्भाव के प्रमुख कारण मालूम होंगे तथा तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान होगा। हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं के विकास की कड़ियों के साथ-साथ हिंदी कविता के प्रमुख चरणों की प्रवृत्तियों, सीमाओं से परिचित किया जाएगा।

वस्तुतः यह काम काफी विस्तृत मात्रा में किया गया। परंतु आपके सामने इस पुस्तिका में 'गागर में सागर' भरकर रखते हुए विश्वास है, आप इसके अध्ययन से हिंदी साहित्य के इतिहास को जान जाऐंगे।

डॉ. यशःश्री कर्वे

अनुक्रम

क्र.	पाठ	
1.	हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा का सामान्य परिचय	5
2.	हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन	8
3.	आदिकालीन परिस्थितियाँ	11
4.	रासो काव्य की परंपरा	14
5.	गोरखनाथ, चंदबरदाई, खुसरो, विद्‌यापति का साहित्यिक परिचय	18
6.	भक्तिकाल	22
7.	निर्गुण भक्ति साहित्य और उसकी शाखाएँ	24
8.	सगुण भक्ति साहित्य और उसकी शाखाएँ	29
9.	भक्तिकालीन नीति-साहित्य का सामान्य परिचय	32
10.	भक्तिकालीन कवियों का सामान्य परिचय	35
11.	भक्तिकालीन प्रतिनिधि कवियों का सामान्य परिचय	40
12.	रीतिकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ	43
13.	रीतिकालीन साहित्य पर संस्कृत साहित्य तथा भक्तिकालीन हिंदी साहित्य का प्रभाव	46
14.	रीतिकालीन साहित्य : रीतिबद्‌ध, रीतिसिद्‌ध तथा रीतिमुक्त की विषयवस्तु तथा शैलीगत प्रवृत्तियाँ	49
15.	रीतिकालीन साहित्य में शृंगार वर्णन	53
16.	रीतिकाल में शृंगारेतर साहित्य : भक्ति-नीति-वीर	55
17.	रीतिकालीन प्रमुख कवियों का परिचय	59
(क)	आधुनिक काल	64
	1. हिंदी गद्‌य के लिए कारणीभूत परिस्थितियाँ	65
	2. भारतेंदुयुगीन हिंदी गद्‌य साहित्य का स्वरूप और विशेषताएँ	68
	3. द्‌विवेदीयुगीन हिंदी गद्‌य साहित्य का स्वरूप और सामान्य विशेषताएँ	73
(ख)	1. हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास	77
	2. कहानी विधा का उद्‌भव तथा विकास	85
	3. हिंदी नाटक का उद्‌भव और विकास	101
	4. हिंदी निबंध का विकास	110
	5. आलोचना : उद्‌भव तथा विकास	121
	6. आधुनिक हिंदी काव्य का विकास	128
	प्रश्नमंजुषा	157
	संदर्भ ग्रंथ	160

प्रकरण 1
हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन की परंपरा का सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखन का सबसे पहला प्रयत्न एक फ्रेंच विद्वान गासा-द-तॉसी का ही समझा जाता है। जिन्होंने फ्रेंच भाषा में 'इस्त्वार द ला सितरेत्युर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' ग्रंथ लिखा। इस ग्रंथ में हिंदी और उर्दू के अनेक कवियों का विवरण वर्णक्रमानुसार दिया गया है। इसका प्रथम भाग 1839 में तथा द्वितीय भाग 1847 में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ का महत्व केवल इसी दृष्टि से है कि इसमें हिंदी काव्य का सर्वप्रथम इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

तॉसी के पश्चात सन 1889 में शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें एक हजार कवियों का जीवन-चरित्र उनकी कविताओं के उदाहरणसहित प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। परंतु इतिहास की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्व अधिक नहीं है। इसमें दिए गए कवियों के जन्मकाल, रचनाकाल बहुत विश्वसनीय नहीं हैं।

सन 1888 में एशियाटीक सोसायटी ऑफ बंगाल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित 'द मॉडर्न वर्नेक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' का प्रकाशन हुआ, जो नाम से 'इतिहास' न होते हुए भी सच्चे अर्थ में हिंदी साहित्य का पहला इतिहास कहा जा सकता है। इसकी विशेषता यह है कि संस्कृत, प्राकृत भाषा साहित्य तथा अरबी फारसी अलग कर, केवल हिंदी साहित्य का विचार इसमें किया गया है। विचारों की स्पष्टता के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में ग्रियर्सन सफल रहे हैं। इस ग्रंथलेखन के आधार स्त्रोत के रूप में तॉसी तथा शिवसिंह सेंगर के ग्रंथो के अतिरिक्त भक्तमाल, गोसाई चरित्र, हजारा काव्यसंग्रह आदि रचनाओं का भी संदर्भ लिया गया है। ग्रियर्सन के ग्रंथलेखन में तटस्थता, प्रामाणिकता और ईमानदारी का बोध होता है, जो किसी भी इतिहासकार के लिए आवश्यक है। विभिन्न युगों की काव्य प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए उनसे संबंधित सांस्कृतिक परिस्थितियों और प्रेरणा-स्त्रोतों के भी उद्घाटन का प्रयास उनके द्वारा हुआ है। उन्नीसवी सदी के अंतिम चरण में हिंदी भाषा एवं उसके काव्य की स्पष्ट, सूक्ष्म एवं प्रामाणिक, ऐतिहासिक व्याख्या प्रस्तुत कर देना ग्रियर्सन की अद्भुत प्रतिभा-शक्ति एवं गहन अध्ययनशीलता को प्रमाणित करता है। ग्रंथ अंग्रेजी में लिखने के कारण हिंदी के अभ्यासकों का केंद्र नहीं बन पाया।

मिश्र बंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' नाम से चार भागों में हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा। इनमें से तीन भाग 1913 ई. में तथा चौथा भाग 1934 में प्रकाशित हुआ। इतिहास के रूप में इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें कवियों के विवरणों के साथ-साथ साहित्य के विविध अंगों पर प्रकाश डाला गया है। इतिहास लेखन की पूर्व परंपरा को आगे बढ़ाने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा सन 1929 में रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य के इतिहास की परंपरा में सर्वोच्च स्थान पर माना जाता है। आचार्य शुक्ल ने इस ग्रंथ में विकासवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोन का परिचय दिया है। उन्होंने साहित्य के इतिहास के प्रति एक निश्चित व सुस्पष्ट दृष्टिकोन का परिचय देते हुए युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकासक्रम की व्याख्या करने का प्रयास किया। इतिहास के मूल विषय को आरंभ करने से पहले

'काल-विभाग' के अंतर्गत हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के इतिहास को चार सुस्पष्ट कालखंडों में विभाजित किया। अभ्यासकों में यह विभाजन आज भी बहुप्रचलित और बहुमान्य है।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में आचार्य शुक्ल के बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का नाम आता है। आचार्य द्विवेदी ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य उद्भव और विकास', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' आदि रचनाएँ की। हिंदी साहित्य के अभ्यासकों के लिए एक व्यापक एवं संतुलित इतिहास-दर्शन की भूमिका तैयार की। ऐतिहासिक चेतना तथा पूर्व परंपरा को हिंदी के सबसे अधिक सशक्त इतिहासकार बनाती हैं। उन्होंने पूर्ववर्ति सांस्कृतिक धाराओं, सरणियों और पद्धतियों का गंभीर अनुशीलन किया तथा मध्यकालीन जनमानस की भावधाराओं का भी अध्ययन किया। इसी कारण उनके इतिहास लेखन में उनके विचार व्यवस्थित और पुष्ट रूप में प्रयुक्त हुए। उनके इतिहास की रूपरेखा, काल विभाजन पद्धति व काव्यधारा की नियोजना बहुत कुछ आचार्य शुक्ल के इतिहास के अनुरूप मिलती हैं।

सन 1938 में डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' लिखा। सन 693 ई. से सन 1693 ई. तक का समय इसमें निहित हैं। संपूर्ण ग्रंथ को सात प्रकरणों में विभक्त करते हुए आचार्य शुक्ल के ही वर्गीकरण का अनुसरण किया गया है। कवियों के मूल्यांकन में डॉ. वर्मा ने अधिक सहृदयता और कलात्मकता का परिचय दिया है। सरस और प्रवाहपूर्ण लेखनशैली के कारण उनका इतिहास पर्याप्त लोकप्रिय हुआ है।

विभिन्न विद्वानों के सामूहिक सहयोग के आचार पर लिखित इतिहास ग्रंथों में 'हिंदी साहित्य' भी उल्लेखनीय हैं, जिसका संपादन डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने किया है। इसमें अपूर्ण हिंदी साहित्य को तीन कालों - आदिकाल, भक्तिकाल एवं आधुनिक काल में विभक्त करते हुए प्रत्येक काल की काव्य परंपराओं का विवरण अविच्छिन्न रूप में प्रयुक्त किया गया हैं। विभिन्न अध्यायों में विभिन्न लेखकों ने इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियों और पद्धतियों का उपयोग किया हैं, जिससे इसमें एकरूपता, संश्लेषण का अभाव दिखाई देता है। फिर भी हिंदी साहित्य की इतिहास लेखन की परंपरा में इसका विशिष्ट स्थान है।

उपर्युक्त इतिहास ग्रंथों के अतिरिक्त भी अनेक शोध प्रबंध और समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गए हैं जो हिंदी साहित्य के संपूर्ण इतिहास को तो नहीं, किंतु उसके किसी एक पक्ष, अंग या काल को नई दृष्टि प्रदान करते हैं। इनमें से महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं - डॉ. भगीरथ मिश्र का 'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास', डॉ. नगेंद्र की 'रीतिकाव्य की भूमिका', श्री परशुराम चतुर्वेदी का 'उत्तरी भारत की संत परंपरा', श्री प्रभुदयाल मीतल का 'चैतन्य संप्रदाय और उसका साहित्य', डॉ. विजयेंद्र स्नातक का 'राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य', श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र का 'हिंदी साहित्य का अतीत', श्री चंद्रकांत बाली का 'पंजाबप्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास', डॉ. टीकमसिंह तोमर का 'हिंदी वीरकाव्य', डॉ. नलिन विमोचन शर्मा का 'साहित्य का इतिहास दर्शन' आदि सौ से भी अधिक शोध प्रबंध हिंदी साहित्य के इतिहास पर लिखे गए हैं, जिनके द्वारा हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडों, काव्यरूपों तथा काव्यधाराओं पर प्रकाश पड़ता है।

इसप्रकार गार्सा तॉसी से लेकर अबतक की परंपरा के संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि लगभग एक शताब्दी की अविधि में हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन अनेक दृष्टियों, रूपों और पद्धतियों का आकलन और समन्वय करता हुआ संतोषजनक प्रगति कर गया है।

डॉ. नगेंद्र ने हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन के आधार पाँच वर्गों में विभक्त किए हैं।

1. साहित्यकारों की प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाएँ।
2. साहित्यकारों और साहित्यिक रचनाओं का परिचय प्रस्तुत करनेवाली कृतियाँ।
3. साहित्य के विभिन्न अंगो, रूपों, धाराओं और प्रवृत्तियों की व्याख्या से संबंधित आलोचनात्मक व अनुसंधानपरक ग्रंथ।
4. प्राचीन साहित्यकारों के काल निर्धारण व रचनाकाल के निर्णय में योग देनेवाली ऐतिहासिक सामग्री जैसे शिलालेख, वंशावलियाँ, प्रामाणिक उल्लेख आदि।
5. विभिन्न युगों की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री।

* * *

प्रकरण 2
हिंदी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन, काल-विभाजन के आधार, भाषा, साहित्य, भाषाक्षेत्र

आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य के इतिहास की व्याख्या इस प्रकार करते हैं - "जनता की चित्तवृत्तियों की परंपरा के साथ साहित्य परंपरा का सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास है।" प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंततक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।

-: हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन :-

हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने में सुविधा तथा स्पष्टता लाने के लिए उसका काल-विभाजन करना आवश्यक था। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में काल विभाजन के लिए प्रायः चार पद्धतियों का अवलंब किया गया हैं। पहली पद्धति के अनुसार संपूर्ण इतिहास का विभाजन चार युगों या कालखंड़ों में किया गया है -

1. आदिकाल :- संवत् 1050 से 1375 तक
2. भक्तिकाल :- संवत 1375 से 1700 तक
3. रीतिकाल :- संवत 1700 से 1900 तक
4. आधुनिक काल :- संवत 1900 से अब तक।

आचार्य शुक्ल और उनके अनुसरण पर नागरी प्रचारिणी सभा के इतिहासों में इसी को ग्रहण किया है।

दूसरी पद्धति के अनुसार केवल तीन युगों की कल्पना ही विवेक संमत हैं -

1. आदिकाल
2. मध्यकाल
3. आधुनिक काल।

इसमें सिर्फ समय के निर्धारण पर साहित्य का विभाजन किया गया है।

तीसरी पद्धति में साहित्य का विभाजन विधा-क्रम से हुआ है। समस्त साहित्य का एकत्र अध्ययन करने की अपेक्षा कविता तथा गद्य साहित्य की विविध विधाओं के इतिहास का वर्गीकृत अध्ययन साहित्यशास्त्र के अधिक अनुकूल है। इस प्रकार के अनेक खंड इतिहास में उपलब्ध हैं।

चौथी पद्धति एक सरल पद्धति है, जो शुद्ध कालक्रम के अनुसार वस्तुगत विभाजन को ही अधिक यथार्थ मानती है। इसके प्रवक्ताओं के विचार से किसी विचारधारा या साहित्यिक दृष्टिकोण का आरोपण करना उचित नहीं है। अंतः स्वाभाविक कालक्रम के अनुसार ही सामग्री का विभाजन करना योग्य होता है। इस पद्धति का अवलंब आरंभ में विदेशी विद्वानों द्वारा हुआ।

इन सभी पद्धतियों के अपने गुण दोष हैं। इसलिए समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाना ही श्रेयस्कर है। साहित्य के काल विभाजन में ऐतिहासिक कालक्रम और साहित्य विधा दोनों का आधार ग्रहण करना होगा। इस समन्विति पद्धति को स्वीकार कर लेने पर हिंदी साहित्य के काल विभाजन की समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है।

आचार्य शुक्ल जी ने अपने काल विभाजन एवं नामकरण का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है - "यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही इनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी काल में और प्रकार की रचनाएँ होती ही नहीं थी।" भक्तिकाल में वीर रस की काव्यरचनाएँ निर्माण हुई थी तथा वीरगाथा काल में शृंगारिक या भक्तिरसपूर्ण रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। परंतु विशिष्ट काल में विशिष्ट प्रवृत्ति वाली रचनाएँ उपलब्ध होती हैं, जिनके आधार पर उस काल का नामकरण या विभाजन किया गया हैं।

-: आदिकाल या वीरगाथा काल :-

हिंदी साहित्य के आदिकाल का नाम आचार्य शुक्ल जी ने 'वीरगाथा काल' रखा है। शुक्ल जी के बाद आदिकालीन साहित्य की गहरी खोज हुई है। जिसके परिणामस्वरूप 'वीरगाथा काल' यह नाम उपयुक्त नहीं ठहरता। शुक्ल जी ने इस काल के जिन बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है, उनमें से कई रचनाएँ वीर रस से संबंधित नहीं हैं। विद्यापति पदावली और कीर्तिपताका - प्रेम, शृंगार तथा भक्तिरस से ओतप्रोत हैं। अमीर खुसरों की पहेलियों का वीर रस से कोई संबंध नहीं हैं। इस काल की विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो आदि रचनाएँ वीररस से भरी हुई हैं। इस काल के समूचे साहित्य का अध्ययन करने पर हमें चार प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं -

1. बौद्ध, नाथसिद्ध तथा जैन मुनियों की उपदेशमूलक रूक्ष रचनाएँ।
2. वीरत्व के नवीन स्वर को मुखरित करने वाले चारण-चरित-काव्य।
3. लौकिक रस से अनुप्रणित अन्य रचनाएँ। जैसे - विरहकाव्य।
4. फुटकल अन्य विषयों की कविता। जैसे - अमीर खुसरो की पहेलियाँ।

इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर हम इस काल का नामकरण 'आदिकाल' रख सकते हैं। आदिकाल के नामकरण से इस काल की साहित्य-रचना की प्रवृत्तियों का लक्षण निरूपण नहीं होता हैं। यह तो हिंदी भाषा के साहित्य का आदिकाल है। परिनिष्ठित अपभ्रंश की साहित्यिक रूढ़ियाँ एवं परंपराएँ आदिकालीन साहित्य में सुधर रूप में प्रतिफलित हुई हैं। आचार्य शुक्ल ने विद्यापति को आदिकाल का प्रमुख कवि माना है। विद्यापति की रचनाओं में अपभ्रंश की परंपरा भी है और देशभाषा का स्वरूप भी स्पष्ट हुआ है।

-: भक्तिकाल :-

चौदहवीं शताब्दी से सोलहवी शताब्दी के मध्यभाग या सतरहवी शताब्दी के आरंभ तक के 'हिंदी साहित्य के इतिहास' को भक्तिकाल की संज्ञा दी जाती है। इस काल की रचनाओं में भक्ति का विविध रूपों में विकास हुआ है। इस साहित्य में भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है। बाबू श्यामसुंदर दास ने कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास जैसे महान कवियों के इस काल को 'स्वर्णयुग' कहा है। इस काल में अनेक संप्रदाय होने के कारण भक्तकवियों में भक्तिभावना विषयक पर्याप्त मतभेद दिखाई देते हैं। लेकिन सभी संप्रदायों की मूल प्रेरणा भक्तिभावना ही थी। इसीलिए कवियों में मतभिन्नता होते हुए भी साहित्य का मूलाधार भक्तिभाव ही रहा है। अतः इस साहित्य के रचनाकाल को 'भक्तिकाल' कहा जाता है। इस काल में भक्ति की चार विभिन्न धाराएँ प्रवाहित हुई हैं। पहली निर्गुणपंथी ज्ञानाश्रयी धारा, जिसके प्रवर्तक एवं समर्थक कबीर आदि संत हैं। दूसरी प्रेममार्गी सूफी धारा, जिसके प्रवर्तक एवं समर्थक जायसी

आदि सूफी कवि हैं। तीसरी सगुण भक्ति की राममार्गी धारा जिसके प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे। सगुण भक्ति की कृष्णभक्ति की धारा, जिसके प्रवर्तक थे, वल्लभाचार्य, तुलसी, सूरदास आदि आचार्य एवं कवि। चौथी शांतरसमूलक जैन भक्तिकाव्य धारा जिसमें वीतराग भगवान जिनेंद्र के गुणों का अनुचिंतन मिलता हैं।

-: रीतिकाल या शृंगारकाल :-

सोलहवी शताब्दी के मध्य से उन्नीसवी शताब्दी के मध्यभाग तक रीतिकाव्य की परंपरा मानी जाती है। आचार्य शुक्ल ने इस काल में रीति-ग्रंथों की अधिकता देखकर इस काल का नामकरण 'रीतिकाल' किया है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल के काव्य को दो भागों में विभक्त किया है - रीतिसिद्‌ध या रीतिबद्‌ध तथा रीतिमुक्त या स्वच्छंद प्रेमधारा। रीतिबद्‌ध कवियों में बिहारी, केशव, देव, मतिराम आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने अपने काव्य में रीति प्राचीन परिपाटी का, नियमों का पालन किया है। रीतिमुक्त या स्वच्छंद प्रेमधारा के प्रमुख कवि हैं- घनानंद, ठाकुर, बोधा, द्‌विजदेव और आलम हैं। इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने पर इस काल का 'शृंगारकाल' नाम उपयुक्त जान पड़ता है। इस काल की कुछ और भी विशेषताएँ हैं। इस काल में भूषण जैसे वीर रस के सिद्‌ध कवि भी हुए हैं। गिरीधर, वृंद बैताल जैसे नीति के दोहे, छप्पय एवं कुंडलियाँ लिखने वाले कवि भी दिखलाई देते हैं। इस काल में प्रबंध काव्य चरितकाव्यों की परंपरा भी बराबर चलती रही। जैसे - सूदन कवि का 'सूजानचरित' काव्य तथा लाल कवि का 'छत्रप्रकाश'। इसप्रकार विविध प्रवृत्तियों का विकास इस युग में दिखाई देता हैं।

-: आधुनिक काल या गद्‌यकाल :-

आचार्य शुक्ल ने स. 1900 से 1948 तक के काल को हिंदी साहित्य रचना के आधुनिक काल को 'गद्‌यकाल' की संज्ञा दी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्‌विवेदी ने 1800 ई. से 1952 तक के साहित्य काल को 'आधुनिक काल' माना है। इस काल के साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता गद्‌य का विकास है। किंतु इस काल में काव्य का भी विकास हुआ है। इस काल की कविता में विविध वादों के दर्शन होते हैं। इन वादों का क्रमिक विकास इस प्रकार हुआ है - छायावाद, अभिव्यंजनावाद, हालावाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, प्रतीकवाद, प्रयोगवाद आदि। आधुनिक काल अनेक प्रकार की प्रवृत्तियों से भरा है। काव्य की प्रवृत्तियों के आधार पर आधुनिक काल के साहित्य का विवेचन इस प्रकार हुआ है - भारतेंदु युग, द्‌विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगशील युग आदि। इसी प्रकार गद्‌य के विभिन्न आकार-प्रकार के आधार पर उसकी विभिन्न विधाओं - उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, आलोचना इत्यादि के उद्‌भव एवं विकास का अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैं।

इसप्रकार हिंदी साहित्य के काल विभाजन से समय या काल की निश्चित अवधि की सूचना नहीं मिलती। प्रत्येक काल में सभी प्रकार की रचनाएँ होती रही हैं, किंतु फिर भी कुछ विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्राचुर्य लक्षित होता है। उन्हीं के आधार पर उस काल की साहित्यिक महत्ता का विवेचन होता है।

* * *

प्रकरण 3

आदिकालीन परिस्थितियाँ - धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और उनका तत्कालीन साहित्यपर प्रभाव

हिंदी भाषा ने स्थान और काल के भेद से अपनी दीर्घ यात्रा में अनेक रूप धारण किए हैं। मगही, मैथिली, मारवाड़ी, भोजपुरी, अवधी, कन्नौजी, बघेलखंडी, बुंदेलखंडी, ब्रज, खड़ीबोली, बांगरू, मेवाती, हाडौती, मेवाड़ी, ढूंठारी, मालवी, भीली, खानदेशी, पहाड़ी आदि उसके अनेक रूपभेद पाए जाते हैं। किंतु इन सब में तात्विक समानता पाई जाती है। अतः भाषा के रूपभेद को भूलाकर तात्विक परिवर्तन के आधार पर ही एक भाषा के अंत और दूसरी भाषा के आरंभ का इतिहास स्वीकार करना अधिक उचित प्रतीत होता हैं। इसी दृष्टि से अपभ्रंश को एक अलग भाषा मानकर उसके समानांतर तात्विक आधार पर भिन्न रूप में विकसित भाषा को अलग नाम देने की आवश्यकता है। अपभ्रंश अपने मूल रूप में ही पंद्रहवी शताब्दी तक साहित्य की भाषा बनी रही। इसी भाषा को विद्वानों ने 'उत्तर अपभ्रंश' या 'पुरानी हिंदी' कहा है, तो कुछ विद्वानों ने 'अवहट्ठ' नाम दिया है।

आचार्य शुक्ल, डॉ. श्यामसुंदर दास तथा डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वान मानते हैं कि, दसवी से चौदहवी शताब्दी का काल, जिसे 'आदिकाल' कहते हैं, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही बढ़ाव है। आठवी शती से चौदहवी शती के कालखंड को इतिहासकारों ने 'आदिकाल' नाम दिया है। इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिसपर आगे का साहित्य खड़ा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 993 ई. से 1318 ई. तक के कालखंड को 'वीरगाथा काल' नाम दिया है। कवि की मनोवृत्तियों के परिवर्तन को आधार बनाकर दिया हुआ यह वीरगाथा काल नाम तर्कसंगत तो है, परंतु उसकी परिधि बहुत संकीर्ण हो जाती है। इसलिए 'आदिकाल' ही सबसे अधिक उपयुक्त एवं व्यापक नाम है।

साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत महत्व है। किसी भी काल के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उस परिवेश को सही प्रकार से समझना अत्यंत आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के इतिहास के साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को जानना अपेक्षित है।

-: धार्मिक स्थिति :-

आदिकाल के आरंभ में धार्मिक वातावरण शांत था। वैदिक यज्ञ, मूर्तिपूजा तथा जैन और बौद्ध उपासना पद्धतियाँ साथ-साथ चल रही थी। सातवी शताब्दी के साथ देश की धार्मिक स्थिति में परिवर्तन आरंभ हुआ। आलंबार और नायंबार संत दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर एक धार्मिक आंदोलन लाए। उस समय वैष्णव मत प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। शैव मत और जैन मत में टकराव शुरु हुआ। बारहवी शताब्दी तक वैष्णव आंदोलन तीव्र होने लगा। जैन मत के प्रचारकों की शक्ति घटने लगी। राजपूत राजा अहिंसामूलक मतों में विश्वास नहीं करते थे। उन पर शैव मत का प्रभाव अधिक था। उत्तर भारत में धीरे-धीरे शैव मत बौद्ध एवं स्मार्त प्रभावों को स्वीकार करता हुआ एक नया रूप लेने लगा। नाथ मत का उदय इसी रूप में हुआ। जनता हिंदु साधुओं की जितनी प्रतिष्ठा करती थी, उतनी ही प्रतिष्ठा बौद्ध सन्यासियों की भी करती थी। परंतु व्यभिचार, आडंबर, अर्थलोभ आदि दोष बौद्ध विहार और हिंदु मंदिर दोनों में आ गए। मंत्र-तंत्र, जादू-टोने के भय से जनता में आत्मविश्वास कम होने लगा। धार्मिक अशांति के इस समय में एक बाहरी धर्म, इस्लाम का प्रवेश बहुत महत्व रखता है। अशिक्षित जनता के सामने अनेक धार्मिक राहे बनती जा रही थी

किंतु राह दिखाने वाले लोग ईमानदार नहीं थे। नास्तिकता-आस्तिकता का आवरण ओढ़कर जनता में भ्रांति उत्पन्न कर रही थी। हर धर्म का मूल रूप लुप्त होकर, साधना पद्धतियों में भी भ्रम की अवस्था निर्माण हुई थी। तात्पर्य यह है कि आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यंत विषम तथा असंतुलित थी, भ्रम छाया हुआ था। कवियों ने इसी मानसिक स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं शृंगार का साहित्य लिखा।

-: राजनीतिक स्थिति :-

आठवी शताब्दी से लेकर चौदहवी शताब्दी तक की आदिकाल की राजनीतिक स्थिति याने हिंदू सत्ता धीरे-धीरे खत्म होने तथा इस्लाम सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की करुण कहानी है। इस काल के आरंभ में सम्राट हर्षवर्धन ने उत्तरी भारत पर आए यवन आक्रमण का दृढ़ता से सामना किया। हर्षवर्धन के मृत्यु के बाद भारत की संगठित सत्ता बिखर गई। राजपूत राजाओं ने भी इस्लाम की विशाल सत्ता से निरंतर युद्ध किया परंतु अंततः विजय इस्लामी साम्राज्य की हुई। यवन शक्तियों के आक्रमण का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम एवं मध्य प्रदेश पर पड़ा था। इन्हीं क्षेत्रों की जनता युद्धों तथा अत्याचारों से विशेषतः आक्रांत हुई थी। इसी क्षेत्र में हिंदी भाषा का विकास हो रहा था। अतः इस काल का समस्त हिंदी साहित्य आक्रमण और युद्ध के प्रभावों की मनःस्थितियों का फलस्वरूप है। जनता में एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जो साहस और वीरता के साथ लड़ते हुए जीना चाहता था, तो दूसरा एक ऐसा वर्ग या जो यह विनाशलीला देखकर संसार त्यागने की बातें सोचने लगा। इन्हीं परस्पर विरोधी प्रवाहों का प्रतिबिंब आदिकालीन साहित्य में मिलता हैं। अराजकता, गृहकलह, विद्रोह, आक्रमण आदि में कवि आध्यात्मिक जीवन की बाते करता था, तो दूसरा मरते-मरते भी जीवन का रस भोग लेना चाहता था। तीसरा कवि तलवार के गीत गाकर गौरव के साथ जीना चाहता था। यहीं इसी काल की राजनीतिक परिस्थितियों की विचित्र देन हैं, जिसके फलस्वरूप स्त्रीभोग, हठयोग से लेकर आध्यात्मिक पलायनवादी तथा आध्यात्मिक उपदेशों का साहित्य लिखा गया। दूसरी ओर ईश्वर की लोक कल्याणकारी सत्ता में विश्वास करने, लड़ते-लड़ते जीने और संसार को सरस बनाने की भावना भी साहित्य रचना का स्त्रोत बनी।

-: सामाजिक स्थिति :-

पूर्वोक्त राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देश की सामाजिक परिस्थितियों पर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा था। जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से पीड़ित थी। युद्धों के समय उसे बूरी तरह पीसा जाता था। वह ईश्वर की ओर दौड़ती थी, तो सर्वत्र भ्रम और असहायता की स्थिति मिलती थी। जाति-पाति के बंधन कड़े होते जा रहे थे। उच्चवर्ण के लोग भोग करने के लिए तथा निम्नवर्ण के लोग श्रम करने के लिए पैदा हुए थे। नारी को कोई सन्मान नहीं था। वह केवल क्रय-विक्रय एवं अपहरण की वस्तु बनती जा रही थी। सामान्य लोगों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। सांप्रदायिक तणाव बढ़ने के कारण साहित्य और शास्त्र का ज्ञान सामान्य जाति की स्त्री-पुरुषों के लिए अप्राप्य बना दिया गया था। सतिप्रथा का चलन जोर पकड़े हुए था। अतः स्त्री के लिए पुरुष का जीवन और मृत्यु दोनों ही भयंकर घटना बने थे। अनेक प्रकार के अंधविश्वास बढ़ते जा रहे थे। साधु-संन्यासियों के शापों और वरदानों की ओर लोगों की दृष्टि रहने लगी थी। योगियों का गृहस्थों पर भयंकर आतंक छाया हुआ था। जीवन यापन के साधन दुर्लभ होते जा रहे थे तथा निर्धनता सदा घेरे रहती थी। कई प्रकार के पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र, जप-तप करके लोग दुर्भिक्ष, युद्ध और महामारियों के संकट टाल नहीं पाते थे। सामाजिक परिस्थिति की इस विषमता में जीने वाली जनता भाव के स्तर पर निरंतर ऐसे विचारों की प्यासी रहती थी, जो उसे सांत्वना देकर मानसिक शांति की ओर बढ़ा सके। हिंदी के कवियों को जनता की इसी स्थिति के अनुसार काव्यरचना की निर्मिति करनी पड़ी।

-: सांस्कृतिक और साहित्यिक स्थिति :-

आदिकाल को भारतीय संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति इन दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ऱ्हास-विकास की गाथा कहा जा सकता है। भारत में मुस्लिम संस्कृति के परिवेश के समय यहाँ की विभिन्न जातियों, मतों, आचारों-विचारों आदि में दीर्घकाल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहूँच रही थी। हर्षवर्धन के विशाल साम्राज्य ने हिंदू धर्म और संस्कृति को राष्ट्रव्यापी एकता का आधार दिया था। संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला आदि कलाओं में जातीय गौरव की भावना अभिव्यक्त हो रही थी। स्थापत्य के क्षेत्र में विशेषतः मंदिरों का निर्माण धार्मिक सद्‌भाव का द्‌योतक था। भुवनेश्वर, खजुराहो, पुरी, सोमनाथपुर, बेतौर, कांची, तंजौर आदि स्थानों पर अनेक भव्य मंदिर आदिकाल के आरंभ के समय ही बनाए गए थे। सभी कलाओं में कलाकार अपनी धार्मिकता की ही अभिव्यक्ति करते थे।

आदिकाल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है, वह मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है। तत्कालीन जनजीवन के हर स्वरूप पर मुस्लिम संस्कृति की छाप मिलती है। उत्सव, मेले, परिधान, आहार, विवाह, मनोरंजन आदि सब में मुस्लिम रंग मिल गया है। आदिकाल के आरंभ तक निर्मित मूर्तिकला धर्म से प्रभावित थी। मुस्लिम शासक मूर्तिपूजा के विरोधी थे। उन्होंने हिंदुओं के मंदिर और मूर्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट कर दी। नई मूर्तिकला निर्माण होने की संभावना भी कम हो गई। इस प्रकार भारतीय मूर्तिकला का ऱ्हास होता गया।

आदिकाल में साहित्य रचना की तीन धाराएँ बह रही थी। प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थी, जो एक परंपरा के साथ विकसित होती जा रही थी। दूसरी धारा प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखे जाने वाले साहित्य की थी। तीसरी धारा हिंदी भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य की थी। इस काल का साहित्य राजा, धर्म और लोक के तीन आश्रयों में विभाजित हो चुका था। राजाश्रय पाए कवि संस्कृत में रचनाएँ करते थे। धार्मिक रचनाएँ अपभ्रंश में लिखी जा रही थी। जैन आचार्यों ने संस्कृत के पुराणों को अपभ्रंश भाषामें नए रूपों में प्रस्तुत किया। तथा हिंदी भाषा जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं का प्रतिनिधित्व कर रही थी। डॉ. देवेंद्रकुमार जैन के मतानुसार 'स्वयंभू', 'पुष्पदंत', धनपाल, धाहिल, कनकामर, अब्दुल रहमान, जिनदत्त सूरी, जोइन्दु, रामसिंह, लक्ष्मीचंद या देवसेन तथा कम्बलांरपाद को अपभ्रंश के कवि मानते हैं।

* * *

प्रकरण 4
रासो काव्य की परंपरा

-: 'रासो' शब्द के विभिन्न अर्थ तथा रासो के प्रकार :-

लौकिक साहित्य के अंतर्गत कुछ ऐसी रचनाओं की गणना की जाती है, जो उपलब्ध है, अनेक रचयिताओं के संबंध में भी बहुत कुछ ज्ञात है, किंतु पाठ, काल, तिथियों आदि की दृष्टि से उनमें अनेक संदेहात्मक स्थल मिलते हैं। इसप्रकार के साहित्य को संदिग्ध साहित्य कह सकते हैं। आदिकाल से संबंधित जो वीरगाथात्मक प्रतियाँ मिलती हैं, उन्हें 'रासो' कहा जाता है। कुछ विद्वान 'रहस्य' शब्द से 'रासो' की व्युत्पत्ति मानते हैं। 'रासो' का मूल शब्द 'रास' या 'रासक' हैं। प्राचीन राजस्थानी में 'रासो' या 'रासक' का अर्थ कथाकाव्य है। राजस्थानी और गुजराती में अनेक रास लिखे गए। 'रास' और 'रासो' नामों में कोई भेद नहीं है। 'रासो' में सिर्फ कोमल भावनाओं का ही नहीं, युद्धादि का भी वर्णन रहता था।

सामान्यतः 'रासक' रचनाओं में वीर रस, शांत रस या शृंगार रस प्रधान रहता था। अर्थात 'रासक' या 'रासो' मिश्र गेयरूपक है। 'रासो' रचनाओं में छंदों की विविधता पाई जाती है। काव्यधारा के रूप में डिंगल और पिंगल के वीर रसात्मक रासो ग्रंथों का विकास रासनृत्य के रूप से हुआ कहा जा सकता है। कालांतर में दृश्य नृत्यकाव्य के क्षेत्र से निकल कर रासो ने श्रव्यकाव्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त की। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार 'रासो' की परंपरा दो रूपों में मिलती है।

1. नृत्य, गीतमय और
2. विविध छंदों से पूर्ण।

नृत्य-गीतमय रासो का संबंध मुख्यतः जैन धर्म से रहा तथा दूसरी परंपरा का जैन धर्मेतर विषयों से, जिसमें कवियों का ध्यान काव्यसौंदर्य की ओर अधिक रहा।

नृत्य गीतमय रासो की पहली परंपरा का विश्लेषण शारदातनय के अनुसार इस प्रकार किया जा सकता है।

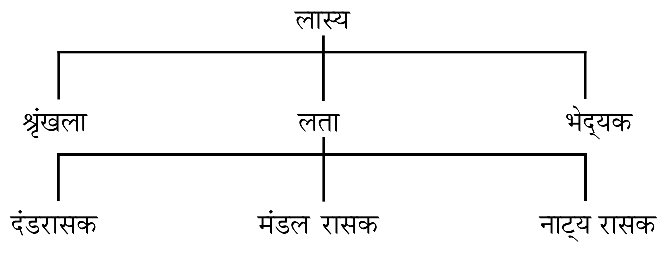

उनके अनुसार नाट्य रासक एक प्रकार का गीति-नाट्य-प्रधान उपरूपक था। जैन रचनाओं की भाषा 'अपभ्रंश-बहुला' है और उनकी रचना प्रधानतः पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में हुई।

दूसरी परंपरा के संबंध में अपभ्रंश के सभी छंद निरूपकों ने 'रासो' नामक छंद का उल्लेख किया है और रासक तथा रासाबंध नामों से एक काव्यरूप का भी लक्षण बताया है। इन दो छंद निरूपकों के नाम हैं विरहांक और स्वयंभू। विरहांक ने 'वृत्तजाति समुच्चय' में लिखा है कि जिस रचना में बहुत से अडिला, ढोसा, मात्रा, रड्डा और दोहा छंद पाए

जाते हैं, उसे रासक कहते हैं। स्वयंभू ने 'स्वभूच्छंदस' में कहा है कि काव्य में 'रासाबंध' अपने घत्ता, छप्पय, पद्घड़ी तथा अन्य रूपकों के कारण जन-मन अभिराम होता है। यह शुद्ध साहित्यिक परंपरा है। इस परंपरा की भाषा बोलचाल की भाषा हो गई थी और उसका विकास संपूर्ण हिंदी प्रदेश में हुआ।

डॉ. गुप्त के अध्ययन नुसार - पहली परंपरा अर्थात गीत-नृत्य परक रासो परंपरा के अंतर्गत निम्नलिखित रासो विशेष हैं :-

जिनदत्त सूरि	:	'उपदेश रसायन' (1143 के बाद की)
शालिग्राम सूरि	:	'भरतेश्वर बाहुबली रास (1184)
		बुद्धि रास (1184)
आसगु	:	जीवदया रास (1200)
देल्हणी	:	गयसुकुमाल रास (1243)
मंडलिक	:	पेथड़ रास (1303)
नरपति नाल्ह	:	बीसलदेव रास

विविध छंदों से पूर्ण या शुद्ध साहित्यिक परंपरा के अंतर्गत निम्न रचनाओं का उल्लेख होता है।

अब्दुल रहमान	:	संदेश रासक
चंदबरदाई	:	पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो
जल्ह	:	बुद्धि रासो, परमाल रासो
नल्हसिंह भाट	:	विजयपाल रासो
दलपति विजय	:	खुमाण रासो
सदानंद	:	रासा भगवंत सिंह का रासो
अलिरसिक गोविंद	:	कलियुग रासो

डॉ. गुप्त के अध्ययन के फलस्वरूप हिंदी रासो काव्यधारा पर सुंदर प्रकाश पड़ता है। उनके अनुसार 'रासो' वीरगाथात्मक रचना हो ही, यह आवश्यक नहीं है। वास्तव में 'रासो' से 'चरितकाव्य' का अर्थ विशेषतः लिया जाना चाहिए। हिंदी के 'रासो' ग्रंथ अधिकतर ऐतिहासिक व्यक्तियों के आधार पर इतिहास और पुराण शैली के मिश्रण से बने हैं और जिनमें अपभ्रंश कालीन काव्य रूढ़ियों और शैलियों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के स्वरूप 'पृथ्वीराज रासो' रासक होने के साथ-साथ चरितकाव्य या कथाकाव्य भी है, अर्थात उसमें एक ऐसी रसमय कथा है जिसमें चरित नायक के युद्धों, विवाहों तथा आखेटों आदि का भी वर्णन मिलता हैं।

-: जैन रासो तथा जैन साहित्य की विशेषताएँ :-

जैन धर्म ने हिंदी साहित्य के विकास में प्रमुख भाग लिया। हिंदी साहित्य के आदिकाल में तीर्थंकरों की जीवनियों, सांसारिक वर्णनों, श्रावकों के चित्रणों आदि के द्वारा अपने धर्म के सिद्धांतों का लोकप्रिय रूप में निरूपण किया। जैन साहित्य प्रधानतः काव्यात्मक और व्याकरण के नियमों से बँधा हुआ है। जैन साहित्य की भाषा हिंदी की आदिकालीन स्थिति का द्योतन करती हैं। जैन साहित्य पर अपभ्रंश का विशेष प्रभाव पाया जाता है। भाषाविज्ञान और इतिहास दोनों दृष्टियों से यह साहित्य महत्वपूर्ण है। धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन ही इस साहित्य का प्रधान पक्ष रहा है।

जैन साधुओं ने 'रास' को एक प्रभावशाली रचनाशैली का रूप दिया। जैन तीर्थंकरों के जीवन चरित्र तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से पदबद्ध की गई। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय

ताल देकर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवी शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अतः जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गए। वीरगाथाओं में 'रास' को ही 'रासो' कहा गया है, किंतु उनकी विषयभूमि जैन रास ग्रंथों से भिन्न हो गई है।

जैन रास ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ विशेष माने जाते हैं -

जैन मुनि जिनविजय द्वारा रचित 'भरतेश्वर बाहुबली रास' की रचना सन 1184 ईसवी में हुई। इस ग्रंथ में भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित्र वर्णन है। कवि ने दोनों राजाओं की वीरता, युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन किया हैं। किंतु हिंसा और वीरता के पश्चात विरक्ति और मोक्ष को प्रतिपादित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा हैं। आगे की 'रास' या 'रासो' रचनाओं को इस ग्रंथ ने अनेक रूपों में प्रभावित किया हैं।

चंदनबाला रास यह पैंतीस छंदों का एक लघु खंडकाव्य है जिसकी 1202 ई. में कवि जालौर ने की थी। इसमें कथा नायिका चंदनबाला अपार कष्ट सहकर, अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त करती है। इस लघु कथानक पर आधारित यह जैन रचना करुण रस की गंभीर व्यंजना करती है।

स्थूलिभद्र रास यह जिनधर्मसूरि की 1209 ई. में की हुई रचना है। कोशा वेश्या के पास भोगलिप्त रहने वाले स्थूलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिंदी है।

'रेवंतगिरिरास' यह विजयसेन सूरि की काव्यकृति सन 1231 में रची है। इस काल में तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रेवंतगिरि तीर्थ का वर्णन है। यात्रा तथा मूर्ति स्थापना की घटनाओं पर आधारित यह 'रास' वास्तु-कलात्मक सौंदर्य का भी आकर्षण प्रस्तुत करता है।

'नेमिनाथरास' इस काव्य की रचना सुमति गणि ने 1213 ई. में की थी। अट्ठावन छंदों की इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है। नेमिनाथ के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन इस काव्य का विषय है और इन दोनों के माध्यम से विभिन्न भावों की व्यंजना हुई है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

-: वीर रासो और रासो काव्य की प्रवृत्तियाँ :-

जिन रास ग्रंथों की विषयवस्तु राजा महाराजाओं का चरित्र वर्णन तथा प्रशंसा रहता था, उन्हें वीरगाथापरक रासो कहा जाता था। वीर रासो की निर्मिति आदिकाल में हुई मानी जाती है। राजाओं के चरित्र तथा शौर्यगाथा का वर्णन करने के लिए रासो की रचना होती थी। आगे चलकर उन राजाओं से संबंधित उत्तराधिकारीयों के चरित्र भी रासो-ग्रंथ में समाविष्ट किए जाते थे। राजाओं के शौर्य तथा युद्ध वर्णन वीर रासो की विशेषता है। इसीलिए वीररस की प्रधानता इसमें पाई जाती है। वीररस के साथ शृंगाररस भी ग्रंथों में पाया जाता है। वीर और शृंगार रसों के पोषण के लिए आवश्यकतानुसार अन्य रसों की भी योजना होती थी। वीर रासों के निम्नलिखित उदाहरण हैं -

1. खुमाण रासो :-

दलपत विजन ने 'खुमाण रासो' की सत्रहवी शताब्दी में रचना की थी। इसमें नवी शती के चित्तोड़ नरेश खुमाण के युद्धों का चित्रण हैं। यह पांच हजार छंदों का विशाल काव्यग्रंथ है। राजाओं के युद्धों और विवाहों के सरल वर्णनों से इस काव्य की भावभूमि का विस्तार हुआ है। इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं तथा इसकी भाषा राजस्थानी हिंदी है।

2. बीसलदेव रासो :-

इस ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह कवि ने 1155 में की थी। यह रचना हिंदी के आदिकाल की श्रेष्ठ काव्यकृति है। इसमें भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। सामंती जीवन के प्रति गहरी अरूचि का सजीव चित्र इस काव्य में मिलता है।

3. परमाल रासो :-

उत्तर प्रदेश में 'आल्हखंड' के नाम से जो काव्य प्रचलित है, वही 'परमाल रासो' के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है। यह रासो 'लोक-गेय' काव्य था, अतः इसके मूल की सुरक्षा नहीं हो सकी। इसमें अनेक अंश बाद में जोड़े गए हैं तथा अनेक अंशों में वर्णन और भाषा संबंधी परिवर्तन किए गए है। धीरे-धीरे 'आल्हा' लोकगीत की एक शैली ही बन गया है। परमाल रासो का रचयिता जगनिक नाम का कवि माना जाता है। छंद विधान की दृष्टि से इस काव्य की एक विशेष शैली है, जिसे 'आल्ह-शैली' कहना ही उचित है।

4. पृथ्वीराज रासो :-

आचार्य शुक्ल के मतानुसार 'पृथ्वीराज रासो' हिंदी का पहला महाकाव्य है। जो हिंदी के प्रथम महाकवि चंदबरदाई ने लिखा है। चंदबरदाई को पृथ्वीराज चौहान का सामंत तथा राजकवि माना जाता है। कहा जाता है कि चंदबरदाई और पृथ्वीराज चौहान का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों की मृत्यु भी एक ही दिन हुई थी। यह प्रसिद्ध है कि चंदबरदाई ने अपने स्वामी के हितार्थ बलिदान किया। पृथ्वीराज उसे सदा अपने सखा के समान साथ रखते थे एवं उसकी हर बात मानते थे।

पृथ्वीराज रासो के चार संस्करण प्रसिद्ध है। पहले संस्करण में 69 खंड तथा 16,306 छंद हैं। दूसरे संस्करण में 7,000 छंद हैं। तीसरे में 3,500 छंद है तो चौथे में केवल 1,300 छंद हैं। इन चारों संस्करणों में से कौन-सा संस्करण मूल तथा असली है इस विषय में विद्वानों में विवाद रहा है। इन विवादों को दूर रखते हुए पृथ्वीराज रासो को हम महाभारत के समान एक महाकाव्य के रूप में पाते हैं। चंदबरदाई ने इस ग्रंथ में अनेक घटनाओं का समावेश किया है। समस्त घटनाचक्र के भीतर कवि ने अपनी रस दृष्टि का नियोजित रूप में विस्तार किया है। इस काव्य में दो रस प्रमुख है - शृंगार और वीर। ये दोनों रस पृथ्वीराज का चरित्र मुखरित करते हैं। वह जितना वीर है, उतना ही शृंगारप्रेमी भी है। कवि ने एक ओर तो युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्भुत सृष्टि की है, दूसरी ओर रूपसौंदर्य और प्रेम के भी सरस चित्र उतारे हैं। यह काव्य पिंगल शैली में लिखा गया है जो ब्रजभाषा का वह रूप है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण हैं। शब्दचयन रसानुकूल है, अभिधेय भाषा को पर्याप्त प्रभावशाली रूप दिया है। लगभग अडसठ प्रकार के छंदों का इसमें प्रयोग किया गया है। यह महाकाव्य सभी दृष्टियों से आदिकाल की एक श्रेष्ठ कृति सिद्ध होता है।

* * *

प्रकरण 5

गोरखनाथ, चंदबरदाई, खुसरो, विद्यापति का साहित्यिक परिचय

1. गोरखनाथ :-

गोरखनाथ शिव देवता और शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में माने जाते हैं। भारतीय धर्मसाधना के उथल-पुथल के युग में गोरखनाथ ने भारतीय जीवन को उद्बुद्ध करने का व्रत लिया था। उनके समय में सारा देश वेदानुयायी और वेदविरोधी दो भागों में विभक्त हो गया था। गोरखनाथ ने अपने मार्ग के समीप वाले सभी शैवों और शाक्तों को स्वीकार कर लिया और वे सब गोरखनाथी कहलाए। जो संप्रदाय गोरखसम्मत मार्ग में उस समय नहीं आए थे, वे भी धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों उनकी परंपराएँ लुप्त होती गई, अपने मूल प्रवर्तकों में गोरखनाथ को ही मानने लगे। गोरखनाथ आज एक ऐसे संप्रदाय के मूल प्रवर्तक माने जाते हैं, जो अपनी विभिन्न परंपराओं को लिए हुए देश के विभिन्न स्थानों में अब भी पाया जाता हैं। इसप्रकार वे अपने युग के एक महान व्यक्तित्व वाले नेता थे, जिनमें अपूर्व संगठन शक्ति थी। शंकराचार्य के बाद गोरखनाथ निःसंदेह एक ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने एक शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन की नींव डाली। भारतीय भक्ति-आंदोलन से पूर्व उन्हीं का योगमार्ग प्रचलित था। इस योगमार्ग की परंपरा ब्राह्मणों और बौद्धों को समान रूप से मान्य थी और उसका अपना विशाल साहित्य था।

भारतवर्ष की लगभग सभी भाषाओं में गोरखनाथ संबंधी कथाएँ पाई जाती हैं। उपलब्ध सामग्री के आधार पर 9 वीं से 11 वीं शताब्दी के आसपास उनका समय माना जाता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुमान से वे ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हुए थे। उनके नाम से हिंदी में बयालीस और संस्कृत में अट्ठाईस के लगभग रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। हिंदी में उनके सवदी, पद, गोरखबोध, नरवैबोध, आत्मबोध, महादेव-गोरख संवाद, गोरखदत्त-गोष्टी, निरंजन-पुराण, गोरखसागर, गोरखबचन, अष्टचक्र, गोरखपुराण आदि ग्रंथ हैं।

गोरख पंथ, सिद्ध-युग और संत-युग की कड़ी के रूप में हैं। उनके ग्रंथों की प्रश्नोत्तरी शैली ने आगे के संतकवियों को प्रभावित किया। गोरखनाथ के पदों की प्रामाणिकता के बारे में संदेह है, किंतु वे भी कबीर के पदों की भाँति प्रचलित हो गए हैं। इन पदों में साधना, नैतिकता, गुरु, मन के संयम, कामक्रोध या आसक्ति का न होना, ब्रह्मचर्य, शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता, मांसादि का परित्याग आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है। गोरखनाथ ने जिस हठयोग का उपदेश दिया हैं, उसमें परंपरा के अनुसार प्राणायाम से वायु का निरोध कर सिद्धि प्राप्त करना ही मुख्य है। गोरखनाथ के अनुसार जो व्यक्ति चक्रों, नाड़ियाँ आदि को नहीं जानता, वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। शक्ति की जब शिव के साथ समरसता होती है, तभी गोपियों को कैवल्यपद वाली 'सहज-समाधि' प्राप्त होती है, जिससे बढ़कर कोई आनंद नहीं। और यह सब गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। इसप्रकार गोरखनाथ ने एकेश्वरवाद में विश्वास रखा। जप, वेद, तीर्थ आदि को वह महत्व नहीं देते थे। उन्होंने परमात्मा को अपने हृदय में ही खोजने का उपदेश दिया। उनके संप्रदाय का प्रसार निम्नजाति के लोगों में और अशिक्षित लोगों में अधिकतर हुआ।

2. चंदवरदाई :-

आचार्य शुक्ल के मतानुसार कवि चंदवरदाई हिंदी साहित्य का पहला महाकवि है, जिसने हिंदी साहित्य के पहले महाकाव्य का, 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माण किया है। आदिकाल का कवि चंदवरदाई एक उल्लेखनीय

कवि है। 'रासो' में कवि ने अपना जीवनवृत्त दिया है, जिसके अनुसार वे भट्ट जाति के तथा जगात् नामक गोत्र के थे। श्री मुनि जिनविजय द्वारा खोज निकाले गए जैन प्रबंधों में उनका नाम चंद वरदिया दिया है और उन्हें खारभट्ट कहा गया है। उनका जन्म लाहोर में हुआ था। कहा जाता है कि पृथ्वीराज और चंदवरदाई का जन्म एक ही दिन हुआ था। वे जीवनभर पृथ्वीराज के सखा और सामंत रहे, जिसके प्रमाण 'रासो' में मिलते हैं। चंद अनेक विद्याओं के जानने वाले और राजकवि थे।ए उन्हें जालंधरी देवी का इष्ट था। चंदवरदाई की जीवनी के संबंध में सूर की 'साहित्य लहरी' और नानूराम भाट के वंश में सुरक्षित सामग्री है, किंतु दोनों अभी संदिग्ध मानी जाती है।

कवि चंदवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' रचते समय 'संदेश रासक' जैसे पूर्ववर्ती रासो ग्रंथों की परंपरा को सुरक्षित रखा है। चंदवरदाई ने शुक और शुकी के संवाद के रूप में लिखा है। उन्होंने विविध छंदों का प्रयोग किया है और अपने पूर्ववर्ति कवियों के प्रति आदरभाव प्रकट करते हुए अपनी नम्रता प्रदर्शित की है। चंद ने काव्यगत रूढ़ियों का निर्वाह भी अत्यंत कौशल के साथ किया है। इस प्रकार उनके ग्रंथ में अपभ्रंश की रासक शैली का सुंदर निर्वाह हुआ है।

कवि चंद ने लिखे पृथ्वीराज रासो पर विद्वान कई प्रकार के संदेह करते हैं। रासो के चार संस्करण उपलब्ध है, जो सोलह हजार छंदों से लेकर तेरह सौ छंदों तक विविध मात्रा में पाए जाते हैं। पृथ्वीराज के संबंध में घटी घटनाएँ तथा तिथियाँ इतिहास ग्रंथों से मेल नहीं खाती। क्या चंद नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के यहाँ था? यह भी सवाल इतिहास के अभ्यासक उपस्थित करते हैं। सच तो यह है कि कवि चंदवरदाई के 'रासो' की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता पर विचार करते समय यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि यह कोरा इतिहास-ग्रंथ नहीं है। यह काव्य ग्रंथ है - ऐतिहासिक चरित काव्य है और अपनी पूर्ववर्ति परंपरा की एक कड़ी है। उसमें इतिहास और ऐतिहासिक घटनाओं को स्थान देते हुए कवि कल्पना का मोह नहीं छोड़ सका। रासक शैली में लिखे चरितकाव्य ग्रंथ और जीवन के विविध पक्षों का सजीव चित्रण सामंती जीवन के श्रेष्ठ प्रतिनिधि पृथ्वीराज के सहारे हुआ।

इस प्रकार आदिकाल में एक महान काव्यकृति निर्माण करने वाले चंदवरदाई ने अपने राजा पृथ्वीराज की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ाई। कहते हैं कवि चंद की मृत्यु की तिथि भी पृथ्वीराज के मृत्यु की तिथि से मिलती है। अर्थात उन दोनों की मृत्यु भी एक ही दिन हुई।

3. अमीर खुसरो :-

अमीर खुसरो हिंदी साहित्य के इतिहास में विशेष महत्व है। उन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखी थी। अपभ्रंश मिश्रित भाषा और डिंगल भाषा के स्थान पर उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली और ब्रजभाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। एक प्रकार से जनसाधारण में प्रचलित भाषा का प्रयोग किया और भाषा के क्षेत्र में अपना महत्व स्थापित किया। उनकी रचनाओं में भारतीय और इस्लामी संस्कृतियों के समन्वय का पता चलता है। उनकी रचनाओं से लोक-भावनाओं का परिचय प्राप्त होता है।

अमीर खुसरो का वास्तविक नाम अब्दुल हसन था। उनका जन्म कुछ लेखकों के मतानुसार एटा जिले के पटियाली गाँव में सन 1253 ई. में हुआ। आचार्य शुक्ल के अनुसार खुसरों ने 1283 ई. के लगभग रचना आरंभ की थी। कहा जाता है कि खुसरों बड़े विनोदी और सहृदय व्यक्ति थे। जनजीवन के साथ घुल-मिलकर काव्यरचना करने

वाले कवियों में खुसरो का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या सौ बताई जाती है परंतु अब उनमें से बीस-इक्कीस ही उपलब्ध हैं। 'खलिकबारी', 'पहेलियाँ', 'मुकरियाँ', 'दो सुखने', 'गजल' आदि उनमें अधिक प्रसिद्ध हैं। अमीर खुसरो निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे और उनका संबंध गयासुद्दीन बलबन से होकर अल्लाउद्दीन और मुबारकशाह तक कई पठाण राज दरबारों से रहा। उन्होंने गुलामवंश के पतन से लेकर तुघलक वंश के प्रारंभ होने तक का समय देखा था। उनका रचना काल तेरहवी शताब्दी के लगभग अंत में माना जाता है। उनकी मृत्यु 1325 ई. में हुई।

कुछ लोग कहते हैं कि अमीर खुसरो नामक कई व्यक्ति हुए हैं, अतः इन सब रचनओं को पहेलीकार अमीर खुसरो की रचनाएँ मानना भ्रम है। कुछ भी हो, आदिकाल में जो अमीर खुसरो हुए थे उनकी पहेलियाँ और मुकरियाँ ही प्रसिद्ध हैं, जिनमें मनोरंजन और जीवन पर गहरे व्यंग्य एक साथ मिलते हैं। अमीर खुसरो को भाव की गहराई की दृष्टि से भले ही महत्व न दिया जाए, किंतु भाषा की दृष्टि से उनकी पहेलियाँ साहित्य के इतिहास का सदा एक महत्वपूर्ण अंग रहेंगी। उनके काव्य में खड़ीबोली काव्यभाषा बनने का सफल प्रयास कर रही थी। उनकी भाषा के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिए एक पहेली यहाँ प्रस्तुत हैं -

"तखर से इक तिरिया उतरी, उनने बहुत रिझाया।
बाप का उसने नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।
अमीर खुसरो यों कहें, अपने नाम न बोली - 'निबोरी'।।"

पहेली रचना की इस शैली का हिंदी काव्य में आगे विस्तार नहीं हुआ, किंतु रहस्य प्रवृत्ति के विकास पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ा। चमत्कार और कुतूहल की प्रवृत्तियाँ भी खुसरों की प्रेरणा से हिंदी काव्य में विशेष स्थान पाने लगी। जिसके फलस्वरूप रीतिकाल में कुतूहल काव्यों की एक लंबी परंपरा चली।

खुसरो ने पहेलियाँ, मुकरियों के साथ कुछ सुंदर दोहे भी लिखे हैं -

खुसरो रैनि सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीऊ को, दोऊ कये इक रंग।

* * *

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

4. विद्यापति :-

कृष्णकाव्य की परंपरा में विद्यापति का नाम उल्लेखनीय है। विद्यापति का जन्म सन 1368 तथा मृत्यु 1475 ई. में मानी जाती है। उनके पिता का नाम गणपति ठाकुर था। उनका वंश विद्वानों का वंश था। वे दरभंगा जिले में विपसी के रहने वाले थे। वे शिवसिंह, लखिमादेवी, विश्वासदेवी, नरसिंह देवी और कई अन्य राजाओं के आश्रय में रहे। 'शैव सर्वस्व सार', 'पुरुष परीक्षा', 'लीखनावली', 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' आदि ग्यारह ग्रंथ संस्कृत में तथा कीर्तिलता, कीर्तिपताका अवहट्ठ में पाए जाते हैं। कीर्तिलता में आश्रयदाता कीर्तिसिंह का चरित्र होने के कारण उसे ऐतिहासिक चरित काव्यों की श्रेणी में स्थान दिया जाता है। विद्यापति ने अपने आश्रयदाता का तो सुंदर, सजीव और सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया ही है, साथ ही उसने समसामायिक जीवन का भी अत्यंत कौशल और सूझबूझ के साथ वर्णन किया है। रचना में काव्यतत्व का प्राचुर्य है।

विद्यापति के पद राधा-कृष्ण के प्रेमपूर्ण मिलन के शृंगार संबंधी पद है या शिव प्रार्थना के रूप में भक्तिसंबंधी हैं। कुछ पद तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण के रूप में कालसंबंधी हैं। विद्यापति शिवभक्त थे। अतः उनके रचित शिवपदों में उनके भक्ति भक्ति संबंधी विचार प्रकट होते हैं। उनके कृष्ण संबंधी पदों में शृंगार, विलास और भौतिक प्रेम है। उन्होंने वयःसंधि, नख-शिख, अभिसार, मान, विरह, संयोग आदि के वर्णन में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। विद्यापति का कृष्णसंबंधी संसार कामदेव का संसार है। उनके पदों में व्यक्तिगत अनुभूति, भावोन्माद, सूक्ष्मता आदि के रूप में गीतिकाव्य के लक्षणों और संगीतात्मकता का सुंदर समन्वय मिलता है। विद्यापति के पदों की भाषा मैथिली है। पदों के अतिरिक्त विद्यापति की नचारियाँ भी प्रसिद्ध हैं, जो शिव की भक्ति में नृत्य के साथ गाई जाती है।

* * *

प्रकरण 6
भक्तिकाल - भक्तिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक

-: भक्तिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि :-

हिंदी साहित्य के संदर्भ में 'भक्तिकाल' से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आंदोलन का आरंभ हुआ। लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक प्रचलित भाषाओं में भक्तिभावना की अभिव्यक्ति होने लगी। इस समय भक्तिसाहित्य की विपुल मात्रा में निर्मिति हुई। इसमें सिर्फ वैष्णव धर्म नहीं था अपितु शैव, शाक्त आदि मतों के अतिरिक्त बौद्ध, जैन संप्रदायों का साहित्य भी संमिलित था।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल का समय 1316 ई. से 1643 तक किया है। अध्ययन की सुविधा के लिए भक्तिकाल को चौदहवी शती के मध्य से सत्रहवी शती के मध्य तक माना जाता है। यह भक्तिसाहित्य जहाँ एक ओर उच्चतम धर्म की व्यवस्था करता है, वहाँ उसमें उच्च कोटि के कवित्व के दर्शन भी होते हैं। साथ ही भाव, भाषा, कला सभी दृष्टियों से भक्तिसाहित्य श्रेष्ठतम कहा जा सकता है। इसीलिए भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्णकाल माना जाता है। कुछ विचारकों ने भारतीय भक्ति आंदोलन को पराजित मनोवृत्ति का परिणाम और मुस्लिम राज्य प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया मानते हुए हिंदी साहित्य में भक्तिकालीन प्रवृत्तियों के आविर्भाव को राजनीतिक पराजय का परिणाम कहा है। परंतु कुछ समीक्षकों ने इसे एक अविच्छिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक व सामाजिक भावना का परिणाम मानते हुए भारतीय इतिहास में एक महाआंदोलन माना है। किसी भी काल के साहित्य के निर्माण में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ सहायक होती हैं। भक्तिकाल के आरंभ में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं, जिनसे प्रभावित होकर काव्यक्षेत्र परिवर्तित हो गया।

1. राजनीतिक परिस्थिति :-

भारत के राजनीतिक क्षेत्र में सन 1343 से 1643 तक की अवधि में दो प्रमुख मुस्लिम वंशो - पठाण वंश और मुगल वंश का आधिपत्य बना रहा। इनमें लोदी सैयद और तुगलक वंशों के सुलतान विशेष उल्लेखनीय हैं। मुगल बादशाहों ने पूर्ववर्ति सुलतानों की शासकीय कमियों को सजग होकर उनसे अपना बचाव किया और शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। मुगलों में अकबर का राज्यकाल सभी दृष्टियों से सर्वोपरि रहा और उसे अपने शासनकाल में सफलता मिली। हिंदु-मुस्लिम आदि धर्मों के नागरिकों से उसका व्यवहार पक्षपातरहित था। उसने अमुस्लिम जनता से जजिया और तीर्थ कर उठा दिए, जिससे जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

सामान्यतः मुस्लिम शासक अकबर की तरह सहिष्णु वृत्ति के नहीं थे। इस काल में देशवासियों पर विधर्मियों के अत्याचार बढ़ते गए। मंदिर, मूर्तियों का ध्वंस होता रहा। कवियों का स्थान राजदरबार से हटकर साधुओं की कुटियों में परिवर्तित हुआ। अधिकांश कवि आश्रयदाताओं का गुणगान करने की अपेक्षा भगवान का कीर्तिगान करने में लग गए। कई विचारकों ने पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि भक्ति का उद्‌भव राजनीतिक अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप या किसी विदेशी प्रभाव के कारण न होकर स्वाभाविक ही हुआ था। दक्षिण में वैष्णव भक्ति अपनी समृद्‌ध अवस्था में ही थी। तमिल के अलवारों भक्तों को ही हमारे देश

में भक्तिभावना का पुरस्कर्ता समझना चाहिए। क्योंकि उन्हीं की परंपरा में श्री रामानुजाचार्य भी हुए जिन्होंने भक्तिभावना को लोकप्रिय बनाया।

2. सामाजिक परिस्थिति :-

तत्कालीन भारतीय सामाजिक जगत में हिंदु-मुस्लिम दो संस्कृतियाँ तथा विचारधाराओं का पारस्परिक संघर्ष हो रहा था और एक ओर हिंदु संस्कृति अपनी पूर्णता और प्राचीन परंपरा का विश्वास लिए अपने अस्तित्व की रक्षा करने का प्रयत्न कर रही थी तथा दूसरी ओर मुस्लिम संस्कृति उस पर हावी होना चाहती थी। अतः हिंदु-मुसलमानों में परस्पर घृणा का भाव बढ़ता गया। दिन-प्रतिदिन हिंदुओं ने सामाजिक बंधनों को भी सुदृढ़ करना प्रारंभ कर दिया। अतः धार्मिकता की अपेक्षा सामाजिक संकीर्णता ही बढ़ने लगी और कबीर आदि संतों ने इस संकीर्णता का विरोध कर शुद्ध आध्यात्मिकता का सहारा लेना चाहा।

हिंदु समाज में जातियों और उपजातियों में संख्या वृद्धि हो गई। जिससे हिंदुओं में भी आपसी भेदभाव बना। विधर्मी तथा विजातीय शासकों से हिंदु प्रजा के प्रति क्रूर व्यवहार होने के कारण हिंदु समाज भयभीत आतंकित था। हिंदु कन्याओं को संपन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में खरिद कर अपने घरों में रख लिया करते थे। समाज में स्त्रीयों को पुरुष जैसा स्तर या सम्मान प्राप्त नहीं था। सती-प्रथा का चलन था। परदा प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गई थी। हिंदुओं में संयुक्त परिवार पाए जाते थे, जो सामाजिक जीवन के मूलाधार थे। छुताछूत के नियम इतने कठोर थे कि शूद्रादि जातियों तक में भेदभाव बरता जाने लगा था। भारतीय मुस्लिम समाज की अवस्था हिंदुओं से अधिक भिन्न नहीं थी। जबरन धर्मांतरित किए गए मुसलमानों के मन से हिंदु संस्कार नष्ट नहीं हुए थे। आक्रमणकारी मुसलमानों के वंशजों में भी कालांतर में सद्भाव और सहिष्णुता के भाव उदित होने लगे। इस प्रवृत्ति को सूफी साधकों का प्रश्रय प्राप्त था।

दैनिक जीवन, रीति-रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्योहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज सुविधा संपन्न और असुविधाग्रस्त इन दो वर्गों में विभक्त था। एक तरफ राजा-महाराजा, सुलतान, सामंत आदि वैभव संपन्न जीवन व्यतित करते थे। तो दूसरी तरफ किसान, मजदूर, सैनिक आदि आम लोग गरीबी और अभावों में जीते थे। ऐसी सामाजिक स्थिति में संतों ने अपने भक्तिसाहित्य द्वारा आम जनता को संकीर्ण विचारों से मुक्त करने का, उनमें आत्मविश्वास जगाने का कार्य किया। हिंदु-मुस्लिम संस्कृति व धार्मिक भावना में समन्वय लाने का प्रयत्न किया।

3. धार्मिक स्थिति :-

हिंदु धर्म तथा संस्कृति पर विदेशियों के निरंतर आक्रमण हो रहे थे। मूर्तिभंजक, मूर्तिपूजकों पर विजयी हो रहे थे। निराश हिंदु जाति को निराकार या निर्गुण उपासना से संतोष नहीं हो रहा था। इसी बीच स्वामी रामानंद ने लोकरक्षक राम की प्रतिस्थापना की और राम की उपासना के दो रूप प्रचलित हुए जिनमें से पहला कबीर के निराकार राम का और दूसरा था तुलसीदास के साकार राम का। साथ ही दक्षिण की भक्तिभावना का भी इस क्षेत्र में बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निंबार्काचार्य आदि दार्शनिक आचार्यों ने परमात्मा की भिन्न-भिन्न दृष्टि से व्याख्या की। रामानुजाचार्य तो भक्तिभावना के प्रचारार्थ उत्तर भारत आए और उनके इष्ट देव राम थे, तथा काशी में रामभक्ति का प्रचार कर भक्ति को जनसाधारण के लिए सुलभ बनाने वाले रामानंद इन्हीं रामानुजाचार्य के शिष्य थे।

* * *

प्रकरण 7

निर्गुण भक्ति साहित्य और उसकी शाखाएँ - प्रेमाश्रयी, ज्ञानाश्रयी दोनों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

उपासना के दो मार्ग माने जाते हैं - निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। सगुणोपासना में अवतारवाद को स्वीकार लिया जाता है। फलस्वरूप सगुण भक्ति के लिए आलंबन मिल जाता है। अपने उपास्य देवता की मूर्ति बनाना, उसका मंदिर बनाना और फिर पूजा, अर्चना करना। इसप्रकार अपने देवता पर दीप, अर्ध्य चढ़ाना, आरती उतारना आदि उपचारों को भक्ति के अभिन्न अंग माने जाने लगे।

निर्गुण भक्ति या निर्गुणोपासना में इन बाहरी उपचारों को स्थान नहीं होता। भक्ति के अनुभूति पक्ष को ही प्रधान रूप से चित्रित किया गया है। सच्ची भक्ति का संबंध हृदय से है, बाहरी पूजा-विधान से नहीं। भक्ति को विद्या-माया मानने वाले तथा ज्ञानमार्ग को ही एकमात्र सच्ची साधना के रूप में स्वीकार करने वाले शंकराचार्य ने ज्ञान के अनुभूति पक्ष पर बल दिया है। निर्गुण भक्ति में भी दो शाखाएँ हैं।

1. ज्ञानाश्रयी
2. प्रेमाश्रयी

-: ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति की प्रवृत्तियाँ :-

1. निर्गुण की उपासना :-

निर्गुण संतकाव्य धारा की मूल भावना निर्गुण की उपासना है। उनका निर्गुण बौद्ध साधकों के शून्य से पृथक है। वह संसार के प्रत्येक कण में व्याप्त है, वहीं प्रत्येक साँस में है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है, वह केवल अनुभवगम्य ही है। संत कबीर ने कहा है -

"परब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।"

2. रुढ़िवाद और मिथ्याडंबर का विरोध :-

संतकवियों ने पुरानी रुढ़ियों और मिथ्याडंबरों का घोर विरोध किया है। संत कबीर निर्गुण पंथ के थे, इसलिए उन्होंने तिलकछापा, माला, रोजा-नमाज, योग की क्रियाएँ आदि को व्यर्थ ठहराया और इनके मानने वालों को फटकाराया।

3. गुरु की महत्ता :-

संतकवियों ने गुरु को ईश्वर के बराबर माना है। संतकाव्य में गुरु के महत्व का प्रतिपादन बड़े ही सुंदर ढंग से हुआ है। संत कबीर ने तो गुरु को गोविंद से बढ़कर माना है -

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागे पाय।
बलिहारी वा गुरु की, गोविंद दिया मिलाय।।"

4. जाति-पाति के भेदभाव का विरोध :-

संतकवि जाति-पाति के नियमों के कट्टर विरोधी थे। इनकी दृष्टि में सब मनुष्य बराबर थे तथा भगवत्भक्ति का समान अधिकार था। कबीर ने कहा है -

"जाति पाति पुछै नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।"

संतकवि जैसे कबीर स्वयं जुलाहा थे, रैदास चमार जाति के थे। अतः जाति-पाति के खंडन का प्रमाण वे खुद ही होते थे। उसी प्रकार हिंदु-मुसलमान धर्मों का भेद भी वह नहीं मानते थे। जिससे लोगों में अनायास ही एकता लाने का यह प्रयत्न था।

5. वैयक्तिक साधना पर जोर किंतु लोकसंग्रह का विरोध नहीं :-

संत कवि अपने अपने व्यवसाय में मग्न रहते हुए अध्यात्म साधना में तल्लीन रहते थे। यहीं कारण है कि उनकी रचनाओं में व्यावहारिक जीवन के अनुभव, उपमान एवं पदावलि मिलती हैं। उन्होंने अपने व्यवसायगत अनुभव के द्‌वारा भी अध्यात्म के गूढ़ रहस्य समझाने का प्रयास किया है। संतो ने वैयक्तिक साधना पर जोर दिया है। उन्होंने बाह्‌य साधना से ध्यान हटाकर वैयक्तिक और आंतरिक साधना का ही प्रतिपादन किया है। आत्मवृद्‌धि संतमत का मूल सिद्‌धांत है। किंतु यह वैयक्तिक साधना केवल एकांतिक नहीं है, समाज को भी दृष्टि में रखकर चली है। समदृष्टि, भेदभाव का नारा और एकता का प्रचार इस निर्गुण साधना के आवश्यक अंग थे।

6. रहस्यवादी प्रवृत्ति :-

संतकाव्य में हमें भारतीय रहस्यवाद के दर्शन होते हैं। इस रहस्यवाद का मूल आधार अद्‌वैतवादी चिंतन है। कबीर ने कहा है

"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यहु तय कथहू ग्यानी।।"

7. साधारण धर्म का प्रतिपादन :-

हिंदु-मुसलमान के भेदभाव का निराकरण तथा समाज में समता की प्रतिष्ठा ज्ञानाश्रयी काव्यशाखा का सबसे बड़ा योगदान है। संतकवि साधारण धर्म के मानने वाले थे, किंतु उन्होंने सांप्रदायिकता अथवा वर्णाश्रमसंबंधी विशेष धर्म का विरोध किया है। उन्होंने जिस साधारण धर्म को स्वीकार किया है, वह एक प्रकार से शुद्‌ध मानवधर्म है।

8. विरह की मार्मिक उक्तियाँ :-

लोकसंग्रह की भावना से प्रेरित हो संतों ने अपने काव्य में शांत रस को महत्व प्रदान किया है। संतकाव्य की सरसता उनकी विरह की मार्मिक उक्तियों में दर्शनीय है। संत कबीर ने उस परब्रह्‌म को प्रिय मानकर अपनी आत्मा को विरहिणी के रूप में प्रस्तुत करके उसके मार्मिक उद्‌गार व्यक्त किए हैं -

"विरहिन ऊभी पंथ सिर पंथी बूझै धाइ।
एक शब्द कहि पीव का कबरे मिलेंगे आइ।।
आई न सकों पुज्झपै, सकूँ न बुज्झ बुलाइ।
जियरा यों हि लेहुगे, विरह तपाइ-तपाइ।।"

अलौकिक के प्रति विरह की व्यंजना में भी अनुपम रस है, क्योंकि यह लौकिक विप्रलंभ शृंगार की पदावली में अभिव्यक्त हुआ है। किंतु इनमें दिव्य रस की आर्द्रता है।

9. भजन तथा नामस्मरण :-

संतकवियों ने भजन तथा नामस्मरण को बहुत महत्व दिया है। उसमें ढोंग के लिए स्थान नहीं है। इसीलिए कबीर कहते हैं -

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुँहमाही,
मनुआ तो दहुँ दिसी फिरै, यह तो सुमिरन नाही।"
संतकवि अजपा जाप को श्रेष्ठ मानते हैं।

10. संतकाव्य में युगबोध और युगचेतना :-

निर्गुण काव्य आचरण की पवित्रता का संदेश लेकर जनता के सामने आया। उसमें युगबोध और युगचेतना का व्यापक रूप प्रतिफलित हैं। मध्ययुग की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं का संतकाव्य में स्वाभाविक चित्रण हुआ है। संतों ने अपने समय के मानव समाज को दोषमुक्त कर परिष्कृत बनाने की चेष्टा की है। इन्हीं विशेषताओं के कारण संतकाव्य लोकप्रिय एवं समाजव्यापी प्रभाव से संपन्न हुआ। संतों की क्रांतिकारी एवं विशिष्ट उपलब्धि यह थी कि उन्होंने लोकधर्म को अपनाया, गृहस्थ धर्म का पालन किया और सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय का विरोध किया।

11. भाषा की सरलता :-

संत कवियों ने सरल और आडंबरहीन भाषा का प्रयोग किया है। कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलामा नहीं लगाया। संत कवि अपने मत के प्रचार के लिए गाँव-गाँव भ्रमण करते थे। अतः उनकी भाषा में विभिन्न प्रांतीय बोलियों के शब्दों का समावेश हो गया। यह भाषा एक बेमेल खिचड़ी है, जिसमें अवधी, ब्रजभाषा, खड़ी बोली, पूर्वी हिंदी, फारसी, अरबी, संस्कृत, राजस्थानी तथा पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं।

12. पारिभाषिक शब्दावली का बाहुल्य :-

संत मत के पारिभाषिक शब्दावली के अध्ययन से उनके विचारों को समझने में सुगमता होती है। निर्गुण संतों ने अपनी काव्यसाधना में सूफियों की बहुत-सी बाते ली। इसी कारण उनके काव्य में सूफी पारिभाषिक शब्द बड़ी स्वतंत्रता से प्रयुक्त हैं। इन पारिभाषिक शब्दों में शून्य, अनहद, निर्गुण और सगुण का महत्व सर्वाधिक हैं। हठयोगी साधु के लिए 'अवधूत' शब्द का प्रयोग बराबर हुआ है।

इसप्रकार निर्गुण संतों के काव्य में बड़ी विचित्रता है। उसमें वैष्णव नैतिक सिद्धांत, वैष्णव भक्ति की भावना, उपनिषदों का निर्गुणवाद, बौद्ध साधकों और नाथपंथियों के पारिभाषिक शब्द, सूफी साधकों की साधना का अपूर्व संमिलन हुआ है। इनके अतिरिक्त मुसलमान एकेश्वरवादी पैगंबर धर्म का मूर्ति खंडन और एकेश्वरवाद और हिंदू-मुस्लिम भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण जो विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उनका प्रभाव भी संतमत पर स्पष्ट है। वास्तव में निर्गुण संतकाव्य धारा अपने समय का पूरा प्रतिनिधित्व करती है।

-: प्रेमाश्रयी निर्गुण भक्तिधारा तथा प्रेमकाव्य धारा :-

इस परंपरा के कवियों ने लौकिक प्रेम और लौकिक सौंदर्य को अलौकिक रूप में देखा और ध्वनित किया। इसे सूफी मत भी कहते हैं। भारतवर्ष में सूफी मत का प्रवेश ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती से मानते हैं। 12 वी शती के प्रथम चरण में ये भारत में आए थे। उन्होंने सूफी मत के सिद्धांतों का विश्लेषण करने के लिए एक ग्रंथ 'कुश्फुल महजूब' लिखा। इसमें तत्कालीन सूफी संप्रदायों का उल्लेख हैं। भारत में सूफी मत चार संप्रदायों के रूप में प्रचलित हुआ। चार संप्रदाय ये हैं - चिश्तिया (12 वी शती), सुहवर्दिया (12 वी शती), काहिरिया (15 वी शती) और नक्शबंदिया (15 वी शती)। ये संप्रदाय अपने मूल सिद्धांतों में एक ही मत के मानने वाले थे, किंतु आचार-विचार में सूक्ष्म अंतर मिलता है।

सूफी मत की प्रमुख विशेषताएँ :-

प्रेम की प्रधानता, सामाजिक समता, मानव तत्व का महत्व, मानव और ईश्वर में अभिन्नता। यह मत अपने धार्मिक दृष्टिकोण में बहुत स्वच्छंद है। सूफी मत के सिद्धांतो की इस संप्रदाय के कवियों ने लोकप्रिय प्रेमगाथाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति की है। प्रेमकाव्य का आरंभ आदिकाल से होता है। प्रेमकाव्य की परंपरा आगे चलती रही किंतु इसका पूर्ण परिपाक मलिक मुहम्मद जायसी में दिखाई देता है। वे सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका प्रेमकाव्य सूफी मत एवं हिंदी साहित्य दोनों की दृष्टि से उत्कृष्ट काव्य हैं।

सूफी संतों का संप्रदाय हिंदू धर्म से बहुत प्रभावित रहा है। सूफी लोग हिंदुओं के एकेश्वरवाद के निकट पहूँच जाते हैं। जिस प्रकार निर्गुण संतों ने हिंदु-मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया, उसी प्रकार सूफी संतों ने सांस्कृतिक एकता का प्रयत्न किया। सूफी ईश्वर को अपने प्रेमपात्र के रूप में देखना चाहते हैं। सच्चा गुरु मनुष्य की आत्मा का परमात्मा से मिलन करा सकता हैं। सूफई संतों ने हिंदुओं की प्रेमगाथाओं को लेकर अपने अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति की। मलिक मुहम्मद जायसी इस शाखा के प्रधान कवि थे। कुतबन, मँझन, उसमान, शेखनबी, भाशिमशाह, नूर मुहम्मद फाजिलशाह आदि कवियों का नाम भी इस परंपरा में लिया जाता है। कुछ हिंदु कवियों जैसे - दामों, हरिराम, मोहनदास आदि ने भी प्रेममार्गी परंपरा को अपनाया।

-: सूफी मत के सिद्धांत :-

1. ईश्वर :-

सूफी मत के अनुसार ईश्वर एक है, जिसका नाम 'हक' है। आत्मा और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है। सूफी संतों का ईश्वर सृष्टि का कर्ता, अलख अनादि, सर्वशक्तिमान, अजन्मा, सर्वव्यापी, अनंत और अवर्णनीय होने पर भी उनका प्रियतम है। सूफियों में महत्वपूर्ण बात यह है कि ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र साधन 'प्रेम' होता है।

2. प्रेम :-

सूफी कवियों का काव्य प्रेमगाथाओं के रूप में उपलब्ध होता है। यह प्रेम निःस्वार्थ है। सूफी फकीर इस प्रेम के नशे में मस्त होकर परमात्मा में लौ लगा लेते हैं। उन्हें शरीर आदि बाह्य संसार की बातों का कुछ ज्ञान नहीं रहता। सूफी संत ईश्वर को स्त्री के रूप में मानते हैं। भक्त उस स्त्री की, या प्रियतमा की प्रसन्नता के लिए बहुत प्रयत्न करता है। वह उससे प्रेम की भीख माँगता है।

3. शैतान और पीर :-

हिंदु धर्म के अनुसार आत्मा-परमात्मा के मिलन में 'माया' बाधक है। सूफी मत वाले भक्त और ईश्वर के मिलन में 'शैतान' को बाधक मानते हैं। इस शैतान से बचने के लिए सूफियों ने एक 'पीर' (गुरु) की आवश्यकता दिखलाई है। इसलिए सूफीमत में पीर का महत्व माना गया है। यह पीर, गुरु भक्त को शैतान से बचाता है।

4. जीव :-

कुरान में ब्रह्म-जीव का संबंध स्वामी और सेवक का है। अल्लाह सर्वोपरि है तथा मुहम्मद उनका स्थूल है। सूफियों ने वेदांतियों की तरह जीव को ब्रह्म माना है। आदमी अल्लाह का प्रतिरूप है। मूलतः अल्लाह और बंदे में कोई अंतर नहीं। सूफियों पर अद्वैतवादियों का काफी प्रभाव पड़ा है। परंतु वेदांत ज्ञानाश्रित है तो सूफी मत भावाश्रित या प्रेमाश्रित है।

5. सृष्टि :-

सूफियों की दृष्टि में सृष्टि का उपादान शक्ति है, जो इन्सान में भी अंशरूप में स्थित है। सूफियों के मतानुसार सृष्टि यह दर्पण है जिसमें अल्लाह के आत्मदर्शन की कामना पूरी होती है। इस दर्पण में अल्लाह का जो प्रतिबिंब पड़ता है, वहीं इन्सान है।

6. अन-अल-हक्क :-

अल्लाह और इन्सान एक ही तत्व के बने हैं। सूफियों की साधना यहीं है कि साधक 'अन-अल-हक्क' (मैं ब्रह्म हूँ) को स्वयं अनुभव कर सके। अतः उसे साधना की आवश्यकता पड़ती है, जो विरह की साधना है।

* * *

प्रकरण 8
सगुण भक्ति साहित्य और उसकी शाखाएँ - रामभक्ति, कृष्णभक्ति दोनों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

मध्ययुगीन सगुण भक्ति उपासना तथा सगुण भक्तिसाहित्य की रचना के बारे में देशी-विदेशी विद्‌वानों ने कई तर्क प्रस्तुत किए हैं। वेबर, कीथ, ग्रियर्सन, विल्सन आदि पाश्चात्य विद्‌वानों ने कृष्ण को क्राइस्ट और कृष्णभक्ति को ईसामसीह की प्रेमोपासना का रूप सिद्‌ध करने का प्रयास किया है। वेबर ने तो कृष्ण जन्माष्टमी पर्व और 'महाभारत' में वर्णित श्वेत दीप को भी ईसाई धर्म की देन बताया है। लेकिन जिन कल्पित तथ्यों के आधार पर सगुण भक्ति को अभारतीय सिद्‌ध करने का प्रयास किया गया, उन सभी तथ्यों को अनुसंधान द्‌वारा अनेक विद्‌वानों ने निर्मूल एवं भ्रामक ठहरा दिया हैं। भारतीय भक्तिभावना का व्यापक विस्तार वैदिक काल से मध्ययुग तक होता आया है।

सगुण भक्ति उपासना का एक और भी कारण बताया जाता है। मुगल शासकों की साम्राज्य स्थापना के बाद हिंदू जनता एक प्रकार की लाचारी, परवशता और निराशा में लीन होकर ईश्वर की शरण में जाने के सिवाय किसी सहारे को ढूँढ नहीं पा रही थी। इसीलिए राम और कृष्ण की सगुण भक्तिद्‌वारा वह ऐसे अवतारी भगवान को अपने पास रखना चाहती थी जो निसंबल, त्रस्त, पीड़ित और निराश हिंदू जनता की रक्षा कर सकें। इस सगुणोपासक भक्त कवियों ने नाथपंथ या अन्य निर्गुणपंथी कवियों का अनुसरण न करते हुए अवतारी विष्णु भगवान को अपना आराध्य बनाया और उसके रूप, शील, गुण, सौंदर्य आदि के मनोहारी चित्र अपने काव्य में अंकित किए। इस प्रकार के वर्णनों में यह धारणा रही कि राजनीतिक दासत्व से पीड़ित होने पर भी भक्त को शांत और आत्मनिर्भर होने का मार्ग सगुण भक्ति के माध्यम से सुलभ हो सकता है। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्‌वानों ने इन भक्त कवियों की भक्तिभावना के पीछे राजनीतिक परिस्थिति का प्रच्छन्न प्रभाव स्वीकार किया। इस कारण का भी हम पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि सगुण भक्ति परंपरा का अनुशीलन करने से यह बात होती है कि हिंदी के भक्त कवियों की सगुण भक्तिसाधना संपूर्ण रूप से या अंशतः राजनीतिक परिस्थिति या परिवेश का परिणाम न होकर वैदिक काल से चली आई भक्ति का ही एक रूप था। अवतारवाद की कल्पना के साथ ही इस देश में सगुण भक्ति के इस व्यापक भक्तिभाव को स्थान मिल गया था और इसके विभिन्न रूप और प्रकार भी विकसित होने लगे थे। इसलिए हम यह मान सकते हैं कि यदि राजनीतिक दास्यत्व का दुखद प्रसंग न भी आता तब भी सगुण भक्ति अपने स्वाभाविक रूप में विकसित अवश्य होती।

सगुण भक्ति के प्रबल प्रवाह का एक अन्य कारण भी विद्‌वानों द्‌वारा दिया जाता है। बौद्‌ध और जैन धर्मों को नास्तिक ठहरा देने के बाद अद्‌वैतवाद का प्रचार हुआ और शंकराचार्य इस सिद्‌धांत के प्रबल पोषक बने। ब्रह्मज्ञानी आचार्यों के साथ कुछ अज्ञानी और निरक्षर ब्रह्मवादी भी पैदा हो गए। वैराग्य और मायावाद का ढोंग करने वाले इन साधुओं ने समाज में ऐसी भी लहर अवश्य पैदा कर दी थी जो संसार को क्षणभंगुर बताकर विरक्त बनने का प्रोत्साहन देनेवाली थी। ऐसे दंभी साधकों से बचने और संसार को सारयुक्त मानकर भगवद्‌भक्ति के पथ पर जनता को लाने के लिए सगुण साकार अवतारी विष्णु की भक्ति का प्रवर्तन दाक्षिणात्य आचार्यों द्‌वारा किया गया। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं - रामानुज, निंबार्क, मध्य, वल्लभाचार्य आदि। इन आचार्यों ने शंकराचार्य के अद्‌वैतवाद का विरोध करते हुए भक्तिमार्गीय सगुणोपासना को प्रश्रय दिया। अपनी सांप्रदायिक दृष्टि के साथ नवीन अद्‌वैतदर्शन स्थापित किया। तुलसीदास, सूरदास आदि कवियों ने इन आचार्यों के द्‌वारा प्रतिपादित सगुण भक्तिमार्ग को प्रशस्त किया।

सगुण भक्ति उपासना में भी दो पंथ रहे। भक्तकवियों ने अपनी आराधना का आलंबन श्रीराम को माना तो कुछ भक्तों ने श्रीकृष्ण को माना। इसी कारण सगुण भक्ति में भी रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति के प्रवाह प्रस्फुटित हुए। प्रागैतिहासिक युग से आधुनिक युग तक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र के शील, शक्ति एवं सौंदर्य से मंडित अलौकिक व्यक्तित्व के विविध रूपों ने जनमानस को आकृष्ट किया है। रामकथा का भक्तिभावना की दृष्टि से आख्यान अगस्त्य संहिता, राघवीय संहिता, रामपूर्व तापनीय उपनिषद्, रामोत्तर तापनीय उपनिषद, रामरहस्योपनिषद आदि धार्मिक ग्रंथों में उपलब्ध होता है। आध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अद्‌भुत रामायण, भुशुंडि रामायण, हनुमत् संहिता, राघवोल्लास आदि ग्रंथों में भी रामकथा की धार्मिक एवं दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

जैन और बौद्‌ध ग्रंथों में भी रामकथा आती है। इनमें राम को परब्रह्‌म के रूप में ग्रहण नहीं किया है। श्रीराम का चित्रण असाधारण शक्तियों से संपन्न महापुरुष के रूप में हुआ है। पुराणग्रंथों में उपलब्ध अवतारवाद की भावना इन ग्रंथों में नहीं है। वैष्णवभक्ति के विकासक्रम में रामभक्ति सर्वप्रथम दक्षिण के आलवार संतों की वाणी के माध्यम से प्रस्फुटित हुई और उसके अनंतर उत्तरी भारत में उसका विकास हुआ।

आचार्य रामानंद ने सर्वप्रथम संकुचित रुढ़ियों में आबद्‌ध और बाह्‌य आक्रमणों से संत्रस्त, समसामायिक हिंदु समाज को रामभक्ति का अभेद्‌य कवच प्रदान किया। धनुषबाणधारी राम के लोकरक्षक रूप की उपासना प्रारंभ कर उन्होंने एक ओर हिंदू समाज की पराजित मनोवृत्ति को उद्‌बुद्‌ध किया और दूसरी ओर बलपूर्वक मुसलमान बनाए गए हिंदुओं को रामतारक मंत्र देकर पुनः हिंदु धर्म में दीक्षित करने की नई व्यवस्था भी स्थापित की। भक्तिभावना को ऊँच-नीच एवं बाह्‌य आडंबरों से मुक्त करने का श्रेय भी आचार्य रामानंद को ही प्राप्त होता है। इनकी शिष्य परंपरा में निर्गुणोपासक एवं सगुणोपासक दोनों ही थे। हिंदी का भक्तिकालीन रामकाव्य मुख्यतः इन्हीं के सिद्‌धांतों से अनुप्रेरित हैं।

रामकथाओं के ओज एवं माधुर्य को जनमानस की भावभूमि पर अधिष्ठित करने का श्रेय भक्तिकालीन भक्तकवियों को ही प्राप्त होता है। भक्तिकाल का राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण भी राम के लोकरक्षक रूप की अभिव्यक्ति के सर्वाधिक अनुकूल था। उत्तरी भारत में रामभक्ति के प्रवर्तन का प्रमुख श्रेय आचार्य रामानंद को प्राप्त है। रामकाव्य परंपरा के अंतर्गत 'रामरक्षा-स्त्रोत्र' उनकी प्रसिद्‌ध रचना है। उनके शिष्यों ने राम के निर्गुण-निराकार और सगुण साकार रूप की उपासना के आधार पर रामभक्ति दो भिन्न भावधाराओं में पल्लवित किया। आचार्य रामानंद के बाद उनकी शिष्य परंपरा में कवि अग्रदास, ईश्वरदास, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, केशवदास, सेनापति आदि कवियों ने राम की सगुण रूप में आराधना की। उसी से संबंधित भक्ति रचनाएँ निर्माण की।

-: सगुण भक्ति साहित्य में कृष्णभक्ति की शाखा :-

मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। श्रीकृष्ण का वर्णन भारतीय पुराणों में तथा भारतीय इतिहास में सर्वाधिक हुआ है। जो इतिहासकार 'महाभारत' को ऐतिहासिक घटना मानते हैं, वे भारतीय इतिहास का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति श्रीकृष्ण को ही ठहराते हैं। महाभारत युद्‌ध के सूत्रधार के रूप में उनका बुद्‌धि कौशल, पराक्रम, पुरुषार्थ और तेजस्वी व्यक्तित्व सर्वत्र व्याप्त है। जो अनुसंधानकर्ता कृष्ण को केवल अध्यात्म क्षेत्र से संबद्‌ध ब्रह्‌म, परब्रह्‌म, ईश्वर, विष्णू आदि के रूप में स्वीकार करते हैं, वे श्रीकृष्ण को पूर्णावतार होने के कारण सर्वोच्च देवता मानते हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्ण वैदिककालीन देवता हैं और महाभारत काल तक उनका निरंतर विकास हुआ है।

कृष्ण विषयक काव्य का प्राचुर्य हमें बारहवी शताब्दी के बाद देखने को मिलता है। बोपदेव की 'हरिलीला' और वेदांतदेशिक की 'यादवाभ्युदय' कृष्णविषयक प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। हरिचरित काव्य, गोपलीला, कंसनिधन महाकाव्य, ब्रजबिहारी, गोपालचरित, मुरारीविजय नाटक और हरिविलास काव्य तेरहवी से पंद्रहवी शती के मध्य की प्रख्यात कृतियाँ हैं। सोलहवी शताब्दी में कृष्ण चैतन्य के विद्वान शिष्य गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और जीव-गोस्वामी ने कृष्णभक्ति को साहित्यशास्त्र की रस परिपाटी पर स्थापित किया। आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य का प्रारंभ विद्यापति के द्वारा हुआ ऐसा माना जाता है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने 'पदावली' की रचना की। इस पदावली का स्थान कृष्णभक्ति शृंगार में अप्रतिम है। महाराष्ट्र के वारकरी तथा महानुभाव संप्रदाय में भी कृष्णभक्ति साहित्य की काफी रचनाएँ हुई हैं। इनमें कुछ कवियों ने अपभ्रंश मिश्रित हिंदी के पद लिखे हैं। इनमें निर्गुण और सगुण भावना का मिश्रण हैं। संत नामदेव के कुछ पदों में कृष्ण का सगुण भक्तिपरक रूप मिलता है। बंगाल के सहजिया संप्रदाय में भी राधा-कृष्ण भक्ति का वर्णन मिलता है। रस और रति नाम से कृष्ण और राधा का उल्लेख इस संप्रदाय की विशेषता है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का प्रचार बड़े उत्साह तथा भक्ति के साथ हुआ। इस संदर्भ में वल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय तथा चैतन्य संप्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'वल्लभ संप्रदाय' के अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्णानंद स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म है। वे सत् चित और आनंद स्वरूप हैं। इस भक्ति में किसी प्रकार के साधन या कर्मकांड की अपेक्षा नहीं होती। इस संप्रदाय के संतकवि सूरदास ने कृष्णभक्ति साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया है।

निंबार्क संप्रदाय में राधा के साथ कृष्ण की भक्ति की जाती है। निंबाकाचार्य, श्रीभट्ट, हरिव्यास देव आदि इस संप्रदाय के विशेष संतकवि हैं।

राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण के बजाय राधा का स्थान प्रमुख होता है। इसमें प्रेम को ही भक्ति तथा संप्रदाय का मूलाधार माना जाता है। दामोदरदास, हरिराम व्यास, चतुर्भुजदास आदि कवि इसके प्रमुख माने जाते हैं।

'हरिदासी' या 'सखी' संप्रदाय में सहज शृंगार रस में लीन होकर निकुंज-लीला-परायण कृष्ण की उपासना की जाती है। सखी संप्रदाय का 'रूप और प्रेम का सिद्धांत' प्रेमदर्शन अथवा सौंदर्यशास्त्र के अति निकट है। इस सौंदर्य सिद्धांत ने भक्तों और कवियों को भक्त बना दिया। इस संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास ने 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' इन दो रसमयी रचनाओं द्वारा अपार यश कमाया।

गौड़ीय या चैतन्य संप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु माने जाते हैं। उनकी भक्तिभावना के आधारबिंदू थे - प्रेम, ममता और भावुकता। इस संप्रदाय के चैतन्य महाप्रभु के साथ-साथ बलदेव विद्याभूषण, रामराय, सूरदास, मनमोहन आदि कवि विशेष हैं।

भक्तिकाल में कुछ ऐसे कवि भी हुए जो किसी संप्रदाय से संलग्न नहीं थे। उन्होंने राधा-कृष्ण की लीलाओं को अपने स्वतंत्र भाव से वर्णित किया है। इनमें मीराबाई, रसखान आदि संतकवि प्रमुख हैं।

कृष्णकाव्य ने हिंदी साहित्य को अनेक विषय प्रदान किए। गीतिकाव्य भी कृष्णकाव्य के कारण मुखरित हुआ। कवियों ने विभिन्न राग-रागिणीयों में पद बाँध कर संगीतात्मकता का परिचय दिया और शांत रस का सुंदर निरूपण किया।

* * *

प्रकरण 9
भक्तिकालीन नीति-साहित्य का सामान्य परिचय

आदिकाल से ही भारतीय चिंतन भौतिक सुखों या ऐहिकता की अपेक्षा पारमार्थिक तत्वों को महत्व देती रही है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, अहंकार आदि से बचने के लिए तथा उपकार, दान, दया और ईश्वर चिंतन की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति प्राचीनतम ग्रंथ से ही मिलती है। हमारे सभी पुराण, वेद या रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्य नीति का संदेश देते हैं। संस्कृत काव्य साहित्य में भी हमें हर जगह नीति का उपदेश मिलता हैं। संस्कृत में अनेक नीतिग्रंथ भी मिलते हैं।

जैसे : चाणक्य नीति, विदूर नीति तथा भर्तृहारि नीतिशतक। अनेक सुभाषित संग्रहों में नीति वचनावलि मिलती हैं। पालि भाषा के ग्रंथों में भी नीतिकाव्य तथा नीति का उपदेश अधिक मात्रा में मिलता है। प्राकृत और अपभ्रंश में बौद्ध सिद्धों तथा जैन संतों की रचनाओं में परलोक, मोक्ष, आत्म साक्षात्कार आदि पर बल देने के साथ ही त्याग, संयम, दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि को विशेष महत्व दिया गया है। नाथपंथियों और वज्रयानी सिद्धों की रचनाओं में भी उपदेशों की ही प्राथमिकता है। तात्पर्य यह है कि नीतिकाव्य की एक पुष्ट परंपरा पहले से ही विद्यमान थी। अतः भक्तिकाल में इसका विकसित होना स्वाभाविक था।

भक्तिकाल में नीतिकाव्य के तीन रूप मिलते हैं।

1. कबीर, नानक दादू आदि संतों की रचनाओं में नीतिसंबंधी पद धर्मोपदेशों के रूप में कहे गए थे।
2. रामचरितमानस, पद्मावत आदि प्रबंध काव्यों में जगह जगह पर नीतिसंबंधी उपदेश या वचन कथाक्रम में आनुषांगिक रूप में मिलते हैं।
3. कुछ ऐसे भी कवि हैं जिन्होंने नीतिकाव्य की ही रचना की है।

नीतिकाव्य की धारा के प्रथम उल्लेखनीय कवि-जैन कवि पद्मनाभ है। सन 1486 में उन्होंने अपने आश्रयदाता डूंगर सेठ के नाम से 'डूंगर-बावनी' नाम की साहित्य रचना की है। उसमें 53 छप्पय हैं। इसमें दान, दया, कर्मफल, नम्रता आदि में ही जीवन साफल्य माना गया है। व्यसनों से बचने की सलाह दी गई है। सन 1523 से सन 1526 तक जैन-कवि ठाकुरसी ने 'कृपण-चरित्र' और 'पंचेंद्रीवेलि' इन दो नीति ग्रंथों की रचना की। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ मुंबई के दिगंबर मंदिर और जयपुर के वधीचंद मंदिर में सुरक्षित है। 'कृपण-चरित्र' में एक कृपण सेठ तथा उसकी उदार पत्नी की कथा है, तथा 'पंचेंद्रीवेलि' में इंद्रिय निग्रह संबंधी छप्पय हैं। जिनमें गज, मीन, भ्रमर, पतंग, मृग आदि के माध्यम से स्पर्श, रस, रूप, गंध आदि से बचने के सुझाव है। कवित्व की दृष्टि से दोनों कृतियाँ साधारण स्तर की हैं।

भक्तिकालीन नीतिसाहित्य में सन 1527 में लिखी 'छीहल बावनी' विशेष प्रसिद्ध है। यह रचना अग्रवाल कुल में पैदा हुए 'छीलह कवि' ने लिखी है। इस रचना में 53 छप्पय हैं, जिनमें व्यावहारिक विषयों पर सुंदर विवेचन मिलता हैं। छीहल-बावनी के अलावा कवि छीहल ने 'पंच सहेली की बात' तथा 'पंथी गीत' आदि अन्य रचनाएँ भी की हैं। गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली भी इन्हीं की समकालीन है। रत्नावली ने उद्बोधनात्मक नीतिकाव्य की रचना की है। रत्नावली-दोहा-संग्रह में 111 दोहें हैं, जिनमें विविध विषयों का प्रतिपादन हुआ है। कामेच्छा से दूर रहने के लिए संयम का महत्व देनेवाला यह दोहा है -

"घी को घट है कामिनी, पुरुष तपत अंगार।
रत्नावलि घी अगिन को, उचित न संग विचार।।"

सोलहवी शती के मध्य में रहे कवि-देवीदास कृत 'राजनीति के कवित्त' की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित हैं। यह शेखावटी के राव लूणकरण के मंत्री थे जो जाति से वैश्य थे। इनके काव्य की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से भी इनका काव्य सुंदर बना है। इस रचना में राजनीति के साथ साथ अन्य विषयों का भी निरूपण मिलता है। सोलहवी शती के दूसरे कवि जमाल की गणना भी राजस्थान के लोकप्रिय नीतिकारों में की जाती है। सन 1570 में रचित 'जमाल दोहावली' के कुछ दोहे पठनीय हैं -

"रंग ज चोल मजीठ का, संत बचन प्रतिपाल।
पाहण रेख रु करम गत, ए किमि मिटे जमाल।।
पूनम चाँद कुसुंभ रंग, नदी-तीर द्रुम-डाल।
रेत भीत भुस लीपणो, ए थिर नहीं जमाल।।"

बीकानेर के महाराज राजसिंह के राजकवि-उदैराज ने भी नीतिकाव्य में योगदान दिया है। उनके रचे 'उदैराज को दूहा' और 'गुणबावनी' यह रचनाएँ बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय में सुरक्षित हैं। इन रचनाओं की भाषा राजस्थानी है तथा इन्होंने नीतिसंबंधी विविध विषयों का उत्कृष्ट वर्णन किया है। कवि उदैराज के समसामायिक कवि-बांन का 'कलिचरित्र' अनुप पुस्तकालय, बीकानेर में हस्तलिखित के रूप में सुरक्षित हैं। कलिचरित्र में 45 पद्य हैं, जिनमें प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा तथा हास्यरसपूर्ण व्यंग्यात्मक शैली में कलिकाल की विडंबनाओं का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में कवि बांन ने जहांगीर की प्रशंसा भी की है। अवधि में कवियों में दादू दयाल के शिष्य वाजिद भी प्रसिद्ध है। कवि वाजिद के सभी साहित्य का पता नहीं चलता, परंतु उनके नाम के चौदह ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं - ग्रंथगुण उत्पत्तिनामा, ग्रंथ प्रेमनामा, ग्रंथ गरजनामा, साखी वाजिद आदि। कवि वाजिद ने दोहा, चौपाई और अरिल्ल छंदों का प्रयोग किया है तथा इनकी रचनाओं में दया, दान, साधुसंगति, इंद्रिय-निग्रह, मनोयोग आदि विषयों की प्रधानता मिलती हैं।

भक्तिकालीन नीतिकवियों में जैन-कवि बनारसीदास का मुख्य स्थान है। इनका जन्म सन 1586 ई. में जौनपुर में हुआ था। ये सम्राट अकबर के प्रशंसक थे, जहांगीर के दरबार में भी थे तथा शहाजहाँ के दरबार में तो इन्हें विशेष स्थान था। 'नवरस पद्यावलि', 'समयसार नाटक', 'बनारसी विलास', 'अद्‌र्ध कथानक', 'भाषा सूक्ति मुक्तावली' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें कंचन और कामिनी के त्याग तथा सत्य, क्षमा, शील, अपरिग्रह, नम्रता, निर्लोभ, अहिंसा आदि गुणों के निर्वाह पर बल दिया गया हैं। नीतिकाव्य के साथ ही इन्होंने अध्यात्मपरक काव्य की भी रचना की है। ये समस्त प्राणियों में एक ही परमेश्वर का अंश मानते थे, अतः हिंदु-मुसलमान, हिंदु-जैन, ब्राह्मण-शुद्र आदि में भेद नहीं मानते थे। इनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

"माया छाया एक है, घटै बढै छिन माहिं।
इनकी संगत जे लगें, तिनहिं कहीं सुख नाहिं।।
एक रूप हिंदु तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की द्‌विविधा मान कर, भए एक सौ दोय।।"

'प्रेमवाटिका' में दोहे और 'सुजान रसखान' में कवित्त, सवैये हैं। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का सहज और स्वाभाविक रूप मिलता है। उनका यह छंद अत्यधिक प्रसिद्ध है।

"मानुस हों तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन;
जो पसु हों तौ कहा बसु मेरो चरौ नित नंद की धेनु मँझारन।

पाहन हों तौ वही गिरि को जो भयो ब्रज-छत्र पुरंदर कारन;
जो खग हों तौ बसेरो करौं उन कालिंदी-कूल कदंब की डारन।"

रसखान की गणना भक्त कवियों में की जाती है। वस्तुतः वे 'भक्त' और 'कवि' से भी पहले एक सहृदय भावुक व्यक्ति हैं। उनकी एकांतिक प्रेममयी उमंग ने उनके काव्य को सचमुच 'रस की खान' बना दिया है। उन्होंने अनंत, अलौकिक रस के आगार श्रीकृष्ण के लीलागान के रसास्वादन में ही स्वयं को कृतकृत्य समझा।

'त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानि"

प्रेमतत्व के निरूपण में रसखान को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। उनके काव्य का प्रमुख रस है - शृंगार, जिसके आलंबन है - श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण के रूप पर मुग्ध राधा एवं गोपिकाओं की मनःस्थिति के चित्रण के माध्यम से रसखान ने शृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है।

रसखान की काव्य-भाषा शुद्ध परिमार्जित एवं साहित्यिक ब्रज है। माधुर्य एवं प्रसाद गुण के सहज समावेश ने उनकी काव्यभाषा को अत्यंत सरस और सजीव बना दिया है। गीतिकाव्य की परंपरा होते हुए अपनी रचनाओं के लिए कवित्त और सवैया छंद को अपनाना उनकी स्वच्छंद वृत्ति का सूचक है। वे किसी परंपरा के बंधन में नहीं बँधे। उनकी भक्ति किसी सांप्रदायिक बंधन में नहीं रही। उनके काव्य में उनके स्वच्छंद मन के सहज उद्गार है। इसीलिए उन्हें स्वच्छंद काव्यधारा का प्रवर्तक कहा जाता है।

रहीम :-

सम्राट अकबर के दरबार के रहीम कवि थे। उनका जीवनकाल 1553 से 1626 माना जाता है। वे अकबर के विश्वासपात्र थे। रहीम संस्कृत, अरबी और फारसी के पंडित थे। तुलसीदास उनके बहुत स्नेह करते थे। संसार का उन्हें गहरा अनुभव था। उनके एक एक दोहे में जीवन का गहरा अनुभव भरा हुआ है। बरवै नायिकाभेद और नीति के दोहे उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उन्हें ब्रजभाषा और अवधी पर समान रूप से अधिकार था। उनके 'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिकाभेद', 'मदनाष्टक', 'शृंगार सोरठ', 'रासपंचाध्यायी' आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

"फरजी साह न व्है सकै गति-टेढ़ी तासीर,
रहिमन सूधी चाल ते प्यादो होत वजीर।
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय,
पुरुष-पुरातन की वधु क्यों न चंचला होय।
जे गरीब को आदरैं ते रहीम बड़ लोग;
कहा सुदामा बापुरौ कृष्ण मिताई जोग।"

* * *

प्रकरण 10
भक्तिकालीन कवियों का सामान्य परिचय

1. जायसी :-

प्रेमकाव्य धारा के सर्वप्रथम कवि अब मुल्ला दाऊद माने जाते हैं किंतु इस काव्य धारा के श्रेष्ठ और प्रमुख कवि जायसी हैं। अवध में जायस नामक स्थान से संबंधित होने के कारण वे 'जायसी' नाम से जाने जाते हैं। वे प्रसिद्ध सूफी संत थे और चिश्तिया निजामिया की शिष्य परंपरा में सैय्यद मुहीउद्दीन के शिष्य थे। पहले वे शेरशाह के आश्रय में रहे, फिर गाजीपुर और भोजपुर के महाराज जगतदेव के आश्रय में और अंत में अमेठी के राजा के आश्रय में रहे। जायसी के आशीर्वाद से अमेठी-नरेश को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उससे वे उन्हें बहुत चाहते थे। उनकी मृत्यु सन 1542 के लगभग अमेठी में हुई।

जब जायसी ने पद्मावत की रचना की तब तक काव्य परंपरा काफी प्रौढ़ तथा परिष्कृत बन गई थी। जायसी ने सूफी सिद्धांतों को भारतीय कथा में पिरोया और हिंदुओं को आकर्षित किया। तब तक सूफी कवियों की रचनाएँ केवल कल्पना पर आधारित थी। जायसी ने कल्पना के साथ-साथ ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश भी किया। जायसी की प्रमुख रचना 'पद्मावत' में उन्होंने भारतीय कथा के माध्यम द्वारा अध्यात्मिक अभिव्यंजना की और सूफी सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत की। जायसी ने कभी अन्य मतों की आलोचना नहीं की और तीर्थ, व्रत, रोजा-नमाज आदि की निंदा भी नहीं की। जायसी धर्म का भेदभाव भुलाकर प्रेम की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने सब धर्मों को समान दृष्टि से देखा। कबीर की भाँति जायसी ने कभी अन्य शास्त्रों या वेदों का खंडन नहीं किया तथा लोकव्यवस्था का तिरस्कार भी नहीं किया। उनका कथन हैं -

"विधना के मारग हैं जेते। सरग नखत तन रोआँ जेते।"

'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखरी कलाम' इन तीनों ग्रंथों में उनका यहीं रूप दिखाई देता है। जायसी के ग्रंथों की भाषा बोलचाल की अवधी है। जायसी की भाषा पर फारसी का प्रभाव कम दिखाई देता है। वह पूर्णतः देशी साँचे में ढली हुई है। उसमें स्वाभाविक माधुर्य और अनुठापन है। दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग किया है। प्रेममार्गी सूफी कवियों की कथाओं से अलग एक प्रेमकहानी प्रस्तुत करने में जायसी की अपनी विशेषता है। उससे उनकी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय प्राप्त होता है।

2. कबीर :-

भक्तिकाल की निर्गुण संतकाव्य परंपरा में कबीर का प्रमुख स्थान है। निर्गुण संत परंपरा के वे प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीर सिकंदर लोधी के राज्य काल में हुए थे। (सन 1517-1526) अनेक लौकिक और अलौकिक बातों का समावेश हो जाने से कबीर के जीवनवृत्त के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उनकी जन्मतिथि के संबंध में अनेक मत हैं। कबीर पंथियों में उनकी जन्मतिथि 1398 तथा मृत्यु तिथि 1518 मानी जाती है, जिसके अनुसार कबीर एक सौ बीस वर्ष जीवित रहे। कबीर के जन्म और जाति के बारे में भी विभिन्न मत प्रचलित हैं। स्वयं कबीर ने कई जगहों पर अपने को जुलाहा कहा है। संभवतः वे जुलाहा जाति में पालित पोषित थे। वे नाथपंथी विश्वासों से परिचित थे। कबीर स्वभाव से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा लोगों को उपदेश दिया करते थे। कबीर ने बहुत पर्यटन किया और संतों तथा सूफियों का सत्संग किया। कबीर

साक्षर नहीं थे। उनकी कही जानेवाली रचनाएँ दूसरे व्यक्तियों द्वारा संग्रहित है। कबीर की रचनाओं का संग्रह 'गुरुग्रंथसाहब' में और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तथा डॉ. श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' में हैं। तीसरा संग्रह कबीर पंथियों का 'बीजक' है। इसके तीन भाग है - रमैनी, सबद और साखी। साखियों में दोहा छंद के माध्यम द्वारा सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है। कबीर की भाषा मूलतः खड़ीबोली के रूपों की अधिकता है। उसके साथ ब्रज, अवधी, बनारस तथा मगहर की बोली, पंजाबी, राजस्थानी आदि के रूप मिलते हैं।

कबीर बहुश्रुत थे और यद्यपि वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे और उन्होंने 'राम' शब्द का प्रयोग भी किया है, फिर भी उनके राम दशरथी राम नहीं है। कबीर के राम 'निर्गुण निराकार' राम है, निर्गुण ब्रह्म के रूप है।

"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।"

कबीर की रचनाओं में भारतीय निर्गुण ब्रह्मवाद, सूफियों का रहस्यवाद, योगियों की साधना, अहिंसा आदि बातें होते हुए भी स्वामी-सेवक के संबंध की दृष्टि से सगुण ब्रह्म का उल्लेख हो गया है। कबीर ने एकेश्वरवाद के स्थान पर ब्रह्मवाद का समर्थन किया है। जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है। कबीर ने निर्गुण भक्ति का आश्रय ग्रहण किया। किंतु निर्गुण ब्रह्म शुष्क चिंतन का विषय और दुर्बोध होने के कारण कबीर ने लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम का उपदेश दिया। यह प्रेम व्यक्तिगत साधना से ही प्राप्त होता है। निर्गुण ब्रह्म इतनी सूक्ष्मता का विषय है, जो बिना अनुभूति के समझाया नहीं जा सकता। कबीर की भगवान भावना में 'माधुर्य भाव' विद्यमान है।

"हरि मोर पीउ मैं राम की बहुरिया।" यह 'राम की बहुरिया' प्रियतम से मिलने की उत्कंठा और मार्ग की बाधाओं का अनुभव करती है। वह तीव्र विरह-वेदना से पीड़ित है। आत्मभर्त्सना करते हुए वे कहते हैं -

"जागु पियारी अब क्या सोवे।
रैन गई अब दिन काहे खोवे।।"

अज्ञान को मिटाने के लिए उन्होंने आत्मज्ञान का निर्देश दियाहै, जो सतगुरु के उपदेश बिना प्राप्त नहीं हो सकता -

"हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की कृपया भई सिर ते उतरया बोझ।।"

कबीर ब्रह्म के जिज्ञासु हैं। चिंतन के क्षेत्र के ज्ञानी है। भावुकता और कल्पना लेकर कविता के क्षेत्र में रहस्यवादी है। उनमें अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा है। उन्हें संसार के प्रत्येक कण और व्यापार में प्रियतम का मधुर रूप दिखाई देता है। उन्होंने सारी सृष्टि के साथ परमात्मा का अखंड देखा है। सूफियों की तरह उन्होंने ब्रह्मानंद प्रेमानंद के रूप में वर्णन किया है। रहस्यभावना उन्होंने अनेक लौकिक प्रतीकों, रूपकों और उलटबासियों द्वारा व्यक्त की है। ब्रह्म की भावना अनंत सौंदर्य और अनंत गुणसंपन्न प्रियतम के रूप में की है। इसी प्रेमअवस्था में वे आत्मसमर्पण करते हैं और प्रियतम में अपने को पूर्ण रूप से लीन कर देते हैं।

"लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।"

कबीर में अदम्य उत्साह और आत्मविश्वास था। उन्होंने केवल बाह्याचारों में फँसे रहने वाले लोगों को खूब फटकारा। उनका ज्ञान अत्यंत सरल और व्यावहारिक ढंग से वर्णित है। कबीर मुख्यतः उपदेशक और समाज सुधारक थे। उनकी रचनाओं में सत्यान्वेषण, हृदय की सच्ची उमंग, प्रगाढ़ अनुभूति, उक्तिचमत्कार, व्यंग्य आदि विशेषताएँ मिलती हैं। कबीर ने एक समन्वयात्मक मध्यम मार्ग का सर्जन किया। उन्होंने दोनों धर्मों के ऐसे आडंबरपूर्ण कृत्यों का विरोध किया, जो दोनों के बीच में बाधक रूप थे। उन्होंने परंपरा पालन और अंधविश्वास तथा अन्य अनेक कुरितियाँ और कुप्रथाएँ हटाने की चेष्टा की। कबीर हिंदुत्व और इस्लाम के बीच की एक कड़ी थे। उन्होंने ऊँच-नीच की भेदभावना हटाकर एकीकरण का साहस किया। वेद-कुराण आदि धार्मिक ग्रंथों को महत्व न देकर, धर्म के वास्तविक तत्व पर जोर दिया, क्योंकि इस वास्तविक तत्व के अंतर्गत राम-रहीम में कोई भेद न था। इसप्रकार उन्होंने पाखंड, सामाजिक कुरितियों और कुप्रथाएँ, पारस्परिक कलह और विद्‌वेष हटाने का सफल प्रयत्न किया और ईश्वर की एकता पर जोर दिया। इस दृष्टि से कबीर का मध्यकालीन भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है।

3. सूरदास :-

सूरदास ब्रजभाषा के एक श्रेष्ठ कवि हैं। कृष्ण काव्य में भक्ति की परंपरा में सबसे अधिक श्रेय सूरदास को है। सूरदास के जीवनकाल के संदर्भ में संदिग्धता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने बारे में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। लेकिन उनके समकालीन कवियों ने उनके बारे में अपने काव्य में उल्लेख किए हैं, जिससे हम उनके जन्म-मृत्यु और जीवन के बारे में अनुमान लगा सकते हैं। अनुमानतः सूरदास का जन्म सन 1483 के लगभग और मृत्यु 1584 के लगभग हुई। सूरदास गायक थे, उनके जन्मस्थान के विषय में कनकता और सीही दो ग्रामों का उल्लेख मिलता हैं। वे गड़घाट पर निवास करते थे, विनय के पद गाते थे, पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे। संभवतः वे जन्मांध नहीं थे, किस कारणवश अंधे हुए यह भी ज्ञात नहीं है। उन्होंने हजारो पद रचनाएँ की, सम्राट अकबर से भी भेंट की और अंत में पारसौली में प्राण छोड़े।

सूरदास अष्टछाप के सर्वप्रथम और सबसे अधिक प्रसिद्‌ध कवि हैं। उनकी रचनाओं में 'सूरदास', 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 30-32 वर्ष की अवस्था में सूरदास जी एक प्रसिद्‌ध संन्यासी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें गोपालकृष्ण की भक्ति की ओर उन्मुख किया। सूरदास जी ने उसके बाद वात्सल्य भाव का गायन किया। उनकी रचनाओं में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य (शृंगारभक्ति) पाँचो प्रकार के भक्तिभाव समाविष्ट हैं, किंतु माधुर्य संबंधी अंश सबसे अधिक है। उससे कम वात्सल्यसंबंधी अंश है। बालकृष्ण को उन्होंने प्रेम और माधुर्य की मूर्ति के साथ-साथ शक्ति का प्रतीक भी माना है। बालकृष्ण के प्रति सूरदास ने आत्मसमर्पण कर दिया है। बाल्यकाल के मनोहर वर्णन से सूरदास की निरीक्षण शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। उनका बाल-वर्णन मन को मुग्ध कर लेता है। बालक कृष्ण के विविध रूपों द्‌वारा अनेक मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किए हैं -

"सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत, रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।"

सूरदास ने जन्मोत्सव, छठी, नामकरण, अन्नप्राशन आदि लौकिक आचारों के भी मनोहर वर्णन किए हैं। सूरदास के अनेक पदों का संबंध सांप्रदायिक आचारों से भी है, जैसे कीर्तन, नित्यसेवा, गोचारण, वंशीलीला, भोजन, शयन आदि। नैमित्तिक कीर्तन के अंतर्गत हिंडोला, चाँचर, फाग, बसंत आदि के वर्णन हैं।

सूरदास की राधा हिंदी साहित्य में अनुपम स्थान रखती है। वे श्रीकृष्ण की बाललीलाओं से संबद्ध हैं। राधा भोली तो कृष्ण रसिक शिरोमणी हैं। किंतु राधा भी श्याम पर मन-ही-मन रीझी रहती है। राधा का प्रेम एकांत प्रेम है और वह अपनी पराकाष्ठा पर है। वे श्रीकृष्ण को देखते हुए भी विरह से व्याकुल रहती है। उनका प्रेम स्वच्छ और निर्मल है। संयोग के समय यदि राधा लीलापूर्ण हैं, तो विरह के समय वे गंभीर और मौन हो जाती है। गांभीर्य के साथ-साथ उनमें आत्मसमर्पण की दुर्लभ भावना है। सरलता उनमें अंतिम समय तक रहती है। सूरदास ने राधा-कृष्ण के प्रेमवर्णन में अलंकारिकता, संगीतात्मकता, गीति-काव्यात्मकता और भाषा का अद्भुत माधुर्य प्रकट किया।

भाषा और भाव की दृष्टि से सूरदास एक अत्यंत उच्च कोटि के कवि है। उनमें तन्मयता है। उन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तक काव्य और गीततत्व के सहारे कृष्ण काव्य की एक विशेष परंपरा को जन्म दिया। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देनेवाले सूरदास एक महान कवि थे। उनकी रचनाओं का प्रथम गुण माधुर्य है। उनमें ब्रजभाषा और संगीत दोनों का माधुर्य कोमल शब्दों और भावों के मिश्रण से उत्पन्न हो गया है। उन्होंने मानव हृदय के सूक्ष्म भावों का सुंदर चित्रण किया है, नवीन प्रसंगों की मनोरंजक उद्भावना की है। सूरदास ने प्रेम और वात्सल्य भावों की व्यंजकता के जाने कितने सुंदर पद कहे हैं। बालकों के क्षोभ का एक उदाहरण हैं -

"खेलत में को काको गोसैंयाँ।
जाति पाति हम ते कछु नाहिन, बसत तुम्हारी छैंया।
अति अधिकार जनावत याते, अधिक तुम्हारे हैं कछु गैंया।"

सूरदास ने भावों को स्पष्ट करने में सहायक और शक्ति देनेवाले रसों और अलंकारों का अंतर्दृष्टि के साथ प्रयोग किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टांत, लोकोक्ति, अतिशयोक्ति, रूपक आदि अलंकारों का उन्होंने सुंदर प्रयोग किया है।

'सूरसागर' का एक मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है, जो गोपियों की वचनवक्रता, उपालंभ, सगुणोपासना का निरूपण, संवादशैली आदि की दृष्टि से हिंदी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। एक स्थान पर गोपियाँ उद्धव को सुनाती हुई कहती हैं -

"उधो ! तुम अपनो जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागै, किन बेकाज ररौ।
जाय करौ उपचार आपनौ, हम जो कहत हैं जीं की।
कछू कहत कछुवै कहि डारत, धनु देखियत तहि नीकी।"

सूरदास रचनाओं में एक अंग विनय का है, तो दूसरा शेष रचनाओं का है। विनय के अंशों में सूर केवल भागवत धर्म के अनुयायी हैं। शेष रचनाएँ पुष्टिमार्ग के दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। उनकी रचनाओं में शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार भक्ति इन सब प्रकारों के उदाहरण मिलते हैं।

4. तुलसीदास :-

गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त के बारे में विद्वानों ने विविध मत प्रस्तुत किए हैं। उनके जन्म-संवत् के बारे में भी काफी मतभेद हैं। पं. रामगुलाम द्विवेदी ने जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 स्वीकार किया है। इसी प्रकार इनका जन्मस्थल भी राजापुर या सोरो माना जाता है। गोस्वामी के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसीदेवी था। उनका बचपन अत्यंत दरिद्र अवस्था में गुजरा। माता-

पिता द्वारा छोड़ दिए जाने पर तुलसीदास का पालन-पोषण बाबा नरहरिदास ने किया तथा ज्ञानभक्ति की दीक्षा भी दी। उनका विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। अत्यधिक आसक्ति के कारण जब एक दिन इन्हें अपने पत्नी से मधुर भर्त्सना - "लाज न आई आपको दौरे आएहु साथ।" मिली तब इनका मन लौकिक विषय विकारों परे होकर प्रभुप्रेम की ओर हो गया।

आचार्य शुक्ल ने तुलसीदास जी के छोटे-बड़े बारह ग्रंथों का इतिहास में उल्लेख किया है। दोहावली, कवित्त, रामायण, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्नावली और विनयपत्रिका बड़े ग्रंथ हैं। रामलला नहछु, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली छोटे ग्रंथ हैं। इन सभी रचनाओं में भाववैविध्य गोस्वामी जी की बड़ी विशेषता है। अपने रामभक्ति के माध्यम से लोगों के मन में विश्वास जगाया। रामकथा द्वारा लोगों के सामने राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों को रखा। बिखरे हुए हिंदु समाज को एकत्रित किया। उनकी भक्तिभावना कबीर आदि निर्गुण भक्तों की ज्ञानयोगमयी भावना की भाँति रहस्यमयी नहीं है। वह सीधी, सरल एवं सहजसाध्य हैं। उनके राम सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं, वे सभी के लिए उसी प्रकार सुलभ हैं, जिस प्रकार अन्न और जल।

"निगम अगम, साहब सुगम राम सांचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबहि जग माह।।"

गोस्वामी जी की यह भक्तिभावना मूलतः लोकसंग्रह की भावना से अभिप्रेरित है। जिस समय समसामायिक निर्गुण भक्त संसार की असारता कह रहे थे, कृष्णभक्त कवि अपने आराध्य के मधुर रूप में ही मग्न थे, उस समय तुलसीदास मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य का गुणगान करते हुए लोकमंगल की कामना कर रहे थे। लोगों में विश्वास जगाना चाहते थे। 'रामचरितमानस' में उन्होंने राम और शिव दोनों को एक-दूसरे का भक्त बनते हुए तथा आराधना करते हुए दिखाया है। वैष्णव और शैव संप्रदायों को एक ही स्तर पर लाने का तथा उनमें समन्वय लाने का प्रयास था। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है - गहिस्थ और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावानेग और अनासक्त चिंतन का समन्वय 'रामचरितमानस' में दिखाई देता हैं।

भाव वैविध्य के अनुरूप शैली वैविध्य भी तुलसीदास जी की विशेषता है। अपने समय में प्रचलित वीरगाथा की छप्पय-पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीति-पद्धति, गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति, नीतिकाव्यों की सूक्ति-पद्धति, प्रेमाख्यानों की दोहा-चौपाई की प्रबंध-पद्धति आदि सभी काव्य शैलीयों का सफल प्रयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। प्रबंध सौष्ठव, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, अलंकार-विधान, भाषा और छंदप्रयोग की दृष्टि से भी वे अद्विवितीय कलाकार है। तुलसीदास जी ने शील और शक्ति के प्रतीक राम के लोकपावन रूप का वर्णन कर साहित्य और जीवन दोनों को उज्ज्वल बनाया।

* * *

प्रकरण 11
भक्तिकालीन प्रतिनिधि कवियों का सामान्य परिचय

1. मीरा :-

कृष्णभक्ति परंपरा में मीरा का विशेष स्थान है। माधुर्यभाव और भक्तिभावना का संयोग उसमें था। अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण की वह विरहिणी थी, उसी तरह की तड़प और तीव्रानुभूति ने कृष्णभक्ति का महान काव्य रचा है। उसके जीवनकाल के बारे में निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। जो कुछ ज्ञात हुआ है, उसके आधार पर मीरा के जीवन के बारे में मुख्य बाते इसप्रकार कहीं जा सकती हैं - मीरा रत्नसिंह की पुत्री थी। उनका जन्म 1498 के लगभग कुड़की नामक गाँव में हुआ। 1516 में उनका विवाह भोजराज से हुआ। 1523 में लगभग वह विधवा हुई। वे कृष्णभक्त थी, उनकी अकबर से भेंट हुई थी। 75 वर्ष की आयु में 1573 में उनकी मृत्यु हुई।

मीरा ने विशेष रूप से पदरचना की थी। उनके मुख्य चार ग्रंथ कहे जाते हैं - 'नरसी जी का माहरा', 'गीत गोविंद की टीका', 'रागगोविंद' और 'राग सोरठ'। उनके पदों में वे पद मुख्य हैं जिनका संबंध प्रेम से है और जिनमें उनके वास्तविक हृदयोद्गार पाए जाते हैं। उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की लौ जलाई और अपने अंतरतम की पीड़ा को सरलतम शब्दों में व्यक्त किया -

"ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, तलफ-तलफ जिय जासी।।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करबत लूँगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल की दासी।।"

उनकी यह पदावली विशुद्ध गीतिकाव्य का रूप प्रस्तुत करती है। उनकी विशुद्ध भक्ति में सब संबंधों को तोड़कर इष्टदेव के प्रति आत्मसमर्पण है। उनकी रचनाओं में मधुर भाव की और प्रियतम से मिलने की उनकी अपनी तीव्र उत्कंठा अत्यंत सुंदर अभिव्यंजना हुई है। तुलसीदास के स्वर में स्वर मिलाकर वे गा उठती है -

"राम नाम रस पीजे मनुआ राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सत्संग बैठ नित हरि चरचा सुण लीजे।"

मीरा का प्रेम ही उनकी साधना है। यही प्रेमसाधना विरह की मार्मिक पीड़ा में परिवर्तित हो जाती है। मीरा प्रेमयोगिनी थी। उनकी प्रणयानुभूति और विरहपीड़ा की अभिव्यक्ति रहस्यवाद की भावना से ओतप्रोत है। उनका यह रहस्यवाद अत्यंत सरल और स्वाभाविक शैली में व्यक्त हुआ है। उसमें दुरूहता, जटिलता नहीं, वरन् नारी हृदय की साधना का सहज और सच्चा प्रतिबिंब हैं। गेय, तीव्रानुभूति-प्रधान, अंतर्मुखी, सरल, स्वच्छंद गतिपूर्ण और संक्षिप्त होने के कारण गीतिकाव्य की दृष्टि से मीरा की रचनाएँ आदर्श हैं। उसमें न तो अलंकार संबंधी छंदों के आडंबर हैं। स्वच्छंद भावों की गति के साथ-साथ छंद की गति भी बदल जाती है। काव्य के गुण उनकी रचनाओं में स्वयमेव आ गए हैं। संभवतः वह अपने ईष्ट देव के सामने कीर्तन करती थीं, इसलिए उनके पदों में भावुकता और आवेश ही प्रधान है। विविध राग-रागिणीयों में उनके हृदय की दशाओं के मार्मिक चित्रण मिलते

हैं। उनकी भाषा में राजस्थानी और ब्रज भाषा का मिश्रण हैं। आडंबरहीनता, मधुरता, सरलता, स्पष्टता उसके गुण हैं। उनकी भाषा में कोमलकांत पदावली की अनुपम छटा है -

"एरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाणे कोय।
गगन मंडल पर सेज पिया की, किस विध मिलना होय।।
दरद की मारी बन-बन डोलू, बैद मिल्या नहीं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटेंगी, जब बैद साँवलिया हो।।"

2. नंददास :-

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नंददास का ही महत्वपूर्ण स्थान है। नंददास विट्ठलनाथ के शिष्य थे। उनके जीवनवृत्त के बारे में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। 'भक्तमाल', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' आदि ग्रंथों से कुछ जानकारी मिलती है कि वे तुलसीदास के चचेरे भाई थे। सूरदास के समकालीन थे, रामपुर निवासी थे, जाति के ब्राह्मण थे तथा भक्त थे। नंददास के लगभग सोलह ग्रंथ मिलते हैं, उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है - 'अनेकार्थमंजरी', 'नाममाला', 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत'। 'रासपंचाध्यायी' में भागवत के आधार पर रास का वर्णन है और 'भँवरगीत' में सगुण और निर्गुण पर उद्धव-गोपी-संवाद है। काव्यसौंदर्य की दृष्टि से ये दो रचनाएँ ही मुख्य है। रासपंचाध्यायी में प्रवाहगति का माधुर्य देखने योग्य है। उसमें जिस रस का वर्णन किया गया है, उसके परंपरानुसार लौकिक और पारलौकिक दोनों ही पक्ष है। नंददास ने पारलौकिक पक्ष ही ग्रहण किया है।

"परमातम परब्रह्म, सबन के अंतरजामी।
नारायन-भगवान धरम करि सबके स्वामी।।"

श्रीकृष्ण को परमात्मा और गोपियों को आत्मा मान लेने पर नंददास की कविता का पारलौकिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। रासपंचाध्यायी में शृंगार, शांत और करुण का अत्यंत विशद वर्णन है और माधुर्य तथा प्रसाद गुणों की प्रधानता है। ग्रंथ की भाषा का प्रवाह भी अत्यंत स्वाभाविक और सरस है। नंददास के शब्द रेशम पर मोती की तरह ढलकते हुए चले जाते हैं। शब्दों में विकृति नहीं है, वे यथास्थान सजे रहते हैं। वास्तव में नंददास के लिए यह बहुत ठीक कहा गया है - "और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया।" अनुप्रास, चित्रशक्ति, ईश्वरोन्मुख प्रेम, शब्दों के चुनाव आदि की दृष्टि से नंददासकृत 'रासपंचाध्यायी' हिंदी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से है।

नंददास की दूसरी रचना 'भँवरगीत' में दार्शनिकता, अलंकारों की योजना और मनोवैज्ञानिक चित्र हैं। छंद, रोला और दोहा के मिश्रण से बना एक नवीन छंद है। दार्शनिकता की दृष्टि से भक्ति का निरुपण करते समय नंददास गोपियों द्वारा तर्क कराते हैं -

"जौ उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तै?
बीज बिना तरु जमै मोहिं तुम कहौ कहाँ तैं?
वा गुन की परछाँह की माया दरपन-बीच।
गुन ते गुन न्यारे भये अमल करि मिलि कीच।
सखा सुनु स्याम के।।"

भाषा की दृष्टि से नंददास की रचनाओं में कहावतों, महावरों, शब्दचित्रों आदि के सुंदर प्रयोग हुए हैं। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने काव्य की अनेक शैलियों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। नंददास

के विचारों पर शास्त्रीय और सांप्रदायिक छाप भी पाई जाती है और वे युक्ति और तर्क का आश्रय ग्रहण करते हैं।

3. रसखान :-

सुजान रसखान मुसलमान पठान सरदार थे। वे इस बात के प्रमाण हैं कि कृष्णभक्ति के अंतर्गत मधुर भाव ने सब प्रकार के बंधन तोड़कर अन्य धर्मावलंबियों को भी आकृष्ट किया था। रसखान विट्ठलदास से दीक्षा लेकर कृष्ण प्रेम में तन्मय हो उठे। उनकी कविता का रचनाकाल 1614 माना जाता है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' हैं। रसखान के प्रेम में जितना रस है उतना बहुत कम कवियों में मिलता है। अन्य कृष्णभक्त कवियों की भाँति उन्होंने गीतिकाव्य में रचनाएँ नहीं की। उन्होंने कवित्त-सवैयों में सच्चे प्रेम की अभिव्यंजना की। उनका लौकिक प्रेम ही भगवद्भक्ति में परिणत हो गया था।

इसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में और वल्लभाचार्य ने ब्रज में कृष्णभक्ति का प्रचार किया। सूरदास और तुलसीदास ने उनके सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण कर कृष्णभक्ति व रामभक्ति की अक्षय धारा प्रवाहित की। इन संतों ने भक्तिसाहित्य में जनता की भाषा का प्रयोग किया तथा सामाजिक एकता पर जोर दिया। बौद्धकाल में आचरण पर जोर दिया गया था, किंतु इस काल में भक्तिभावना पर अधिक जोर दिया गया। साथ ही उस समय कर्मकांडों का भी महत्व बढ़ गया था। उत्तर भारत में अनेक धार्मिक संप्रदायों का जन्म हुआ। उन सबने अपने-अपने दृष्टिकोण का प्रचार जनता की बोली में किया। भक्ति और धर्म का मार्ग सबके लिए खोल दिया गया। देश में ज्यों-ज्यों अराजकता कम होती गई, जीवन में स्थिरता आती गई, त्यों-त्यों धार्मिक आंदोलन भी अत्यंत तीव्रता के साथ समाज में अपना प्रभाव प्रकट करने लगी।

हिंदु-मुसलमानों में संपर्क बढ़ता गया। धार्मिक और सामाजिक भेदभाव तो बना रहा परंतु एक दूसरे को समझने का प्रयास भी हुआ। हिंदु-मुसलमानों के बीच की यह दूरी मिटाने का प्रयास सूफी संप्रदाय से हुआ। सूफी संतों में धार्मिक कट्टरता न होने के कारण भारतीय समाज उन्हें आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा। इस्लाम धर्म में धर्मांतरित हुए लोगों ने कब्रो और दरगाहों की पूजा शुरु कर दी। भाषा, साहित्य, चित्रकला, संगीतकला, वास्तुकला, वेशभुषा आदि सभी क्षेत्रों में हिंदु-मुसलमानों के पारस्परिक आदान-प्रदान से मुगलकालीन भारतीय जीवन में समन्वय की एक पुष्ट भावना मिलती है।

* * *

प्रकरण 12

रीतिकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियाँ

हिंदी साहित्य का रीतिकाल धार्मिक या भक्तिकाल का ऱ्हासयुग है। धार्मिक आंदोलन की पवित्रता सत्रहवी शताब्दी से नष्ट हो चली थी। हिंदी साहित्य का यह उत्तर मध्यकाल माना जाता है। इसका समय लगभग सन 1643 से सन 1843 ई. तक बताया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस काल को 'रीतिकाल' के नाम से संबोधित करते हैं। अन्य विद्‌वान इसे 'शृंगारकाल' कहते हैं। इस युग के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति शृंगारवर्णन की थी। अतः इस काल में शृंगारिक रचनाओं का आधिक्य रहा है।

साहित्य के निर्माण में युगीन वातावरण का विशेष योगदान होता है। युगीन वातावरण राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला के मूल्यों द्‌वारा निर्मित होता हैं। किसी कालविशेष साहित्य के अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का ज्ञान होना अपने-आप में अनिवार्य हो जाता है। रीतिकालीन साहित्य के अध्ययन के समय हमें दो सौ वर्षों की दीर्घ परंपरा का समीक्षण करना पड़ता है। इतने लंबे अवकाश में राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाओं में कई उतार-चढ़ाव आए, जिनका साहित्य निर्माण पर बहुत गहरा असर हुआ है।

1. राजनीतिक परिस्थितियाँ :-

राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के विकास और समृद्‌धि का था। उसी प्रकार उनके पतन और विनाश का भी था। जहांगीर ने अपने शासनकाल में अपने राज्य का विस्तार किया। आगे चलकर शहाजहाँ ने भी राज्य का विस्तार तथा वृद्‌धि की। राजपूतों ने भी स्वामीनिष्ठा दिखाकर दिल्ली के शासनकर्ता की अधीनता स्वीकार कर ली थी। पूरे देश में सामान्य रूप से शांति थी। राजकोष भी संपन्न था। ताजमहल तथा मयूर सिंहासन का निर्माण हुआ था। परंतु शहाजहाँ के मृत्यु के समय उसके पुत्रों में सत्ता हासिल करने के लिए संघर्ष छिड़ा। शहाजहाँ के बड़े लड़के दारा की हत्या कर छोटा लड़का औरंगजेब पिता के सिंहासन पर जम गया। औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता तथा अहंमान्यता के कारण वह प्रजा के लिए अप्रिय बना रहा। जागीरदारों, राजाओं और हिंदुओं को धार्मिक उपद्रव होने लगे। वह अपने शासन को सशक्त एवं सुगठित नहीं कर सका।

औरंगजेब के पश्चात उसके पुत्रों में भी सत्ता के लिए संघर्ष हुआ। लगभग पचास वर्षो तक मुगल-शासन एक प्रकार से स्थिर न हो सका। राजसिंहासन पर शासक अल्पकाल के लिए आते रहे। सन 1712 ई. से साम्राज्य का पतन होना आरंभ हुआ। इसके पश्चात आनेवाले शासक विलासी थे, राज्य की देखभाल करने में असमर्थ थे। परिणामतः अत्यवस्था और अशांति बढ़ती गई। छोटे-छोटे जागीरदार भी अपने आपको स्वतंत्र घोषित करने लगे। केंद्र की पकड़ ढीली होती गई। इसी बीच 1736 ई. में नादिरशाह का आक्रमण हुआ। सन 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ। इसके पश्चात विदेशी व्यापारियों ने विशेषतः अंग्रेजों ने स्थिति का पूरा लाभ उठाया। लगभग पूरे उत्तर भारत पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया। सन 1857 के देशव्यापी राज्यक्रांति ने मुगलों को प्रतिष्ठा देनी चाही परंतु सब प्रयत्न असफल रहे। इसप्रकार दो सौ वर्ष के वैभव संपन्न साम्राज्य का अस्त हुआ।

2. सामाजिक स्थिति :-

सामाजिक दृष्टि से इस काल को आदि से अंत तक घोर अधःपतन का युग कहा जाना चाहिए। इस काल के प्रारंभ में जहाँगीर और शाहजहाँ के समय हिंदी प्रदेश में चारों ओर सुख-शांति और समृद्धि थी। युद्ध हिंदी प्रदेश से दूर था। मुसलमानी अत्याचार कम हो चले थे। मुसलमानों ने पूर्ण रूप से अपने आप को भारत का बना लिया था। शांतिपूर्ण स्थिति में दरबारी जीवन विलासी तथा शृंगारपूर्ण होना स्वाभाविक था। राजवंश कला और साहित्य को आश्रय दिया करते थे। कवियों का सम्मान करते थे। कवि भी राजाश्रय खोजते थे। उस समय राजा ही सांस्कृतिक जीवन का केंद्र हुआ करता था। इसप्रकार कवियों को अपने आश्रयदाताओं की रूचि के अनुसार काव्यरचना करना स्वाभाविक था। आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया साहित्य उनकी स्तुति करने वाला, उनके शौर्य का बखान करने वाला था। शृंगार वर्णन भी उसमें अधिकतर होने लगा। राजाओं के, सामंतों के आश्रय में रहने वाले कलावंतों का प्राधान्य हो गया था।

शासित वर्ग में एक ओर श्रमजीवी और किसान आते थे तो दूसरी ओर सेठ, साहूकार, दुकानदार और व्यापारी अमीर और गरीब ऐसी भिन्नता समाज में स्पष्ट रूप से थी। किसान और मजदूर वर्ग सभी ओर से शोषित था। आम जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा संपत्तिरक्षा आदि का भी इस काल में कोई प्रबंध नहीं था। अमीर वर्ग में विलासिता बढ़ गई थी। नारी को अपनी संपत्ति मानकर उसका भोग इनके जीवन का मूलमंत्र बन गया था। समाज में नीति तथा सदाचार का आचरण लुप्त-सा हो गया था। ऐसे समय की साहित्य रचना शृंगार रस से पूर्ण होना स्वाभाविक ही था।

3. धार्मिक परिस्थिति :-

यह काल धार्मिक दृष्टि से भक्ति के पराभव का काल है। भक्तिकाल में भक्ति की एक महत्वपूर्ण लहर थी जो बड़ी व्यापक एवं प्रबल थी, इस काल में वह विकृत हो गई थी। इसके कई कारण थे। राजनीतिक स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी थी। महान व्यक्तित्व का अभाव ही भक्तिधारा की विकृति का प्रमुख कारण बना। कृष्ण की मधुर भाव की भक्ति अब नायक-नायिका, भेद-निरूपण में काम आने लगी और संपूर्ण शृंगारी साहित्य में कृष्ण, राधा और गोपियाँ प्रमुख विषय हो गई। कृष्णकाव्य की भक्तिकाल की उच्च परंपरा रीतिकाल में आगे चलकर भ्रष्ट हो गई। इस विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं, "कृष्णभक्ति परंपरा में श्रीकृष्ण की प्रेममयी मूर्ति को ही लेकर प्रेमतत्व की बड़े विस्तार के साथ व्यंजना हुई है, उनके लोकपक्ष का समावेश उसमें नहीं है। इन कृष्णभक्तों के कृष्ण प्रेमोन्मत गोपिकाओं से घिरे हुए गोकुल के श्रीकृष्ण हैं। बड़े-बड़े भूपालों के बीच लोकव्यवस्था की रक्षा करते हुए द्वारिका के श्रीकृष्ण नहीं है। इस काल के कृष्णभक्त कवियों के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि वे अपने रंग में मस्त रहने वाले जीव थे, तुलसदास जी के समान लोकसंग्रह का भाव इनमें नहीं था। समाज किधर जा रहा है, इस बात की परवाह ये नहीं रखते थे। अपने भगवत् प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से इन्होंने जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले सामान्य लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। भक्तिकाल में जिस राधा-कृष्ण के उदात्त और चरमभक्ति का वर्णन होता था उसी को लेकर रीतिकालीन कवियों ने शृंगारिक उन्मादक उक्तियों से हिंदी काव्य को भर दिया।

उक्त कारणों से ही इस काल में धर्माश्रय में भी उत्कृष्ट साहित्य की रचना नहीं हुई। सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह घोर पराभव का काल था। प्राचीन संस्कृति के मूलाधार भूला दिए गए थे और एक नई संक्रांतिकालीन

संस्कृति का उद्‌भव हो रहा था, जिसका मुख्य आधार मुगलों में विरासत में मिली हुई विलासिता की वृत्ति थी। वैष्णव संप्रदायों के पीठाधीश लोभवश राजाओं और अमीरों को गुरुदीक्षा देने लगे थे जिससे उनका संबंध तत्वचिंतन से छूटकर भौतिकता के साथ हो गया था। मंदिरों में भी अब ऐश्वर्य और विलास की लीला होने लगी थी। जनता के अंधविश्वास का अनुचित लाभ पुजारी और मुल्ला उठाने लगे थे। धर्मस्थान भ्रष्टाचार तथा पापाचार के केंद्र बन गए थे। इस युग में पुरानी परंपरा के सूफी तथा संत अब भी विद्‌यमान थे, पर किसी में भी कबीर, नानक अथवा जायसी जैसा व्यक्तित्व और प्रतिभा नहीं थी, जो जनजीवन को प्रभावित कर सकती। पूर्ववर्तियों के ये प्रचारक थे, परंतु समाज में अपने विचारों से क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में असमर्थ थे।

4. साहित्यिक परिस्थिति :-

रीतिकाल के पूर्व जो भक्तिभाव साहित्य में हुआ करता था, वह आगे चलकर क्षीण होता गया। साहित्य में शृंगार भावना का प्राधान्य होने लगा। पहले जो कृष्ण की मधुर भक्ति (सखि-भाव) प्रचलित हुई थी, उसका पूर्ण परिपाक रीतिकाल में दिखाई पड़ता है। कृष्णभक्ति की तरह रामभक्ति शाखा में भी सखि भाव की मधुर उपासना का विकास हो रहा था। राम-सीता की 'अष्टयाम' विलासलीलाओं का वर्णन जोर पकड़ रहा था। सूफी मत का साहित्य भी अवनति की ओर था। शृंगार रस से पूर्ण साहित्य प्रमुख रूप से राजाश्रय में रचा गया। भूषण आदि कवियों की लोकरचनाएँ भी मिलती है। मूलतः कवि राज्यों से संबंधित रहते थे और राजाओं को संतुष्ट करने के लिए साहित्य का निर्माण होता था। हिंदी प्रदेश में विभिन्न भाषाओं का व्यवहार हो रहा था परंतु शृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने वाली प्रमुख भाषा ब्रजभाषा ही थी। भक्तिकाल में ब्रज और अवधी दोनों प्रमुख भाषाएँ थी। धीरे-धीरे अवधी का महत्व घटता गया। रीतिकालीन साहित्य का सृजन अवध प्रांत और राजस्थान में अधिक हुआ। इसलिए इस साहित्य की भाषा प्रायः अवधी तथा बुंदेलखंडी रही। फारसी राजकीय भाषा होने के कारण उसकी अलंकार प्रधान शैली का प्रभाव हर भाषा पर पड़ा। जनजीवन के निकट होने वाली ब्रजभाषा भी इस प्रभाव से बच नहीं सकी। इस युग के अधिकांश राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए अतिरंजित शैली में उनके गौरव पर साहित्य का निर्माण करते रहे। उस समय कुछ ऐसे भी कवि थे, जो स्वतंत्र रूप से काव्यरचना कर रहे थे। ये कवि राजकीय वातावरण से मुक्त थे। यहीं कारण है कि इनका काव्य राजाश्रित कवियों के काव्य से तुलना में अधिक प्रभावी है। कुल मिलाकर इस युग में राजाश्रित कवियों और जनकवियों द्‌वारा रचित साहित्य गुण और परिणाम दोनों की दृष्टि से इतना विशद है कि हिंदी भाषा इस साहित्य से निश्चित रूप से संपन्न हुई है।

साहित्य के साथ उस समय अन्य कलाओं में भी मौलिकता का अभाव था। प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रधान थी। आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए शृंगारपरक एवं विलास का आधिक्य था। इसप्रकार रीतिकाल में कला एवं काव्य दोनों में समान प्रवृत्तियाँ थी।

* * *

प्रकरण 13
रीतिकालीन साहित्य पर
संस्कृत साहित्य तथा भक्तिकालीन हिंदी साहित्य का प्रभाव

रीतिकालीन साहित्य ने संस्कृत के साहित्यशास्त्र का अनुकरण किया है। रीतिकाव्य पर संस्कृत के अलंकार, रस और ध्वनि संप्रदायों का प्रभाव पड़ा है। रीतिकाव्य के नायिका-भेद पर संस्कृत के नायिका-भेद संबंधी ग्रंथों और कामशास्त्रीय ग्रंथों का संमिलित प्रभाव है।

संस्कृत के अलंकार संप्रदाय का रीतिकाव्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस संप्रदाय के प्रमुख आचार्य भामह, दंडी और उद्‌भट हैं। इन्होंने अलंकार को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए भी काव्य के अन्य उपकरणों, रस, ध्वनि आदि का समावेश भी उसमें कर दिया। इसलिए रीतिकालीन कवि सिर्फ अलंकारवादी नहीं है। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में इन कवियों ने काव्य के सर्वांग पर निरुपण किया। चिंतामणि, जसवंतसिंह, भिखारीदास आदि आचार्यों ने अलंकार के साथ रस, ध्वनि आदि काव्य के सभी अंगों का विचार किया। इनके अतिरिक्त मतिराम, भूषण, पद्‌माकर, रघुनाथ, दूलह आदि ने अप्पय दीक्षित की भाँति अलंकार संप्रदाय पर स्वतंत्र ग्रंथ लिखे। कवि केशव ने अलंकार शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया और काव्य के सभी सौंदर्य विधायक तत्वों को अलंकारों के अंतर्गत समाविष्ट किया।

ध्वनि संप्रदाय के प्रतिष्ठापक आनंदवर्धन थे। मम्मट ने समन्वयवादी दृष्टि से काव्य की आत्मा ध्वनि मानते हुए भी समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया और ध्वनि सिद्‌धांत की महत्ता घोषित की। पंडितराज जगन्नाथ ने भी ध्वनि सिद्‌धांत का प्रबल समर्थन किया। शृंगारकाल के चिंतामणि, जसवंतसिंह, प्रतापसाहि, भिखारीदास आदि ने मम्मट के काव्यप्रकाश को आदर्श मानकर काव्यशास्त्रीय ग्रंथ लिखे।

इसप्रकार रीतिकालीन कवियों की प्रेरणा एवं मूल स्त्रोत संस्कृत के साहित्यशास्त्रीय प्रमुख ग्रंथों को मानना उचित है। संस्कृत में नाट्‌यशास्त्रीय ग्रंथ दशरूपक आदि में जो नायक-नायिका भेद का निरुपण हुआ वह रीतिकालीन आचार्यों ने भी अपनाया। इस काल की शृंगारिक रचनाओं में मुक्तक शैली मिलती है। इसकी प्रेरणा 'हाल की सतसई' से मिली है। हाल की सतसई का बिहारी और मतिराम पर व्यापक एवं स्पष्ट प्रभाव है। इसके अतिरिक्त अमरू कवि के अमरुशतक और गोवर्धन की आर्या सप्तशती नामक संस्कृत रचनाओं का भी रीतिकालीन कवियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। संस्कृत के शृंगारपरक भक्तिपूर्ण स्त्रोतों ने रीतिकालीन शृंगारप्रधान काव्य को बहुत प्रभावित किया।

-: संस्कृत काव्य संप्रदायों के अनुकरण पर रचे गए रीतिकालीन प्रसिद्‌ध ग्रंथ :-

1. **ध्वनि संप्रदाय से संबंधी :-** संपूर्ण काव्यांगों का विवेचन करने वाले भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय', चिंतामणि त्रिपाठी का 'काव्यविवेक', 'कविकुल', 'कल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश' इ.। मम्मट के 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' के आधार पर लिखे गए हैं।

2. **रस संप्रदाय से संबंधी :-** केशवदास की 'रसिकप्रिया', मतिराम का 'जसराज', तोष का 'सुखनिधि', कुलपति का 'रस रहस्य', सुखदेव मिश्र का 'रसार्णव', महाराजा रामसिंह का 'रसनिवास' और 'रसविनोद', देव का

'भाव-विलास' आदि। संस्कृत के कवि भानुदत्त की 'रसमंजिरी' और 'रस तरंगिणी' इन ग्रंथों के आधार पर लिखे गए हैं।

3. **अलंकार संबंधी :-** केशवदास की 'कविप्रिया', महाराजा जसवंतसिंह का 'भाषाभूषण', महाराजा रामसिंह का 'अलंकार दर्पण', मतिराम का 'ललित-ललाम', भूषण का 'शिवराज भूषण', श्रीपति की 'अलंकार गंगा', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय' आदि ग्रंथों की रचना जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' इन ग्रंथों के अनुकरण से की गई है।

रीतिकाल में कवियों ने प्रमुखता से रीति या शास्त्र की भूमिका पर अपनी कविता का निर्माण किया है। इन्हें संस्कृत के शास्त्रपक्ष की समृद्ध भूमिका मिली थी। इसलिए इनमें से कुछ कवियों ने काव्यशास्त्र के लक्षणों को पद्यबद्ध करके लक्ष्य रूप में अपनी रचना प्रस्तुत की है। कुछ कवियों ने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, किंतु उनकी रचनाएँ रीति की परिपाटी पर है। इसप्रकार लक्षण और लक्ष्य दो प्रकार के काव्यग्रंथों की रचना रीतिबद्ध कवियों ने की। इन ग्रंथों में रीतिबद्ध कवियों ने कोई मौलिक उद्भावना नहीं की है, वरन् संस्कृत के काव्यशास्त्र के विवेचन को पद्यबद्ध कर दिया है। इसप्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि रीतिकालीन साहित्य पर संस्कृत काव्यशास्त्र का व्यापक प्रभाव पड़ा है। यही उसके प्रेरणा के मूल स्त्रोत रहे हैं।

-: रीतिकालीन साहित्य पर भक्तिकालीन साहित्य का प्रभाव :-

हिंदी साहित्य के इतिहास में हर काल में साहित्यकारों के मन में भक्तिभावना अक्षुण्ण रही है। रीतिकालीन कवियों के मन में भी भक्तिभावना अवश्य रही थी। किंतु आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने चित्ताकर्षक, अलंकृत तथा चमत्कृतिजन्य भाषा का प्रयोग कर काव्यनिर्मिती की। अपने काव्य का आधार भक्तिकालीन देव-देवता ही थे। रीतिकालीन कवियों में नागरीदास, अलबेली अलिजी, रसखान, रहीम, आनंदघन आदि कवि कृष्णभक्त कवियों में उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने अपनी काव्यकृतियों के नायक के रूप में भक्तिकाल की तरह श्रीकृष्ण को ही चुना था। लेकिन रीतिकाल के कवियों ने श्रीकृष्ण की बाललीलाओं को लक्ष्य न करते हुए कृष्ण की माधुर्यभाव की भक्ति को प्रधानता दी। माधुर्यभाव के अंतर्गत गोपीलीला प्रमुख हैं। रीतिकालीन कवियों ने गोपीलीला के दोनों रूपों अर्थात रास एवं वियोग की सुंदर व्यंजना की। कृष्णकाव्य के सौंदर्य को बढ़ा दिया। इसी माधुर्यभाव के अंतर्गत 'भ्रमरगीत' की रचना का विशेष महत्व है। इसमें प्रेमात्मक व्यंग्योक्तियों का सुंदर स्वरूप मिलता है। आगे चलकर इस माधुर्यभाव के अंतर्गत ही नायक-नायिका भेद एवं नख-शिख वर्णन इत्यादि का विकास हुआ।

रीतिकाल के आनंदघन कवि स्वच्छंद प्रेम के महान कवि थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में 'श्रीकृष्ण' के लिए 'सुजान' शब्द रखा। कृष्ण की प्रेमलीलाओं का बड़ा मनोहारी वर्णन इनके काव्य में मिलता है। प्रेम के उलाहनों की, व्यंग्योक्तियों की तथा तन्मयता की इनकी कविता में बड़ी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। अन्य कवियों ने कृष्ण को अपने काव्य में नायक के रूप में लिया परंतु इनके कृष्णभक्तों की रक्षा करने वाले अधर्म को नष्ट करने वाले कृष्ण नहीं थे। इनके कृष्ण तो गोपियों से मिलने के लिए तड़पने वाले, प्रेम के पपीहे स्वरूप थे। माधुर्यभाव की अधिकता होने के कारण 'राधा-कृष्ण' के भक्तिभाव का लोप होकर प्रेम शृंगार की वृद्धि हुई।

इसप्रकार रीतिकाल में कवियों पर भक्तिसाहित्य का प्रभाव तो अवश्य रहा, परंतु भक्तिभावना का लोप होता गया। ये कवि अपने प्रारंभिक जीवन में मूलतः प्रेम को ही लेकर चले थे और राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलाएँ इन्हें प्रेरणा देती

रही। इन कवियों ने अपनी रचनाएँ मुक्तक शैली में ही की है। भक्तिकालीन कवियों की तरह रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। इन्होंने भाषा की शक्ति को बढ़ाया और उसे भावानुकूल मोड़कर अपनी भाषा प्रवीणता का परिचय दिया। घनानंद की भाषा का वैभव प्रस्तुत उदाहरण से दिखाई देता हैं -

"मेरी मनोरथ हू बहिये अरू है, मो मनोरथ पूरनकारी"

यहाँ पर 'मनोरथ' इस शब्द पर श्लेष अलंकार की योजना की है।

इसप्रकार रीतिकालीन साहित्य पर हमें भक्तिकालीन साहित्य का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। रचना के नायक-नायिका राम-सीता या कृष्ण-राधा आदि रहते थे। कुछ अंश तक काव्य में भक्तिभाव भी दृष्टिगोचर होता है। माधुर्यभाव में भी भक्तिभाव तो होता ही है। ब्रजभाषा का प्रयोग तथा संतकवियों की तरह दोहे-चौपाईयों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था। कई जगह मुक्तक शैली का प्रयोग रीतिकाल में हुआ है, जो भक्तिकाल की ही देन हैं।

* * *

प्रकरण 14
रीतिकालीन साहित्य
रीतिबद्‌ध, रीतिसिद्‌ध तथा रीतिमुक्त की विषयवस्तु तथा शैलीगत प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्यसाहित्य के विद्‌वानों ने तीन प्रकार माने हैं।

1. रीतिबद्‌ध,
2. रीतिसिद्‌ध तथा
3. रीतिमुक्त साहित्य।

1. रीतिबद्‌ध साहित्य :-

याने ऐसी साहित्य रचना जो काव्यशास्त्र के लक्षणों तथा उदाहरणों से युक्त होती है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार रीतिबद्‌ध कवि वे है, जिन्होंने रीतिग्रंथों की रचना न करके काव्यसिद्‌धांतों या लक्षणों के अनुसार काव्य की रचना की है। अलंकार, रस, नायिकाभेद, ध्वनि आदि का उन्होंने प्रत्यक्ष निरूपण नहीं किया है, परंतु उनके अनुसार उत्कृष्ट काव्य का सृजन किया है। इसीलिए इन्हें रीतिबद्‌ध कवि कहा जाता है, आचार्य नहीं। रीतिबद्‌ध कवियों में आचार्य केशव, चिंतामणि, मतिराम, देव, पद्‌माकर, ग्वाल, भिखारीदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रीतिबद्‌ध कविता का प्रेरणास्त्रोत प्रायः दरबारी संस्कृति थी। इसके अंतर्गत शृंगारी भावना वासना को व्यक्त करने के लिए ही प्रयुक्त हुई है। रीतिबद्‌ध कवियों के आश्रयदाता सामंत, सरदार, राजा और महाराजा आदि उच्च वर्ग के लोग मुगलों से विरासत में मिली विलासिता में डूबे हुए थे, इसलिए उनकी प्रेरणा से रचे गए काव्य में स्वभावतया ही लौकिक प्रेम और बाह्य सौंदर्य के शारीर सौंदर्य के वर्णन बहुत अधिक हैं। वर्णनों में अलंकरण की कुशलता भी दर्शनीय है। रीतिबद्‌ध कवि बिहारी की ऊहात्मक उक्तियाँ इसकी उदाहरण हैं -

"पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहूँ पास।
नित प्रति पुन्यौ ही रहत, आनन और उजास।।"

इन शृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए राधा-कृष्ण की मधुर भावभक्ति का उपयोग किया गया तथा राधा और कृष्ण को साधारण नायक-नायिका के रूप में ही चितारा गया। शृंगारिक काव्यरचनाएँ जिस प्रकार आध्यात्मिक भाव के आवरण में लिखी जाती थी, उसी प्रकार मुक्त रूप में भी लिखी जाती थी। आश्रयदाताओं के रूचिनुसार काव्य में नग्न शृंगार चित्रण रीतिबद्‌ध कवियों ने किया है। इसीलिए इस काल की रीतिबद्‌ध कविता की शृंगारिकता प्रेम की एकनिष्ठता न होकर वासना की झलक ही मिलती है और उसमें भी सूक्ष्म आंतरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है। प्रेम की भावना हृदय की प्रवृत्ति है जो एकोन्मुखी होती है, किंतु विलास या रसिकता उपभोग की भावना है, जो अनेकोन्मुखी होती है। इसीकारण प्रेम में तीव्रता होती है, रसिकता में केवल तरलता। रीतिबद्‌ध प्रतिनिधि कवि बिहारी, देव, मतिराम आदि रसिक ही थे, प्रेमी नहीं। इन्होंने बाह्य स्थूल सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति की है। उनके काव्य में मन के सूक्ष्म सौंदर्य का और आत्मा के सात्विक सौंदर्य का बिल्कुल ही अभाव है। परंतु जहाँ तक रूप अर्थात विषयगत सौंदर्य का संबंध था, वहाँ इन

कवियों की पहुँच बहुत गहरी थी। कवि बिहारी जैसे सूक्ष्मदर्शी कवि की निगाह सौंदर्य के बारीक संकेत को भी पकड़ सकती थी। मतिराम, देव, पद्माकर जैसे रीतिबद्ध कवियों की कलम रूपसौंदर्य का वर्णन करने में रससिद्ध थी। कवि पद्माकर की यह उक्ति उदाहरण के लिए प्रस्तुत है -

"पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल, तहाँ-तहाँ ताल मैं होत त्रिवेनी।"

रीतिबद्ध कवियों ने शृंगार के विविध अंगो, उपांगो का सुंदर वर्णन अपने काव्य में किया है। भारतीय शृंगार परंपरा में पूर्वानुराग, संयोग, प्रवास, वियोग आदि सभी दशाओं में गार्हस्थ-तत्व बना रहता है। रीतिबद्ध कविता में नागरिकता का समावेश तो हुआ, किंतु दरबारी वेश्याविलास अथवा बाजारु रूपसौंदर्य का दर्शन नहीं हुआ। स्वकिया नायिका के प्रेम का ही गायन उसमें होता था। परकीया प्रेम-वर्णन का उनके काव्य में अभाव ही रहा। इसीप्रकार हम देख सकते हैं कि रीतिबद्ध कविता में शृंगार का मूलाधार रसिकता है, प्रेम नहीं। इस रसिकता में इंद्रियजन्य भावना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उनका शृंगारवर्णन विलासी सामंतों की भोगभूमिका को संतुष्ट करने के लिए अधिक हैं, उसमें सच्ची सौंदर्योपासना का अभाव है।

2. रीतिसिद्ध साहित्य और साहित्यकार :-

जिन आचार्यो ने काव्यशास्त्र की शिक्षा देने के लिए रीतिग्रंथों की रचना की, काव्यशास्त्रीय विषय का सोदाहरण प्रतिपादन किया, उन्हें रीतिसिद्ध कवि या आचार्य कहते हैं। इनके ग्रंथों में अलंकार, रस, नायिकाभेद, ध्वनि आदि काव्यांगों का निरूपण किया गया है। रीतिसिद्ध कवियों की श्रेणी में कवि बिहारी, बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, पजनेश आदि कवि आते हैं।

रीतिसिद्ध साहित्य में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का स्पष्ट रूप से अनुकरण तथा प्रतिबिंब दिखाई देता है। कुछ तो संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद या छायानुवाद रूप में हैं। जैसे कुलपति मिश्र का 'रसरहस्य', जसवंतसिंह का 'भाषाभूषण' - इन ग्रंथों में मौलिक या स्वतंत्र विचार नहीं मिलते। इनमें केवल काव्य की विशेषताओं को समझने और समझाने का प्रयत्न किया गया है। उस समय राजाश्रय में रहने वाले इन कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की रूचि को सामने रखकर रचनाएँ की। उस समय के राजा-महाराजा बँधी-बँधाई रूढ़िबद्धता से प्रभावित थे। रीतिकवियों ने भी आश्रय की ओर ध्यान न देकर छंद, अलंकार आदि को अपने साहित्य में प्रथम स्थान दिया। संस्कृत ग्रंथों का अनुकरण करते हुए अपनी रचनाओं में भाषा वैचित्र्य तथा अलंकरण लाने का प्रयास किया। कवियों ने उपमानों और प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। रीतिसिद्ध कवियों ने संस्कृत साहित्यशास्त्र में से रस और अलंकार के दो मत लेकर अपनी काव्यरचना का निर्माण किया। अलंकार के ग्रंथों में कवि केशव की 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया'; कवि देव का 'भावविलास' प्रसिद्ध है। नायिकाओं के अनेक भेदों का वर्णन बड़े विस्तार से इसमें मिलता हैं। जाति, कर्म, गुण, वय, अंगरचना कुल इत्यादि के आधारों पर यह भेद किए जाते थे। इन्हीं रचनाओं में शृंगार की संयोग और वियोग दशाओं का भी बड़ा अलंकृत वर्णन मिलता है। रीति के आधार पर लिखे गए इन ग्रंथों में कलापक्ष की प्रधानता मिलती है, हृदयपक्ष या अनुभूतिपक्ष दब-सा गया है।

3. रीतिमुक्त साहित्य और साहित्यकार :-

रीतिकाल में दो प्रकार के कवियों की रचनाएँ मिलती हैं - काव्यरीतिओं का अनुसरण करते हुए काव्यरचनाएँ करने वाले तथा दूसरे कवि जो अपने भावों को रीतिनियमों में बाँधना अनुचित मानकर उन्मुक्त

हृदय से काव्यरचनाएँ करते थे। स्वच्छंद मनोवृत्ति के यह कवि रीति का बंधन तोड़ना चाहते थे। प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए काव्यनियमों का आधार न लेते हुए यह कवि अपने हृदय का सहयोग लेते थे। रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं को पाँच श्रेणीयों में विभक्त किया जा सकता हैं -

(1) प्रबंध काव्य :-

रीतिकाल में तीन-चार सौ प्रबंध काव्य रचे गए। अनेक कथा-प्रबंधों का सृजन तो हुआ परंतु उनमें कवित्व की श्रेष्ठता न होने के कारण यह प्रबंधधारा प्रसिद्ध न हो सकी। इन प्रबंध काव्य में दो प्रकार के विषय होते हैं - पौराणिक और लौकिक। पौराणिक प्रबंध काव्यों में गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव का महाभारत, मधुसुदनदास का रामाश्वमेध साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गोकुलनाथ आदि का महाभारत बहुत बड़ा ग्रंथ है। साहित्यिक दृष्टि से यह काव्य गुणसंपन्न, रोचक एवं प्रबंधात्मक कथानक सौष्ठव को लिए हुए हैं। इसमें विविध छंदों का प्राधान्य है।

लौकिक कथा प्रबंधों में लाल कवि का 'छत्रप्रकाश'; सूदन का 'सुजान चरित्र'; जोधराज का 'हम्मीर रासो'; हरनारायण की 'माधवानल कामकंदला'; चंद्रशेखर का 'हम्मीर हठ' आदि मुख्य रचनाएँ हैं। लाल कवि का छत्रप्रकाश बड़े ही महत्व की पुस्तक है। कवित्व के दृष्टि से भी यह उत्कृष्ट ग्रंथ है। लौकिक कथा प्रबंधों में ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश रहता था। राजा-महाराजाओं के चरित्र पर यह प्रबंध रचे जाते थे। काव्योत्कर्ष बढ़ाने के लिए इनमें कल्पित प्रसंग भी रखे जाते थे। इसमें युद्ध के वर्णन, अस्त्र-शस्त्रों की झंकार आदि सुनकर वीरगाथाओं का स्मरण होता हैं।

(2) नीति-विषयक पद्यों की रचनाएँ एवं सुक्तियाँ :-

रीतिकाल में नीतिविषयक पद्यों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई हैं। नीतिकाव्य का उद्देश्य लोककल्याण का विधान करना है। लोगों को सद् व्यवहार की शिक्षा देना तथा कुरितियों का खंडन करना इन रचनाओं का हेतु था। गिरिधर कविराय, बाबा दीनदयाल गिरी, वृंद, वेताल, घाघ, गोपालचंद्र मिश्र, बाबा चरनदास, कवि बोधा और कवि ग्वाल आदि इस काल के प्रसिद्ध नीति-काव्यकार हैं। कवि बिहारीलाल के नीतिपरक दोहे इन नीतिविषयक पद्यों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। कवि बिहारी ने अपने जीवन के निरीक्षण एवं अनुभव के आधार पर इन दोहों का निर्माण किया है। भाषा की दृष्टि से इन दोहों में सुबोधता तथा सरलता है। जैसे

"बड़े न हूजे गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय।।"

नीतिविषयक रचनाओं की भाँति इस काल में कुछ ब्रह्मज्ञान और वैराग्य संबंधी रचनाएँ भी प्राप्त हुई हैं। रीवाँ के महाराज विश्वनाथ जू, नागरीदास, नवलसिंह आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

(3) भक्ति और विनय के पद :-

रीतिकाल में भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पदों की रचना हुई है। इस युग के कवियों ने उपभोग पक्ष और वैराग्य पक्ष के मध्य पूर्ण सामंजस्य प्रस्तुत किया। इन रचनाओं में सखीभाव के उपासकों ने माधुर्यपूर्ण रचनाएँ की हैं, तो कुछ रचनाओं पर फारसी काव्य के आशिकी और सुफीयाना असर मिलता है। इस काल में जैनभक्त कवि भी विनय एवं अध्यात्म की रचनाएँ करते रहे। कवि बिहारी के भी

भक्तिपरक कई दोहे इनमें शामिल हैं। नागरीदास, बणीरुणी, बक्षी हंसराज, अलबेली अलि, भगवतरसिक आदि कवियों की रचनाएँ प्रमुख हैं।

(4) वीरकाव्य की परंपरा :-

रीतिकाल में वीररस की फुटकल रचनाओं का भी विशेष महत्व है। शृंगारी रचनाओं के इस दौर में वीररस की कविता रचने का श्रेय कवि भूषण को मिलता है। कवि भूषण की शिवाबावनी और छत्रसालदशक प्रसिद्ध है। भूषण वीरता के पूजारी थे और इसी दृष्टिकोण से उन्होंने राजा शिवाजी तथा छत्रसाल की प्रशंसा अपने काव्य में की है। वे शिवाजी का विजय हिंदुधर्म का विजय मानते थे। भूषण की भाषा भी रसानुकूल है। वह सोए हुए समाज को अपने काव्य से झकझोर देना चाहते थे। वीरकाव्य की इस परंपरा में लालकवि, बनवारी तथा हरिकेश आदि कवियों की वीररस की रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

(5) रीतिमुक्त शृंगारी या प्रेमकाव्य धारा :-

रीतिमुक्त साहित्य में स्वच्छंद प्रवृत्ति की प्रेमकाव्य धारा दिखाई देती है। इन कवियों को किसी छंद, वृत्त या अलंकारों के बंधन काव्यरचना करते समय नहीं थे। उनकी काव्यरचनाएँ उनकी आत्मा की पुकार थी। उनकी अभिव्यक्ति में सहजता, स्वाभाविकता थी। इसीलिए इन रचनाओं में उदात्त शृंगारी वृत्ति व्यक्त हुई है। साहित्य में भक्तिकाल से भगवान श्रीकृष्ण प्रेरणारूप रहा है। परंतु इस काल में श्रीकृष्ण की स्वच्छंद लीला ने व्यापक रूप से कवियों को प्रभावित किया है। इनके प्रेम में तीव्र एकांतिक भाव है, जिसमें समाज को भुलाकर अपने प्रेमी में लीन होने की साधना है। प्रेम की और एक विशेषता, उनका अनन्य भाव है। रीतिमुक्त परंपरा के इन कवियों की और एक विशेषता है - तन्मयता तथा हृदय की परवशता। इन कवियों की रचनाओं पर फारसी के एकांतिक प्रेमवादी कवियों की रचनाओं का प्रभाव भी स्पष्ट है। इन कवियों का शृंगार के संयोग पक्ष का वर्णन भी अपनी विशेषता रखता है। इसमें संयोग के समय हृदय के उल्लास एवं आनंद का बड़ा ही सुंदर एवं प्रभावोत्पादक वर्णन है। प्रेम के अनेक प्रभाव इन कवियों ने अपनी कविता में दर्शाए हैं। श्रीकृष्ण लीला का का प्रभाव इस काव्य पर दिखाई देता है। श्रीकृष्ण के अलौकिक आलंबन के सहारे इन कवियों ने अपनी उन्मुक्त प्रेम की भावधारा को प्रभावित किया है। इन कवियों ने सभी रचनाएँ मुक्तक शैली में की हैं। काव्यशास्त्र के नियमों में न उलझते हुए सिर्फ अपनी कला की, अनुभूति की मुक्त रूप में अभिव्यक्ति की है। इसलिए इनकी रचनाओं में लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग स्वाभाविक और सहज रूप में मिलता है। सब रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखी गई हैं। इन कवियों ने भाषा की शक्ति को बढ़ाया और उसे भावानुकूल मोड़कर अपनी भाषा प्रवीणता का परिचय दिया। रसखान, महाकवि घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि कवि इस रीतिमुक्त शैली के प्रमुख कवि रहे हैं।

* * *

प्रकरण 15
रीतिकालीन साहित्य में शृंगार वर्णन

रीतिकाल के कवि वह चाहे रीतिबद्‌ध रचनाकार हो या रीतिमुक्त रचनाकार हो, सभी कवियों ने शृंगार रस को ही अपनी प्रवृत्ति माना है। अतः उस समय का प्रधानतया साहित्य शृंगाररस में डूबा हुआ है। आचार्य शुक्ल ने भी इस काल को 'शृंगारकाल' नाम दिया है। इस काल में प्रधान रूप से शृंगारिक रचनाएँ मिलती हैं। उस समय अधिकतर कवि राजाश्रय में रहते थे। अतः अपनी काव्यकला का प्रदर्शन अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए या आश्रयदाता के रूचि के अनुरूप काव्य निर्माण में करते थे। इस काल के काव्य की प्रमुख प्रेरणा दरबारी संस्कृति थी। शृंगार रस को इस युग में रसराज की संज्ञा प्रदान की गई थी। केशवदास की रचना हैं -

"नवहू रस को भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि नायक है सिंगार।।"

रीतिकाल का साहित्य मध्यकालीन दरबारी संस्कृति का प्रतीक है। राजाश्रय में पली इस शृंगारी कविता में रीति और अलंकार का प्राधान्य हो गया। रीतिबद्‌ध कवि हो या रीतिमुक्त, इनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति शृंगार की भावना है। शृंगारी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम कृष्ण-राधा की मधुर भाव की भक्ति बनी और राधा-कृष्ण साधारण नायक-नायिका के रूप में चित्रित किए जाने लगे। आध्यात्मिक आवरण में शृंगारिक कविता होती थी, उसीप्रकार स्वतंत्र रूप से भी होती थी। कवि अपने आश्रयदाताओं की रूचि के अनुसार काव्य निर्मिति करते थे, जिसमें नग्न शृंगार का चित्रण होता था। रीतिबद्‌ध कविता की शृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर वासना की झलक मिलती है। उसमें भी सूक्ष्म आंतरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है। प्रेम की भावना हृदय की प्रवृत्ति है, जो एकोन्मुखी होती है, किंतु विलास या रसिकता उपभोग की भावना है, जो अनेकोन्मुखी होती है। इसीकारण प्रेम में तीव्रता होती है, रसिकता में केवल तरलता। रीतिबद्‌ध कवि बिहारी, देव, मतिराम आदि रसिक थे परंतु प्रेमी नहीं थे। इन्होंने बाह्य सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति की है। उनके काव्य में मन के सूक्ष्म सौंदर्य का और आत्मा के सात्विक सौंदर्य का अभाव है। विषयगत सौंदर्य का बहुत गहराई से वर्णन मिलता हैं।

शृंगार के विविध अंगो-उपांगो का इन कवियों ने सुंदर वर्णन किया है। भारतीय शृंगार परंपरा में पूर्वानुराग, संयोग, प्रवास, वियोग आदि सभी दशाओं में गार्हस्थतत्व बना रहता है। रीतिबद्‌ध कविता में शृंगार का मूलाधार रसिकता है, प्रेम नहीं। इस रसिकता में इंद्रियजन्य भावना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। रीतिबद्‌ध एवं रीतिसिद्‌ध कवियों की शृंगारिकता की परिणति भोगवाद में हुई है। वे प्रेम के उच्चतर सोपानों की ओर नहीं जा सके। उन्होंने प्रेम की अनन्यता, एकनिष्ठता, त्याग, तपश्चर्या आदि उदात्त पक्षों का निरूपण न करके विलासी जीवन एवं शृंगार के बाह्यपक्ष, शारीरिक आकर्षण तक ही सीमित रहकर रूप को मादक बनाने वाले उपकरणों को महत्व दिया। नायिकाभेद, नख-शिख वर्णन, ऋतु-वर्णन, अलंकार-निरूपण सर्वत्र उनकी प्रवृत्ति रसिकता को बढ़ावा देने की है। इसका कारण उनका राज्याश्रित एवं पराधीन होना है।

शृंगार रस का सविस्तर विवेचन रीतिबद्‌ध कवियों की रचना से प्राप्त होता हैं। आचार्य तोष की काव्यकला का उदाहरण हम ले सकते हैं। कवि तोष के 'सुधानिधि' ग्रंथ में विषय का विवेचन नवरस-परिणयन तथा विभाव-अनुभाव और स्थायी भाव के उल्लेख के साथ किया गया है। शृंगार के आलंबन विभाव के अंतर्गत क्रमशः नायिका और नायक के भेदोपभेदों, नायक के सखाओं, अनभिज्ञ नायक एवं दर्शन के चारों भेदों का तथा उद्‌दीपन विभाव के भीतर क्रमशः वर्ण

व्यवसाय के आधार पर विभिन्न प्रकार की दूतियों, चार प्रकार की सखियों तथा विभिन्न प्रकार के उद्दीपक पदार्थों का विवेचन किया गया है। विभाव के विवेचन के उपरांत संयोग, वियोग, सामान्य और मिश्रित नाम से शृंगार के चारों भेदों का वर्णन है -

संयोग शृंगार में स्थान और अवसरानुरूप संभोग का, वियोग शृंगार में विरहपीड़ा का, सामान्य शृंगार में दस प्रसिद्ध और दस अपर हावों, नायिकाओं के औदार्य, माधुर्य, प्रगल्भता और धीरत्व नामक चार अलंकारों, आठ सात्विक भावों, विप्रलंभ के त्रिविध मान, पूर्वराग, प्रवास और करूण नामक चार भेदों और काम की दस दशाओं का तथा मिश्रित शृंगार में संयोग में वियोग, वियोग में संयोगजन्य और जनक इन चार रूपों का वर्णन किया गया है। इसप्रकार शृंगार का सविस्तर विवेचन कर क्रमशः शेष आठ रसों, तैंतीस संचारी भावों, भावसंधि, भावोदय और भावशबलता के मात्र उदाहरण दे दिए गए हैं।

रीतिकाल में शृंगार रस को रसशिरोमणि मानने वाले कई आचार्य कवि थे। मतिराम भी इसी शृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। इनके 'रसराज' नामक ग्रंथ का वर्ण्यविषय ही शृंगार हैं। संस्कृत ग्रंथों का आधार लेकर इसमें शृंगार से संबंधित सभी विषयों का विवेचन किया गया है। कल्पना के सहज व्यापार ने बिंबों को आकर्षक एवं भव्य बनाया है। छंदों में विषयानुरूप संगीत की सृष्टि की है। प्रस्तुत उदाहरण देखने योग्य है -

"कुंदन कौ रंग फीकौ लगै झलकै सब अंगन चारु गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं 'मतिराम' लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई।।'

रीतिमुक्त साहित्य में शृंगार वर्णन :-

रीतिमुक्त धारा की कविता में भी शृंगारी भावना है। रीतिमुक्त कवि स्वतंत्रवृत्ति से काव्य करने वाले थे। उन्हें किसी आश्रयदाता के लिए अपनी कला का निर्माण नहीं करना था। अतः उनकी कविता में पाई जानेवाली शृंगार भावना, यह उनके हृदय का उद्गार था। इस उद्गार में शुचिता थी। इन्होंने कृष्ण की मधुर भाव की भक्ति का आश्रय लिया किंतु वह भक्तिकालीन कवियों की तरह उन्मुक्त है। उनके समकालीन रीतिबद्ध कवियों से इनका काव्यगत शृंगार पृथक हो जाता है। राधा-कृष्ण या गोपी-कृष्ण की लीलाएँ इनकी काव्यरचना का विषय बने। रीतिमुक्त कवियों ने कृष्ण को अपने काव्य का नायक बनाया परंतु भक्तिपक्ष का त्याग कर वे कृष्ण की क्रीड़ाशील प्रवृत्ति के उपासक बने।

* * *

प्रकरण 16

रीतिकाल में शृंगारेतर साहित्य : भक्ति-नीति-वीर

-: रीतिकालीन भक्तिसाहित्य :-

रीतिकाल का साहित्य मुख्य रूप से शृंगार रस का काव्य है। अपने आश्रयदाताओं की स्तुति करने के लिए, उनकी विलासी वृत्ति की तुष्टि के लिए या मनोरंजन के लिए यह साहित्य निर्माण किया गया था। रीतिकाल को 'शृंगारकाल' के नाम से भी संबोधित किया जाता है, क्योंकि इस काल में मुख्य रूप से शृंगार रस की रचनाएँ, साहित्य निर्माण हुआ है। इस समय में शृंगार रस के सिवाय अन्य रसों का अस्तित्व भी साहित्य में दिखाई देता है। शृंगारी कवियों के साहित्य में भी भक्ति और नीति संबंधी सूक्तियाँ बिखरी हुई मिल जाती है। डॉ. नगेंद्र के मतानुसार रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं हैं - हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भगवत्भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। रीतिकाल में शुद्ध कृष्णभक्ति काव्यधारा भी प्रवाहमान रही और कृष्णभक्ति के अनेक संप्रदायों में उच्चकोटि का भक्तिपरक काव्यरचनाएँ रची गई। शृंगारी कवियों की भक्तिपरक उक्तियाँ भी कहीं कहीं अत्यंत मार्मिक एवं भावपूर्ण हैं। जैसे बिहारी का प्रस्तुत दोहा -

"सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
यहि बानिक मो मन बस्यो, सदा बिहारीलाल।।"

इसप्रकार शृंगारी कवियों ने भी भक्ति संबंधी कविता में अपने हृदय की भक्तिभावना प्रस्तुत की है।

भक्तिकाल के पश्चात रीतिकाल में भी हिंदी साहित्य क्षेत्र में संतकाव्य, सूफी काव्य, रामकाव्य और कृष्णकाव्य की रचना होती रही। स्वामी रामानंद की शिष्य परंपरा में दो भिन्न भक्तिभावनाओं के भक्त हुए। निर्गुणमार्गी भक्तों में कबीर, दादू, रैदास आदि प्रसिद्ध संत हुए और सगुणरूपी भक्तों में तुलसीदास जैसे विख्यात महाकवि हुए। निर्गुण भाव के संत कवियों में नामदेव का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। 13 वीं शती से उन्होंने जिस निर्गुण भाव की काव्यधारा प्रवाहित की वह धीरे-धीरे आगे चलती रही। 17 वीं शती से बढ़कर उन्नीसवी शती तक भी अपनी ज्ञान-योग-भावना की शितलता प्रदान करती रही। इस भावना को आगे बढ़ाने में रीतिकाल के कई संत कवियों ने समय-समय पर योग दिया, जिनमें यारी साहब, दरिया साहब, जगजीवनदास, पलटू साहब, चरनदास, शिवनारायण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दरिया साहब की 'दरियासागर' तथा 'ज्ञानदीपक' ये रचनाएँ प्रमुख हैं। जिनमें उन्होंने नामस्मरण के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना इनका आध्यात्मिक लक्ष्य केंद्रित किया है। उपर निर्दिष्ट संतकवियों ने निर्गुण परंपरा को अपनाया था। अतः अपनी रचनाओं में आत्मशुद्धि पर बल दिया है। इनकी रचनाओं पर संत कबीर की छाया मिलती है।

सूफी संतों की काव्यधारा भक्तिकाल की तरह रीतिकाल में भी दिखाई देती है। मुसलमान सूफी कवियों में कासिमशाह, नूर मुहम्मद और शेख निसार उल्लेखनीय हैं। इन्होंने आध्यात्मिक सिद्धांत परक प्रेमाख्यान काव्य लिखे हैं। सूफी प्रेमाख्यान काव्यों में 'पुहुपावती' महत्वपूर्ण है। संत दुखहरनदास ने इसे लिखा है। इसमें चौपाईयाँ, दोहों के साथ कवित्त-सवैये का भी प्रयोग किया गया है। इन ग्रंथों में कवियों ने पारलौकिक प्रेम का बखान किया है। आध्यात्मिक प्रेमाख्यानों में उभयांगी प्रेम की अभिव्यक्ति स्पष्ट की है। कवियों का संकेत यहीं है कि सच्चे प्रेमभक्त की दृष्टि से ये दुनिया प्रेम का क्षेत्र है। जिस प्रेमी भक्त के मन में अलौकिक प्रेमरस उत्पन्न हो गया, वह निश्चित रूप से इहलोक तथा परलोक का राजा बन गया। प्रेमसाधना में 'काम' भाव प्रधान रहा है, किंतु यह 'काम' परम पवित्र और समुज्ज्वल है।

यह विषयभोग से परे है और दिव्य हैं। साधना का मूलतत्व 'काम' (इश्क) जीवित अवस्था में ही मुक्ति प्रदान करने वाला है। संत दुखहरनदास पुरुपावती में लिखते हैं -

"दुखहरन यहि काम कहं, राखि सके जो कोई,
जगतमाह सो सहज ही, मुक्ति जीअत होई।।"

इस प्रकार के प्रेमाख्यान संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में प्रचुर मात्रा में लिखे गए।

श्रीराम को ब्रह्म मानकर चलने वाले भक्तिकालीन तुलसीदास की परंपरा में रीतिकाल में भी कई संत कवि समाविष्ट हुए। गुरुगोविंद सिंह सिक्खों के दसवें गुरु के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। परंतु उन्होंने रीतिकाल में ही 'गोविंद रामायण' जैसा अलौकिक ग्रंथ लिखा है, जिसमें राम की कथा का बड़ा ही सुंदर और तेजस्वी वर्णन मिलता है। जानकीरसिकशरण, भगवंतराय, नवलसिंह आदि संत कवियों ने भी रास को ब्रह्मस्वरूप मानकर रामायण पर कई ग्रंथ लिखे हैं। भक्तिकाल में जो रामभक्ति काव्य निर्माण हुआ उसमें सामाजिक मर्यादा के रक्षक के रूप में राम को प्रस्तुत किया गया था। रीतिकाल में रचा गया रामभक्ति काव्य रागानुगा भक्ति से ओतप्रोत था। रामभक्ति काव्य में मधुराभक्ति का समावेश होने के कारण रामभक्ति काव्य भी विलासिता तथा शृंगारिकता से भरपूर हो गया था। उनकी भक्ति का मूलस्वर शुद्ध भक्तिमय न होकर अधिकांश में लौकिक शृंगार की ओर झुक गया। रीतिकालीन कवियों की कलागत चमत्कारिकता, अलंकृत अभिव्यंजना इस भक्तिकाव्य में दिखाई देती है।

रीतिकाल का चाहे रामकाव्य हो या कृष्णकाव्य, दोनों प्रकार के काव्यग्रंथों में माधुर्यभाव की भक्ति का प्राधान्य पाया जाता है। प्रेमभावनापूर्ण भक्ति की जो धारा बहती चली आ रही थी, वह कृष्ण और राधा के नामों की आड़ में मानवी शृंगार में परिवर्तित होकर 1850 ई. तक प्रवाहित होती रही। इस काल के कवियों ने कृष्णभक्ति से संबद्ध दो प्रकार के काव्यों की सृष्टि की - प्रबंधात्मक और मुक्तक। उक्त दोनों प्रकार के काव्यग्रंथों में मूलतः शृंगार भावना ही है, लेकिन वह राधा-कृष्ण की भक्ति के आवरण से आवृत्त है।

-: रीतिकालीन नीति साहित्य :-

रीतिकाल में नीतिकाव्य की रचना भी प्रचुर मात्रा में हुई है। नीतिकाव्य का उद्देश्य सरस एवं प्रभावशाली ढंग से लोककल्याण का विधान करना है। इसमें सुव्यवहार की स्थापना एवं अमंगल का क्षय करने की स्पष्ट प्रवृत्ति है। रीतिकाल में हुई नीति विषयक रचनाओं में बड़ी सुंदर सुक्तियाँ मिलती हैं। भर्तृहारि से संस्कृत में नीतिसंबंधी रचनाओं की परंपरा प्रारंभ हुई थी। भक्तिकाल में तुलसीदास और रहीम के नीतिविषयक काव्य प्रसिद्ध है। कबीर, जमाल आदि कवियों के नीतिविषयक छंद मिलते हैं। रीतिकाल में नीतिकाव्यों की रचना करने वालों में वृंद, गिरिधर, कविराय, बैताल, सम्मन, रामसहायदास, दीनदयाल गिरि आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये नीतिकाव्यकार 18 वीं शती से 19 वीं शती तक अपनी रचनाएँ करते रहे। ई. 1704 के आसपास जोधपुर के निवासी कवि वृंद ने अपनी 'सतसई' की रचना की। 'वृंद सतसई' में सातसौ दोहों की रचना की गई हैं। भाषा सरस, सरल और कलापूर्ण हैं। इन्हें काफी लोकप्रियता मिली। इनके दोहों में से प्रस्तुत दोहा प्रसिद्ध हैं -

"नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात।।"

वृंद के समसामायिक 'बैताल बंदीजन' की 'विक्रम सतसई' मिलती हैं। इसमें रीतिकालीन अलंकार और चमत्कृति की जगह सीदी-सादी उक्तियाँ मिलती हैं। संवत् 1800 के लगभग गिरिधर कविराय ने अपनी लोकप्रिय नीति

की कुंडलियों की रचना की। इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं अन्योक्ति एवं दृष्टांत अलंकार का प्रयोग मिलता है। लेकिन इनकी लोकप्रियता का कारण इनकी चमत्कार रहित सीदी-सादी उक्तियाँ ही हैं। 'बाबा दिनदयाल गिरि' अपनी अन्योक्ति पद्धति पर लिखी हुई नीति-विषयक रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका ग्रंथ 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' बहुत प्रसिद्ध हैं।

नीतिविषयक साहित्य कवि बिहारी का स्थान महत्वपूर्ण हैं। बिहारी ने नीतिविषयक बड़े मार्मिक दोहे लिखे हैं। इन्होंने अपने जीवनविषयक निरीक्षण एवं अनुभव के आधार पर नीतिविषयक दोहों का निर्माण किया हैं। बिहारी की भाषा में सहजता, सुबोधता एवं सरलता है, जिससे आम जनता में बिहारी के दोहे लोकप्रिय हुए।

अंत में यह उल्लेखनीय हैं कि जहाँ भक्तिकाल में तुलसी और रहीम के दोहों में भक्ति और नीति दोनों को स्थान प्राप्त हुआ, वहाँ रीतिकालीन नीतिकाव्य शुद्ध नीति की व्याख्या के लिए ही लिखा गया। समाज के कल्याण तथा सांसारिक व्यावहारिकता की दृष्टि से नीतिविषयक काव्य उत्तम सिद्ध हुआ है। सामान्य जनता के लिए नीतिकाव्य सद्व्यवहार और चरित्र निर्माण का मार्ग प्रस्तुत करता हैं।

-: रीतिकालीन वीरकाव्य :-

आदिकालीन साहित्य में वीरभावना का काव्य प्रचुर मात्रा में मिलता हैं। परंतु ये वीरकाव्य प्रायः शृंगार के साहचर्य में व्यक्त होते थे। रीतिकालीन वीरकाव्य स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है और राजाओं, आश्रयदाताओं की नीतिगाथाओं का अतिरंजित वर्णन होते हुए भी उसमें देशभक्ति की अद्भुत चमक मिलती है। ऐतिहासिकता पर आधारित होने के कारण रीतिकालीन वीरकाव्य जनता को प्रेरणा प्रदान करने में प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। रीतिकाल के कवियों ने वीरभावों की अभिव्यक्ति दो प्रकार से की है -

1. प्रबंधकाव्यों द्वारा
2. मुक्तक काव्यों द्वारा

1. प्रबंधात्मक वीरकाव्यों के कवि :-

प्रबंधात्मक वीरकाव्य के रचयिताओं में लाल, पद्माकर, सुदन, खुमान, जोधराज आदि उल्लेखनीय हैं। लालकवि ने 'छत्रप्रकाश' शीर्षक से महाराज छत्रसाल का जीवन चरित्र दोहों-चौपाईयों में विस्तार से लिखा है। इस प्रबंधात्मक वीरकाव्य में बुंदेलवंश की उत्पत्ति, चंपतराय के पराक्रम तथा छत्रसाल की युद्ध वीरता का वर्णन विस्तार में किया गया है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं को सुरक्षित रखा गया है। छत्रसाल की वीरता का ओजस्वी वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए -

"छत्रसाल हाड़ा तहं आयो।
असन रंग आनन छबिछायो।।
भयो हरोल बजाय नंगारो।
सार धार को परिहरन हारो।।"

कवि पद्माकर अपने भाव और भाषा के लिए लोकप्रिय रहे हैं। इन्होंने 'हिम्मतबहादूर विरुदावली' नामक वीरकाव्य लिखा है। वीरभावना का उद्रेक जिस कलामयी सबल भाषा में इस काव्य के अंतर्गत दृष्टिगत होता है, वह अपने ढंग का अनूठा है। ओज गुण से पूर्ण वीररस के लिए कवि पद्माकर उल्लेखनीय हैं।

कवि सूदन राजा सृजनसिंह के आश्रय में थे। उन्होंने 'सुजानचरित' नामक वीरकाव्य लिखा था। इसे सात जंगो में विभक्त करके लिखा गया है। प्रत्येक जंग अंकों में विभक्त है। सूदन की शब्दावली युद्ध का वातावरण उत्पन्न करने में सफल हुई है। ब्रजभाषा में अपनी रचना की है।

कवि जोधराज ने महाराणा हम्मीर के जीवन चरित पर 'हम्मीर रासो' इस प्रबंध काव्य की रचना की है। यह वास्तव में एक ओजस्वी प्रबंधकाव्य है। ऐतिहासित तथ्य तथा अपनी कल्पनाशक्ति के बल पर कवि ने इस महाकाव्य को मनोरम बना दिया है।

2. मुक्तक वीरकाव्यों के कवि :-

मुक्तक वीर काव्यों की रचना करने वालों में भूषण और बांकीदास प्रसिद्ध है।

कवि भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक हैं। 'शिवराजभूषण' नामक अलंकार ग्रंथ की रचना कर महाकवि भूषण ने रीति ग्रंथकारों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया ही है। 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' इन मुक्तक काव्यों की रचना कर उन्होंने मुक्तक वीरकाव्यकारों में भी प्रसिद्धि प्राप्त की है। इन दोनों कृतियों में रीतिरहित वीररसात्मक काव्य का सच्चा उत्कर्ष मिलता है। कवि भूषण ने शिवाबावनी में शिवाजी के पराक्रम का वर्णन करते हुए वीररस के साथ राष्ट्रप्रेम की भावना भी उजागर की है। उन्होंने राष्ट्रीयता की परिभाषा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से की है। पीड़ित दुर्बल प्रजा के प्रति उनकी कलम में आश्वासन हैं। वीर रसानुकूल ब्रजभाषा लिखने में भूषण सिद्धहस्त हैं। छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा में कवि का भाषाप्रवाह और अलंकार चमत्कार दर्शनीय हैं -

"पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।"

रीतिकाल के कविराज बांकीदास भी वीरकाव्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इन्होंने सत्ताईस ग्रंथों की निर्मिति की, जिनमें से 'सूरछत्तीसी' और 'वीरविनोद' नामक वीरकाव्य उल्लेखनीय हैं। बांकीदास की भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और विषयानुकूल है। इनकी कविता में ओज और प्रसाद गुणों का प्राधान्य है।

रीतिकालीन वीरकाव्य आश्रयदाताओं की स्तुति में लिखा हुआ नहीं है। यह काव्य देशभक्ति से परिपूर्ण वीरभावना से युक्त है। तत्कालीन समाज में वीरता जगाने के लिए लिखा गया है। शत्रु का सामना करने के लिए, अन्याय को दूर करने के लिए, समाज प्रबोधन के लिए लिखा गया यह काव्य है। छत्रपती शिवाजी, भूषण, लाल, सूदन आदि कवियों की रचना में शब्दबद्ध होकर अमर हो गई है। काव्य के कलापक्ष की दृष्टि से भी रीतिकालीन कवि बहुत ऊँचे सिद्ध होते हैं। शब्दों के रसानुकूल प्रयोगों में वे अप्रतिम हैं।

* * *

प्रकरण 17
रीतिकालीन प्रमुख कवियों का परिचय

1. चिंतामणि :-

रीतिकालीन आचार्यों में चिंतामणि का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। इनका जन्म 1600 ई. के लगभग तथा मृत्युकाल 1680-85 के आसपास मानते हैं। इनके द्‌वारा नौ ग्रंथ प्रमुख रूप से लिखे माने जाते हैं। रसविलास, छंदविचार, शृंगारमंजरी, कविकुलकल्पतरू, कृष्णचरित, काव्यविवेक, काव्यप्रकाश, कवित्तविचार और रामायण। इनमें 'कविकुलकल्पतरू' ही प्रसिद्‌ध और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह मम्मट कवि के संस्कृत ग्रंथ काव्यप्रकाश पर आधारित है। इसमें दिए उदाहरणों में उनके भावुक कवि हृदय की झलक मिलती है। रीति निरूपण अत्यंत निष्ठा से किया है। इनका विवेचन स्वच्छ है। विषय को स्पष्ट करने के लिए कहीं कहीं ब्रजभाषा गद्‌य की वृत्ति का प्रयोग भी किया है। आचार्यत्व की दृष्टि से ही नहीं, कवित्व की दृष्टि से भी इनका स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण है। चिंतामणि रसवादी कवि होने के कारण इन्होंने अलंकारों का प्रयोग रसोत्कर्ष के लिए किया है -

"सगुन अलंकारन सहित, दोष-रहित जो होई।
शब्द अर्थ वारौ कवित, बिबुध कहत सब कोई।।"

इनकी कविता में शृंगार, वीर, वात्सल्य एवं भक्ति रसों का सम्यक परिपाक देखने को मिलता है। सीदी-सादी शब्दावली में सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति की है। इतनी व्यापक दृष्टि होते हुए भी ये कोई मौलिक योगदान नहीं कर पाए हैं। सामान्यतः इनकी रचनाएँ याने संस्कृत लक्षण ग्रंथों के ब्रजभाषा में अनुवाद रहे हैं। ऐसा समीक्षकों का कहना है।

2. आचार्य महाकवि देव :-

शृंगारकाल के प्रसिद्‌ध एवं लोकप्रिय कवि देव का विचार क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। ये आचार्य और कवि दोनों रूप में महान हैं। इन्होंने रीति संबंधी कई ग्रंथ लिखे हैं। और उसमें काव्यांगों का अच्छा निरूपण किया है। आचार्य शुक्ल ने इनके प्राप्त 35 ग्रंथों की सूची दी है किंतु रीति की दृष्टि से इनके दो ही ग्रंथ प्रसिद्‌ध है - भावविलास और 'काव्यरसायन' या 'शब्दरसायन'। सभी रसों का सर्वांगपूर्ण विवेचन शब्दरसायन में प्राप्त होता है। भावविलास में शृंगाररस को प्रधानता दी है। इसमें थोड़ा अलंकार निरूपण भी मिलता है। 'शब्दरसायन' में काव्य की आत्मा, काव्यशरीर, काव्य प्रयोजन और उसकी महिमा आदि के विषय में सामान्य सिद्‌धांत दिए हैं। देव ने नायिका भेद का शृंगाररस भिन्न विवेचन किया है। इन्होंने नायिकाओं के देश, प्रकृति, सत्व और अंश के आधार पर नए भेद किए। रस के संबंध में भी इन्होंने अपने स्वतंत्र मत स्थापित किए। छंद के उदाहरण और लक्षण एक ही छंद में प्रस्तुत करना इनकी विशेषता है। काव्य के प्रायः सभी अंगों का विवेचन देव के ग्रंथों में पाया जाता है। कुछ विद्‌वान आचार्यत्व में इन्हें शृंगारकाल के कवियों में सर्वोत्कृष्ट मानते हैं। आचार्य शुक्ल जी ने कवि देव की प्रशंसा करते हुए लिखा है - "इनका सा अर्थसौष्ठव और नवोन्मेष विरले ही कवियों में मिलता हैं। रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्भ और प्रतिभासंपन्न कवि थे।" इनका जन्म उत्तरप्रदेश के इटावा में सन 1673 में हुआ और मृत्यु 1767 के लगभग हुई। अपने जीवनकाल में वे कई नवाबों और राजा-रईसों के आश्रय में रहे।

3. केशवदास :-

आचार्य केशवदास का जन्म सन 1612 ई. में हुआ। वे अपने जीवनकाल में इंद्रजित सिंह के आश्रय में रहे। इनके साहित्य में भक्तिधारा का भी दर्शन होता है और प्रमुख रूप में शृंगारकालीन काव्यप्रवृत्तियाँ भी दिखाई देती हैं। रामकथा पर लिखा हुआ 'रामचंद्रिका' इनका उत्कृष्ट प्रबंधकाव्य है। इसमें उनकी भक्तिभावना का दर्शन होता है। परंतु मूलतः ये रीतिवादी कवि छंद आचार्य हैं। केशवदास का महत्व बताते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं - "अब तक किसी कवि ने संस्कृत साहित्य में निरूपित काव्यांगों का पूरा परिचय नहीं कराया था। यह काम केशवदास जी ने किया।"

केशवदास ने सर्वप्रथम 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' लिखकर अलंकार और रस का सर्वांगपूर्ण विवेचन भाषा में प्रस्तुत किया। अलंकार विवेचन में केशवदास ने भामह, उद्भट, दंडी आदि प्राचीन अलंकारवादी आचार्यों का अनुसरण किया। आगे चलकर केशवदास ने मम्मट और विश्वनाथ को आदर्श माना। रीतिशास्त्रीय विवेचन में केशवदास ने कोई मौलिक उद्भावना नहीं की। संस्कृत के आचार्यों के आधार पर अलंकार और रस के लक्षणों का विवेचन किया। उनके 'कविप्रिया' इस ग्रंथ में कविता के गुणदोष, अलंकार, नखशिख तथा चित्रकाव्य का वर्णन किया है। कविता के जिज्ञासुओं के काव्य सीखने में ये ग्रंथ बहुत उपयोगी है। केशवदास ने छंद की गति और भाव की गति में सामंजस्य उपस्थित किया। उन्होंने अलंकार के अंतर्गत काव्य के सभी विधायक उपकरणों को माना है। यथा -

"विषमय ये गोदावरी, अमृतन के फल देति।
केसव जीवनहार के, दुख असेस हरि लेत।।"

4. सेनापति :-

कविवर सेनापति की जीवनी के संबंध में कोई जानकारी नहीं मिलती। इनकी रचना के आधार पर ही थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त होती है। अभी तक इनकी एक ही कृति 'कवित्त रत्नाकर' प्राप्त हुई है। कुछ इतिहासकारों ने इनकी दूसरी कृति 'काव्यकल्पद्रुम' भी मानी है। कवित्त रत्नाकर में सेनापति ने श्लेष अलंकार, शृंगार, षडऋतु, रामायण और रामरसायन का वर्णन किया है। छंदों की मूल चेतना रीतिकालीन है, जिससे यह रीतिबद्ध कवि थे यह स्पष्ट होता है. सेनापति का प्रिय अलंकार श्लेष अलंकार है, इसीलिए इन्होंने पूरी की पूरी तरंग श्लेष अलंकार का चमत्कार दिखाने के लिए रची है। श्लेष की योजना में इनकी बराबरी करने वाला अन्य कोई कवि नहीं है। कवित्त रत्नाकर की दूसरी तरंग में शृंगार वर्णन है, जिसके अंतर्गत नखशिख सौंदर्य, उद्दीपन भाव, वयःसंधि आदि का मनोहारी चित्रण हुआ है। शृंगार के कहीं कहीं बड़े सुंदर चित्र इसमें हैं। सेनापति की अप्रतिम सफलता उनके उत्कृष्ट ऋतुवर्णन में हैं, जिसमें शब्द और अर्थ का चमत्कार भरा पड़ा है। वर्णित ऋतु का सहज और यथार्थ स्वरूप उनके छंदों में बड़ा खरा उतरता है। कवित्त रत्नाकर में राम का चरित्र और रामभक्तिभावना का संक्षिप्त सुंदर वर्णन है। इस ग्रंथ में शृंगार, वीर, शांत और भक्ति भाव प्रधान हैं। सेनापति की कविता में उनकी प्रतिभा फूट पड़ती हैं। उनके वर्णों और शब्दों का ध्वनि सौंदर्य नृत्य के मनोहर लालित्य से युक्त है। इससे भाषा पर उनका असाधारण अधिकार दिखाई देता है। सेनापति का रचनाकाल 1650 ई. के लगभग है। यह उनके ही दोहे से स्पष्ट होता है -

"संवत सत्रह सै छ में, सेई सियापति पाई।
सेनापति कविता सजी, सज्जन सजौ सहाइ।।"

5. मतिराम :-

आचार्य मतिराम परंपरा से आचार्य चिंतामणि के भाई थे। रीति-ग्रंथकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अलंकारशास्त्र पर 'ललित ललाम' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है। इनके 'छंदसार' ग्रंथ में पिंगलशास्त्र का सुंदर विवेचन है। रस संबंधी लिखा हुआ 'रसराज' यह ग्रंथ इनकी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है। आचार्य शुक्ल जी ने इन दोनों ग्रंथों का रीतिग्रंथों में विशेष महत्व निरूपित किया है। उनके शब्दों में "अपने विषय के ये अनुपम ग्रंथ हैं। उदाहरणों की रमणीयता से अनायास रसों और अलंकारों का अभ्यास होता चलता है।" मतिराम की सरस एवं स्वाभाविक रचना का इन ग्रंथों में परिचय मिलता है। मतिराम अपने सरस कवित्व के उदाहरणों से प्रसिद्ध हैं। जैसे -

"ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे व्है नैननि त्यों त्यों खरी
त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाइ।।"

इनका जन्म 1604 ई. के लगभग उत्तर प्रदेश के जिला फतेहपुर के बनपुर नामक स्थान में हुआ। ये सम्राट जहाँगीर, कुमायुँ नरेश, श्रीनगर नरेश आदि कई राजाओं के आश्रय में रहे। संयत वाणी में मर्यादित शृंगार की अभिव्यक्ति करके भी इन्होंने राजप्रशस्ति प्राप्त की थी, जो अनेक कवियों के लिए आदर्श रही।

6. पद्माकर :-

अपनी काव्यरचनाओं में नवरसों का सफल निरूपण करने वाले आचार्यों में आचार्य पद्माकर का स्थान अग्रक्रम में आता है। ये तैलंग ब्राह्मण थे और इनका जन्म 1753 ई. में मध्यप्रदेश के सागर नामक स्थान में हुआ था। इनकी मृत्यु 1833 ई. में कानपुर में हुई। इन्होंने कई मौलिक ग्रंथों की रचना की जिनमें पद्माभरण, जगद्विनोद, प्रबोध पचासा, गंगालहरी आदि प्रमुख हैं। 'पद्माभरण' और 'जगद्विनोद' रीतिग्रंथ है तथा अन्य ग्रंथ राजप्रशस्ति तथा भक्ति-वैराग्य संबंधी हैं। रीतिग्रंथों में अलंकार और नवरस विवेचन किया गया है। इनके ग्रंथों का आधार 'रसमंजरी', 'साहित्यदर्पण', 'रसिकप्रिया' आदि ग्रंथ रहे हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता बिंबयोजना है, जिसमें रेखाएँ और रंग स्पष्ट होकर आए हैं। इनकी रचनाओं में भावात्मकता, गति और स्थैर्य का भी समावेश हुआ है। भाषा भी बिंबो और उनकी रेखाओं के अनुरूप इतनी सधी हुई एवं सौष्ठव संपन्न है कि प्रत्येक शब्द की योजना देखते ही बनती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण आगे के कवियों के लिए वे अनुकरणीय बने। उदाहरण के लिए उनका छंद प्रस्तुत हैं -

"सिंधु के सपूत सुत सिंधु तनया के बंधु।
मंदिर अमंद सुभ सुंदर सुधाई के।
कहैं पद्माकर गिरीस के बसे हौ सीस।
तारन के ईस कुलकारन कन्हाई के।।"

7. घनानंद :-

रीतिमुक्त या स्वच्छंद धारा के प्रमुख कवि हैं। भावात्मकता, वक्रता, लाक्षणिकता, रहस्यात्मकता, मार्मिकता, स्वच्छंदता आदि मुक्तशैली के सभी गुण इनके काव्य में पाए जाते हैं। शृंगार और भक्ति दोनों रसों की रचनाएँ इन्होंने की हैं। शृंगार रस की रचनाएँ प्रायः कवित्त, सवैया में रची है तथा भक्तिरस की रचनाएँ दोहे और चौपाईयों में रची हैं। इनके काव्य में ऋजु और वक्र दोनों प्रकार की शैलीयों का प्रयोग मिलता है। फारसी साहित्य में पाई जाने वाली प्रेम के पराजय की हताशा घनानंद के काव्य में मिलती है। विषाद और निराशा के

भाव इनके काव्य में अधिक मात्रा में मिलते हैं। तत्कालीन समाज की हीन दशा तथा व्यक्ति की विवशता का प्रतिबिंब इनके साहित्य में मिलता है। घनानंद ने अपने काव्य में भावों का सीधा वर्णन किया है। इन भावों में रीझ, विषाद, उलझन, अभिलाषा, भूल, उपालंभ आदि प्रमुख है। इन भावों के आश्रय हैं - मन, प्राण, नेत्र तथा अन्य ज्ञानेंद्रियाँ। ज्ञानेंद्रियों को भावों का आश्रय बनाकर कवि ने उनका मानवीकरण कर दिया है। प्रिय के रूप पर रीझने में मन की क्या दशा होती है, यह प्रस्तुत सवैये में दिखाया गया है।

"रावरै रूप की रीति अनूप नयौ नयौ लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बाँती अनौखी, अघानि कहूँ नहि आन तिहारियै।
एक ही जीव हुतौ सुतौ वारयौ, सुजान संकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न दहै घनआनंद बावरी रीझ के हाथनि हारियै।।"

घनानंद ने अपनी प्रेयसी सुजान का रूपवर्णन अपने काव्य में किया है। सुजान ही उसके काव्य की प्रेरणा थी। अतः उसका काव्य याने उसकी स्वयं की प्रेमानुभूति है। घनानंद के प्रेम का उदय अवश्य सुजान के शरीर से हुआ था परंतु उसकी परिणति सुजान (सु-ज्ञान) परमेश्वर में हुई थी। अपने लौकिक प्रेम की असफलता एवं सुजान के वियोग होने के कारण इनके काव्य में विरह वर्णन की अधिकता है और इन्हीं वर्णनों में उनके हृदय के भावों की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। घनानंद ने रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग भी प्रेम की सच्ची अनुभूति व्यक्त करने के लिए किया हैं। स्वाभाविकता एवं सरलता इनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है। भावपक्ष और कलापक्ष की सभी विशेषताओं का सूत्रशैली में उद्‌घाटन हुआ है। घनानंद वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि है।

घनानंद का जन्म लगभग संवत 1743 में माना जाता है। ये महंमद शाह रंगीले के मीरमुन्शी थे।

8. कवि भूषण :-

कवि भूषण की वीररसपूर्ण रचनाएँ रीतिकाल में बड़ी महत्वपूर्ण हैं। ये वीरता के पुजारी थे। इनकी रचनाओं ने हिंदु राजाओं को विदेशी एवं मुगल राजाओं से लड़ने की प्रेरणा दी है। वे अपने आश्रयदाता शिवाजी राजा की विजय को हिंदु धर्म की विजय मानते थे।

"भूषन यों कलि के कविराज, राजन के गुण गाय हिरानी।
पुण्यचरित शिवा सरजे सर न्हाय पवित्र भई पुनिबानी।।"

हिंदु संस्कृति और हिंदु राष्ट्र को लेकर गौरव और अभिमान की भावना उनके मन में काम करती थी। विदेशी मुगलों का विरोध कर हिंदु राष्ट्र की पुकार लगाने वाले भूषण का स्वर इस काल के संपूर्ण राष्ट्र का स्वर है। भूषण की कविता के विषय युद्‌ध-वर्णन और वीरों का कीर्तिगान है। कविता के विषय के अनुकूल वीररस का सुंदर परिपाक हुआ है। भाषा भी रसानुकूल है। इनकी कविता में ऐतिहासिक घटनाओं में सत्यांश भी मिलता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी कहते हैं - "भूषण की कविता में प्राण हैं। वे सोए हुए समाज को उद्‌बुद्‌ध करने की शक्ति रखती है।" कवि भूषण राजा शिवाजी तथा छत्रसाल के आश्रय में रहे। उन दोनों पर भूषण ने काव्य रचे। 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' प्रसिद्‌ध हैं। 'शिवराजभूषण' तथा 'शिवाबावनी' 105 अलंकारों का निरूपण हुआ है। इन रचनाओं का आधार जयदेव के 'चंद्रलोक' और मतिराम के 'ललितललाम' रहे हैं। इनकी रचनाओं में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी तथा ब्रजभाषा और क्षेत्रिय बोलीयों का प्रयोग किया गया है। इनकी प्रतिभा में ऐसा ओज है कि सहृदय पाठक आनंदविभोर होकर वीररसजनित स्फूर्ति का अनुभव करता है।

9. बिहारी :-

महाकवि बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन 1595 ई. में ग्वालियर में हुआ था। इनका देहावसान सन 1663 में हुआ। ये महाराजा जयसिंह के दरबार में रहते थे। बिहारी की ख्याति उनके अन्यतम ग्रंथ 'सतसई' के कारण हुई है। 'सतसई' यह ग्रंथ 'गाथा सप्तशती', 'आर्या सप्तशती' आदि ग्रंथों की प्रेरणा से निर्मित है। मुक्तक काव्य परंपरा में बिहारी का स्थान शीर्ष पर है। 'सतसई' में बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिकाभेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि का ध्यान रखकर सुंदर दोहे रचे है। यह सतसई परंपरा की एक उज्ज्वल कड़ी है। 'सतसई' के अंतर्गत अलंकारिक सौंदर्य और भावसौंदर्य दोनों का मिलाप है। 'बिहारी सतसई' की अनेक टीकाएँ हो गई हैं, जिससे इसकी लोकप्रियता का पता चलता है। बिहारी ने प्रेम और कला दोनों का महत्व अंकित किया है। उन्होंने लिखा है -

"तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।।"

बिहारी का समस्त जीवन काव्य-साधना में ही व्यतीत हुआ, इसलिए उनका एक-एक दोहा मर्मस्पर्शी है और पाठकों के सामने सौंदर्य तथा प्रेमक्रीड़ा की मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। उन्होंने केवल भावुकता वश सौंदर्य चित्रण ही नहीं किया वरन् जीवन के प्रौढ़ अनुभवों का भी उद्‌घाटन किया है। वे अपने भावों और विचारों को कलात्मक रूप से प्रस्तुत करने की विलक्षण प्रतिभा से संपन्न थे। उन्होंने भक्ति एवं नीति के दोहे भी लिखे हैं। इसप्रकार 'बिहारी सतसई' शृंगार, भक्ति और नीति की त्रिवेणी है। ब्रजभाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। उनकी भाषा प्रांजल, मधुर और सरस थी। केवल 'बिहारी सतसई' इस एकमात्र ग्रंथ की रचना करके भी कवियों के पंक्ति में बिहारी का स्थान उत्कृष्ट है। कवि के रूप में वे हिंदी साहित्य के गौरव हैं और उनकी सतसई काव्य की अपूर्व निधि है।

* * *

(क) आधुनिक काल

सातवी-आठवी सदी से चलता आया हिंदी का ऐतिहासिक प्रवाह बीसवी सदी में पहुँचा तब साहित्य क्षेत्र में तथा समाज जीवन में कई तरह के परिवर्तन आ चुके थे। ब्रज की जगह हिंदी खड़ी बोली का प्रयोग शुरु हुआ था। खड़ी बोलीने तो गद्य तथा पद्य दोनों प्रांतों में अपना प्रभाव साबित करना शुरु हुआ था।

नाटक, उपन्यास, निबंध, आलोचना, इतिहास तथा साहित्य के अन्य अनेकविध अंगों का विकास हुआ था। काव्य साहित्य में अंतर्बाह्य परिवर्तन हुआ था। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव के कई चिह्न हिंदी साहित्य में भी दिखाई दे रहे थे। ऐसे काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने बीसवी सदी के इस काल का नामकरण 'आधुनिक काल' के नाम से किया। डॉ. श्यामसुंदर दास जी ने 'नवीन विकास का काल' कहा। राजनाथ शर्मा ने 'पुनर्जागरण का काल' संबोधा।

'आधुनिक काल' नाम सर्वथा त्याज्य नहीं लगता, क्योंकि आधुनिक काल के महत्वपूर्ण प्रश्नों को इस काल के साहित्य में रूपायित किया गया और विशेष रूप से इस काल के गद्य साहित्य में आधुनिक जीवन के यथार्थ चित्रण को वर्ण्य विषय के रूप में स्थान दिया गया।

सामान्यतः आधुनिक काल का कालखंड उन्नीसवीं सदी का आधा हिस्सा और बीसवी सदी से आज तक का माना जाता है।

पृष्ठभूमि

- राजनीतिक
- धार्मिक सामाजिक
- आर्थिक
- साहित्यिक

1. राजनीतिक पृष्ठभूमि :-

साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि के रूप में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के राज्य की स्थापना, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारत में व्हिक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा, 'इंडियन नैशनल कॉंग्रेस', वंग-भंग आदि अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ शरीक हैं। 15 अगस्त 1947 की भारत स्वतंत्रता की घटना और तद्पश्चात नवचेतना की परिणति नवनिर्मिति। स्वतंत्र भारत का 'पंचशील तत्वो' को अपनाना, युद्ध की जगह शांति की स्थापना का पुरस्कार इन सभी बातों से प्रेरित, प्रोत्साहित जनमानस ने साहित्य पर अपना अनोखा परिणाम किया।

2. धार्मिक पृष्ठभूमि :-

देश में चले राजनीतिक, ऐतिहासिक आंदोलनों में नायक बने क्रांतिकारियों तथा नेताओं को चारित्रिक बल देने का काम धार्मिक प्रणालियों ने किया। आर्य समाज, ब्राह्मो समाज, प्रार्थना समाज, सनातन धर्म, थिऑसॉफिकल सोसायटी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद के वेदांत दर्शन तथा गांधीजी का मानवतावाद आदि बातें उक्त आंदोलनों में प्रमुख थीं।

3. आर्थिक पृष्ठभूमि :-

अंग्रेज शासन काल में भारतीय नहीं बल्कि अंग्रेजों की आर्थिक प्रणाली की बातें ही सोची गई। शिक्षा के उद्देश्य भी उन्हीं के हित में रखे गए। परिणामतः भारत दरिद्री होता गया। देश में व्याप्त महँगाई, अकाल, विविध

टैक्स और गरिबी के कारण देश में आर्थिक समस्याएँ थी। इनका चित्रण साहित्य में होना अपरिहार्य था। स्वतंत्रता के बाद इसमें सुधार आया।

4. साहित्यिक पृष्ठभूमि :-

आधुनिक काल का साहित्य विषय और शैली दोनों दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ति साहित्य से भिन्न है। खड़ी बोली का उपयोग आधुनिक काल का व्यवच्छेदक लक्षण है। पाश्चात्य साहित्य का परिणाम आलोचना, जीवनी, रिपोर्ताज आदि कला विधा पर जरूर दिखाई देता हैं।

1. हिंदी गद्य के लिए कारणीभूत परिस्थितियाँ

हिंदी गद्य के माध्यम से हिंदी साहित्य लोगों के सुख-दुख से पहली बार जुड़ा गया। यह समय था, हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का। भारतेंदु हरिश्चंद्र के उदय के साथ ही हिंदी साहित्य के नवजागरण काल के दर्शन होते हैं। भारतेंदु से हिंदी गद्य का सौष्ठवपूर्ण विकास हुआ। भारतेंदु इस नवीन जागरण काल के - नवीन जनजागृति के अग्रदूत थे। उन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य के निर्माण एवं विकास में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। इसलिए उनका साहित्य रचना काल उनके नाम पर 'भारतेंदु युग' कहलाता हैं।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ सन 1857 में हुआ। साहित्य में आए इस परिवर्तन के लिए उस समय की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ प्रभावी रहीं हैं। इन परिस्थितियों का विवेचन तथा विश्लेषण करना आवश्यक है।

1. राजनीतिक स्थिति :-

सन 1756 तक हमारा पूरा देश अंग्रेजों के स्वाधीन हो चुका था। अंग्रेजों के नीतियों से असंतुष्ट होकर देशी राजाओं ने एकजुट होकर 1857 ई. में व्यापक स्तर पर विद्रोह किया। फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी समाप्त कर दी गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बन गया। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में परिवर्तन किया। भारत के लोग भी नए संदर्भ में कुछ नया सोचने और करने के लिए बाध्य हुए। नया युग अपनी अभिव्यक्ति के लिए नई भाषा खोज रहा था। ब्रजभाषा इसके लिए उपयुक्त नहीं थी। खड़ीबोली गद्य आधुनिक चेतना के फलस्वरूप सक्षम बन पड़ा।

2. आर्थिक स्थिति :-

साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरूचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है। जिसका सीधा संबंध आर्थिक और चिंतनात्मक परिवर्तन से है। आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों में पेचीदा संबंध है। साहित्य के इतिहास से संदर्भ में दोनों के संबंधों और योगदान का विवेचन अतिरिक्त अवधान की अपेक्षा रखता है।

आधुनिक काल के पूर्व भारतीय गावों का आर्थिक ढाँचा प्रायः अपरिवर्तनशील और स्थिर रहा। गाँव अपने आपमें पूर्ण आर्थिक इकाई थे। जाति के अनुसार लोगों के व्यवसाय तय कर दिए गए थे। लोगों की जरूरतें अपने गाँव में ही पूरी होती थी। अंग्रेजों ने इस देश को अपना बाजार बनाने के लिए यहाँ के हस्तव्यवसाय, छोटे-छोटे धंदे आदि को नष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने आर्थिक परिवर्तन भी किए। अंग्रेज सामंतीय व्यवस्था से आगे बढ़कर पूँजीवादी व्यवस्था अपना चुके थे। सामाजिक विकास की दृष्टि से अंग्रेज भारतीयों से एक मंजिल आगे थे। इसलिए आर्थिक व्यवस्था को परिवर्तित करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। लेकिन यह व्यवस्था गरीब

किसान की स्थिति में सुधार ला नहीं सकी। समय-समय मालगुजारी की दर बढ़ा दी जाती थी, जिससे किसान महाजनों के चंगुल में बुरी तरह फँस जाते थे। महाजनी सभ्यता का जाल फैलाने का श्रेय अंग्रेजों को ही है। बार-बार अकाल पड़ते थे, किंतु अकाल पीड़ितों की रक्षा करने की अंग्रेजों के पास कोई व्यवस्था नहीं थी। कर के बोझ और अकाल, महामारी आदि की भयंकरता आदि विषय समसामायिक लेखकों के साहित्य में मिलते हैं। हिंदी के गद्य साहित्य के लिए तत्कालीन आर्थिक स्थिति ने विषय प्रस्तुत किए।

पहले की अर्थव्यवस्था में पारस्परिक झगड़ों का निपटारा पंचायतों में हो जाता था। नई अर्थव्यवस्था के कारण पारस्परिक संबंध जटिल हो गए। अब पंचायतों द्वारा उनका फैसला नहीं हो सकता था। ऐसी स्थिति में नई संस्थाओं का जन्म हुआ और पंचायतों के स्थान पर कचहरियाँ स्थापित की गई। अंग्रेजों की नई व्यवस्था से जनता को घोर संकटों का सामना करना पड़ा। छोटे-छोटे हस्तउद्योग अंग्रेजों की वजह से बंद हो गए और लोग अधिक से अधिक खेती पर ही आश्रित हो गए। उच्च वर्ग और श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त एक नए मध्यवर्ग का उदय हुआ।

3. शिक्षा का पश्चिमीकरण :-

भारतीय शिक्षा पद्धति और ज्ञान गतानुगतिक था। अठारहवी शताब्दी के अंत में इस देश को जिस पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के संपर्क में आना पड़ा वह भारतीय ज्ञान-विज्ञान से प्रकृति में ही भिन्न था। इस देश की विद्या जाति विशेष तक सीमित थी, पर पाश्चात्य विद्या सर्वसुलभ थी। इसाई मिशनरियों को शिक्षा के साथ धर्मप्रसार का कार्य करना था। अंग्रेजी शिक्षा देने वाले बहुत से स्कूल-कॉलेज खुल गए। स्कूलों में पढ़ाने के लिए पाठ्यपुस्तकें भी लिखनी पड़ी। मिशनरियों ने धर्मप्रसार के लिए भारतीय भाषाओं में बायबल का अनुवाद किया। भारतीय धर्म, पुराण आदि को उन्होंने विवरणात्मक गद्य में प्रस्तुत किया। अंग्रेजी शिक्षा की उपयोगिता कई दृष्टियों से सिद्ध हो रही थी। वॉरेन हेस्टिंग्ज द्वारा 1780 ई. में 'कलकत्ता मदरसा' 1791 ई. में बनारस संस्कृत कॉलेज तथा 1801 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना यह विशेष उल्लेखनीय घटनाएँ है। फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों से देशभाषा में पाठ्यपुस्तकें, कोश और व्याकरण तैयार करने का काम भी लिया गया। इस कॉलेज की मुख्य देन यह है कि इसके द्वारा भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन को प्रोत्साहन मिला। कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना से अंग्रेज विद्वान प्राच्यभाषा में अभिरूचि लेने लगे। सन 1724 में कलकत्ता एज्युकेशन प्रेस की स्थापना हुई। इस प्रेस से संस्कृत और अरबी की पुस्तकें छपने लगी।

4. यातायात के साधन :-

उन्नीसवीं शताब्दी में दुनिया भर के यातायात के साधनों में परिवर्तन हुआ। भारत में भी रेल, बस, स्टीमशिप आदि ने लोगों में राष्ट्रीयता और वैचारिक एकता की भावना भरने में सहायता पहुँचाई। किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास पर ही यातायात का विकास निर्भर करता है। इग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के कारण वहाँ के उद्योगपतियों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता थी। कच्चे माल के लिए भारत एक अच्छी व्यवस्था थी। इंग्लैंड में बनने वाले उत्पादनों की खपत के लिए भी भारत उपयुक्त था। इसलिए अंग्रेजों ने उनके नीजि स्वार्थ के लिए भारत में रेल्वे की स्थापना की, देश में सड़कों का निर्माण किया। यातायात की इन सुविधाओं का भारतीयों को भी काफी फायदा हुआ। दुनिया सिमटकर कम हो गई। छुआछुत, भेदभाव आदि में कमी आई। अकाल के समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्न-वस्त्र आदि भेजने की सुविधा प्राप्त हुई। किताबों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को दूर-दूर तक सरलतापूर्वक पहूँचाया जाने लगा। इससे पुराने संकीर्ण विचारों को भंग करने में भी सहायता मिली।

5. प्रेस की स्थापना तथा जनजागरण :-

नई अर्थव्यवस्था और नवीन शिक्षा पद्धति के कारण भारतीय जनता में एक ऐसी चेतना उत्पन्न हुई, जिसके आधार पर लोग अपनी कठिनाईयों को समझने और उन्हें दूर करने की कोशिश करने लगे। इसके लिए प्रेस से बेहतर और कोई साधन नहीं था। भारत में पहला मुद्रणयंत्र स्थापित करने का श्रेय पुर्तगालियों को है। उन्होंने सन 1550 ई. में दो मुद्रणयंत्र मँगवाकर धार्मिक पुस्तकें छापनी आरंभ की। अठारहवी शताब्दी में अंग्रेजों ने मद्रास, कलकत्ता, हुगली, बंबई आदि जगह छापखाने स्थापित किए। अंग्रेजों और मिशनरियों ने समाचारपत्र निकाले। अपने देशवासियों के तरफ से प्रथम पत्र निकालने का कार्य राजाराम मोहन रॉय ने किया। सन 1821 ई. में उनके सहयोग से 'संवादकौमुदी' नामक साप्ताहिक बंगला पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसमें सामाजिक समस्याओं के संबंध में लेख रहते थे। फारसी भाषाओं में भी उनकी प्रेरणा से दो पत्र निकले। 'जाम-ए-जहाँ-नुमा' और 'मीरत-उल-अखबार'। हिंदी का पहला 'उदंत मार्तण्ड' सन 1826 में प्रकाशित हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में अधिक संख्या में पत्र-पत्रिकाएँ छपने लगी। इससे नए विचारों के आदान-प्रदान में सुविधा हुई। सामाजिक समस्याओं के विषय में इन पत्रों का उपयोग हुआ। प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर आरंभ से ही अंग्रेजों और भारतवासियों में टकराहट रही। इस संघर्ष में राजा राममोहन रॉय ने पहल की। समाचारपत्रों के कारण विचारों का विनिमय सहज हो पाया। भारतीय जनजागरण का कार्य इन पत्रिकाओं से हो सका। इन पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन के साथ ही समसामायिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता था। यह पत्रिकाएँ एक ओर जनतांत्रिक भावनाओं का पोषण कर रही थी तो दूसरी ओर समाज की रूढ़ियों पर प्रहार करती हुई राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे रही थी। मुद्रण के माध्यम ने साहित्यकारों को वैयक्तिक अभिव्यक्ति की सुविधा दी। भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों के वैयक्तिक निबंधों में इस प्रवृत्ति का समावेश प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है।

ब्रिटीश राज्य की स्थापना के कारण भारत की अर्थनीति, शिक्षा पद्धति, यातायात के साधनों आदि में मूलभूत परिवर्तन हुए। इसके फलस्वरूप समाज में आधुनिकीकरण का प्रारंभ हुआ। यह आधुनिकीकरण और पुराने धार्मिक संस्कार, रूढ़ि आदि के बीच सामंजस्य की आवश्यकता महसूस होने लगी। पुराने धर्म को नए समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास ब्राह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज और आर्यसमाज ने किया। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधारा पर आर्यसमाज का विशेष प्रभाव पड़ा। ब्राह्मोसमाज, प्रार्थनासमाज, रामकृष्ण मिशन, आर्यसमाज और थियॉसॉफिकल सोसायटी की मान्यताएँ बहुत कुछ बुद्धि विवेक और तर्क पर आधारित थी।

राजा राममोहन रॉय ने सन 1828 में ब्राह्मसमाज की स्थापना की। उनका भारतीय तथा पाश्चात्य तत्वज्ञान का अध्ययन था। कर्मकांड और अंधविश्वास का विरोध करने के लिए उन्होंने उपनिषदों का उपयोग किया और मूर्तिपूजा को धर्म का बाह्याडंबर माना। उनके नेतृत्व में ब्राह्मसमाज ने कई प्रकार की कुरितियों पर प्रहार किया। जातिप्रथा को उन्होंने अमानवीय और राष्ट्रीयता विरोधी कहा। सती-प्रथा के विरोध में उनके प्रयास सर्वदा स्मरणीय रहेंगे। उन्होंने विधवा विवाह तथा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार का समर्थन किया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली के प्रसार में योग दिया। नई शिक्षा ने भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से अवगत कराया। तत्कालीन साहित्यिकों का दृष्टिकोण व्यापक बना। पुराने गलत रूढ़ि-रिवाजों के दुष्परिणाम ने अपने साहित्यरचना द्वारा लोगों के सामने रखने को, समाज को नए सुधारों की राह दिखाने का प्रयत्न शुरु हुआ।

* * *

2. भारतेंदुयुगीन हिंदी गद्य साहित्य का स्वरूप और विशेषताएँ

हिंदी साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इस युग में हिंदी गद्य का विविधमुखी विकास हुआ। वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रादुर्भाव भारतेंदु हरिश्चंद्र से होता है। भारतेंदु जी से ही साहित्य में नवयुग की चेतना के दर्शन होते हैं। भारतेंदु युग सन 1857 से 1900 ई. तक लगभग माना जाता है। इस कालखंड से पहले साहित्य प्रायः काव्यस्वरूप ही होता था। साहित्य का यह गद्य रूप भारतेंदु युग से दिखाई देता है। गद्य साहित्य का निर्माण यह कोई चमत्कार या अचानक हुई घटना नहीं है। साहित्य की नई प्रवृत्तियों का निर्माण अचानक नहीं होता, उसके पीछे कारण परंपरा होती है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में नवयुग की चेतना का विकास बड़ी महत्वपूर्ण घटना है। इसका बीज इसी युग की राजनीतिक चेतना, सामाजिक अवस्था, धार्मिक परिस्थितियों एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि में मिलता है। उसकी विशद जानकारी पिछले अध्याय में दी गई है। भारतेंदुयुगीन हिंदी साहित्य की विशेषताएँ तथा प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं -

1. पद्य के साथ गद्य का विकास :-

भारतेंदुयुगीन साहित्य में पद्य के साथ गद्य का विकास हुआ हैं, परंतु गद्य के कारण काव्य की निर्मिति में कोई कमी नहीं आई है। गद्य साहित्य का निर्माण और बहुमुखी विकास इस युग की प्रमुख विशेषता है। इसके पहले साहित्य यह शब्द 'काव्य' का पर्यायवाची था। लेकिन इस कालखंड में हुई गद्य साहित्य की निर्मिति के कारण आलोचकों ने इस कालखंड को 'गद्यकाल' यह नामकरण दिया।

प्रेस के विकास से मुद्रण की सुविधा हुई। गद्य के माध्यम से मानवहृदय की भावनाओं का विविधरूपी विकास हुआ। आधुनिक काल में गद्य साहित्य के विविध रूप ये हैं - नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, समालोचना, संस्मरणात्मक गद्य, चरित्र-आत्मचरित्र तथा एकांकी इत्यादि।

2. खड़ीबोली का साहित्य क्षेत्र में एकाधिकार :-

आधुनिक काल में दूसरा परिवर्तन भाषा का दृष्टिगोचर होता है। गद्य के लिए खड़ीबोली ही उपयुक्त भाषा थी। खड़ीबोली का क्षेत्र व्यापक होने के साथ ही इसमें अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का समावेश हुआ। हिंदी भाषा प्रदेश विशाल होने के कारण देश की वह आगे चलकर राष्ट्रभाषा भी बनी। साथ ही लोकसाहित्य की परंपरा भी चलती रही।

3. राष्ट्रीय भावना का विकास :-

भारतेंदु गद्य साहित्य की प्रमुख विशेषता राष्ट्रीय भावना की है। राजनीतिक चेतना इस युग की प्रमुख भावना रही है। इस चेतना का रूप प्रत्येक उत्थान में बदलता रहा है। प्रथम उत्थान में राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप राजभक्ति, देशभक्ति, भारत के अतीत गौरव का गान और उसकी तत्कालीन शोचनीय परतंत्रता पर विलाप, जागृति का संदेश और भारत के बचे गौरव की रक्षा करने का यत्न है। द्विवितीय उत्थान में काँग्रेस की स्थापना तथा उसका अस्तित्व दृढ़ होने के साथ ही साहित्य में नवीन राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। युग की इस चेतना को जनता तक पहुँचाने में इस युग के लेखकों ने अपूर्व सहयोग दिया। भारतेंदु नवीन जनजागृति के अग्रदूत थे। गद्य साहित्य का विकास करने के लिए उन्होंने कई पत्रिकाएँ निकाली।

4. सरल हिंदी शैली का प्रवर्तन :-

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' इस पत्रिका के द्वारा भारतेंदु जी ने हिंदी की नई शैली की नींव डाली। इस युग की भाषा बहुत स्वाभाविक और भाव प्रकाशन में सक्षम थी। इससे पहले हिंदी पर उर्दू-फारसी का प्रभाव रहता था, या संस्कृत तत्सम शब्द प्रधान शैली का। भारतेंदु जी ने दोनों को छोड़कर मध्यम मार्ग को अपनाया। उनकी शैली का सबसे बड़ा गुण सहजपन एवं भावों का अनुसरण है। भारतेंदु युग के अन्य गद्य लेखक हैं - बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्रीनिवास, बद्रीनारायण चौधरी आदि प्रमुख हैं। इन्होंने भी भारतेंदु जी की शैली को अपनाया और सहज, स्वाभाविक ढंग से रचनाएँ की।

उन्नीसवीं सती के अंतिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर दौड़ चुकी थी। अंग्रेजी शिक्षा ने देश के शिक्षित समाज पर एक प्रभाव छोड़ा था। एक सशक्त मध्यवर्ग निर्माण हुआ था, जो संवेदनशील था। जीवन के सभी क्षेत्रों - सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकताएँ हैं। भारतेंदु इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि थे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से ठीक समय पर उचित नेतृत्व प्रदान किया और अपने निबंधो, नाटकों तथा भाषणों में जागरण का संदेश दिया। भारतेंदुकालीन साहित्य सांस्कृतिक जागरण का साहित्य हैं। इस युग में रचित गद्य साहित्य की प्रत्येक विधा के समीक्षात्मक परिचय से इस सांस्कृतिक जागरण का स्वरूप स्पष्ट होता है।

-: भारतेंदुयुगीन गद्य साहित्य की विविध विधाएँ :-

1. नाटक :-

भारतेंदु युग के सर्वश्रेष्ठ नाटककार भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं। उन्होंने अनुदित तथा मौलिक सब मिलाकर सत्रह नाटकों की रचना की। विधासुंदर, रत्नावलि, पाखंड विडंबन, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चंद्र, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी आदि। इस काल में नाटक विविध विषयों पर लिखे गए। पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमानी, सामायिक उपादानों पर आधारित, प्रहसन और प्रतीकवादी आदि। इन सभी वर्गों के नाटकों की रचना भारतेंदु ने की। उनके समकालीन नाटककार थे - हरिहरदत्त दुबे, खड्गबहादुर मल्ल, सूर्यनारायण सिंह, कार्तिकप्रसाद खत्री, अयोध्यासिंह उपाध्याय, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास आदि।

भारतेंदुकाल में नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनमानस को जागृत करना और उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न करना था। नाटकों में सत्य, न्याय, त्याग, उदारता आदि मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने पर बल दिया गया है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के प्रति समाज को आकृष्ट करने तथा समाज का सुधार, परिष्कार करने का यह प्रयत्न है। शास्त्रीय दृष्टि से भारतेंदुकालीन नाटक संस्कृत नाट्यशास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए, युग और परिस्थिति के अनुसार उसमें थोड़ी छूट लेकर लिखे गए हैं। साथ पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के प्रभाव से भी वे अछूते नहीं है। पाश्चात्य ट्रैजड़ी की पद्धति पर दुखांत नाटक लिखने की परंपरा का प्रारंभ स्वयं भारतेंदु ने ही किया था। भारतेंदु ने सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं उद्देश्यपूर्ण नाटकों को महत्व दिया। इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी साहित्य से कई नाटक अनूदित किए गए। इन अनूदित नाटकों ने हिंदी साहित्यकारों को नई तथा विशाल दृष्टि प्रदान की। नए रचना संस्कार भी मिले। संस्कृत भाषा से भवभूति और कालिदास के नाटकों के अनुवाद अधिकतर हुए।

2. उपन्यास :-

भारतेंदु युग में लेखकों को उपन्यास लिखने की प्रेरणा बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों से प्राप्त हुई। अंग्रेजी ढंग का पहला उपन्यास लाला श्रीनिवास का 'परीक्षागुरु' माना जाता है। इस काल में सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी तथा रोमानी उपन्यासों की रचना हुई। सामाजिक उपन्यासों में परीक्षागुरु, भाग्यवती, रहस्यकथा, नूतन ब्रह्मचारी, निस्सहाय हिंदु, धूर्त रसिकलाल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी उपन्यासों का लक्ष्य समाज की कुरीतियों का खंडन करना और आदर्श परिवार एवं समाज की रचना का संदेश देना है।

तिलस्मी उपन्यासों में देवकीनंदन खत्री कृत चंद्रकांता, नरेंद्र मोहिनी, कुसुमकुमारी आदि उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए। सामाजिक उपन्यासों की धारा सशक्त रही। इन उपन्यासों का महत्व यही था कि इन उपन्यासों ने सामान्य जनता में हिंदी की लोकप्रियता बढ़ाई। इसमें बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद काफी मात्रा में हुए। बंगला उपन्यासों से हिंदी लेखकों को रचना संस्कार के साथ ही राष्ट्रीय जागरण का आलोक भी प्राप्त हुआ।

3. कहानी :-

भारतेंदु युग में कहानी की विधा का विकास नहीं हुआ था। भारतेंदु और बालकृष्ण भट्ट की स्वप्न कथाएँ - निबंध और कहानी के बीच की रचनाएँ हैं। वे वस्तुतः कथात्मक निबंध हैं। कहानियों के नामपर 'बैताल पच्चीसी' और 'सिंहासन बत्तीसी' की कथाएँ तथा लोककथाएँ ही उपलब्ध थीं।

4. निबंध :-

भारतेंदु युग में सबसे अधिक सफलता निबंध लेखन में प्राप्त हुई। निबंधों का संबंध पत्र-पत्रिकाओं से सीधे जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनंत विषय थे। राजनीति, समाजसुधार, धर्म, अध्यात्म, आर्थिक दुर्दशा, महापुरुषों की जीवनीयाँ आदि विषयों पर अपने विचारों को प्रकट करते हुए निबंधों का निर्माण हुआ। ऐसे निबंधों को सामान्यतः तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों तक पहूँचाया जाता था। अन्य गद्य विधाओं में विचारों को सीधे व्यक्त करने की छूट नहीं होती, जबकि निबंधों में शैली के आकर्षण एवं कथन की भंगिमा के वैशिष्ट्य को बनाए रखकर भी किसी विषय पर सीधे बात की जा सकती है। निबंधों का प्रारंभ भारतेंदु युग से ही माना जाता है। बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने इस गद्य विधा को और भी विकसित तथा समृद्ध किया। ये हिंदी के सच्चे आत्मव्यंजक निबंधकार थे। भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकार थे - भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, लाला श्रीनिवास, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री। इन सभी निबंधकारों का संबंध किसी न किसी पत्र-पत्रिका से था। इन निबंधों का उद्देश्य उपदेश, उद्बोधन, आह्वान, व्याख्या, व्यंग्य-हास्य आदि अनेक माध्यमों से जनता को शिक्षित और प्रबुद्ध करना था। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पुरातत्व, इतिहास, धर्म, कला, समाजसुधार, जीवनी, यात्रावृत्तांत, भाषा, साहित्य आदि अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं। जिनमें व्यंग्य शैली का प्रयोग किया गया है। उनके यात्रावर्णन और ऋतुवर्णन संबंधी निबंध अधिक सजीव हैं। बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु युग के सर्वाधिक समर्थ निबंधकार हैं। उन्होंने तत्कालीन समस्याओं पर जमकर लिखा है। प्रतापनारायण मिश्र जैसे अन्य लेखकों ने भी समाज जागृत करने के लिए समाज में सुधार लाने के लिए निबंध लिखे हैं। शैली की दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक निबंधकार की शैली व्यक्तित्व भेद से अलग-अलग है। इस युग में विविध प्रकार के निबंध लिखे गए। जैसे :- विचारात्मक,

भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, अनुसंधानात्मक एवं भाषण आदि सभी शैली के निबंध भारतेंदु युग में लिखे गए। यह निबंधविधा याने भारतेंदु युग का व्यापक राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण है। ये निबंध तत्कालीन जीवन चेतना से सीधे जुड़े हुए थे।

5. आलोचना :-

भारतेंदु युग में हिंदी आलोचना का आरंभ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। 'हिंदी प्रदीप' एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत गंभीर आलोचनाएँ प्रकाशित करता था। पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षा के रूप में प्रकाशित होने वाली आलोचनाओं के अतिरिक्त इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं का अस्तित्व भी स्वीकार किया जा सकता हैं -

1. रीतिकालीन लक्षणग्रंथों की परंपरा में लिखित सैद्धांतिक आलोचना।
2. ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली गद्य में लिखी गई टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना।
3. इतिहास ग्रंथों में कवि परिचय के रूप में लिखी गई आलोचना।

वस्तुतः भारतेंदु युग में आधुनिक आलोचना का रूप यदि कहीं बीज रूप में सुरक्षित है, तो वह पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तक समीक्षा में ही है। इस विधा में पहला उल्लेखनीय नाम - बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का है। उन्होंने श्रीनिवास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' और गदाधरसिंह कृत 'बंग विजेता' के अनुवादों की विस्तृत आलोचना 'आनंदकादंबिनी' में की थी। भारतेंदु युग में आधुनिक हिंदी आलोचना का सूत्रपात तो हो गया था, किंतु तत्कालीन समीक्षा परिपक्व नहीं बनी थी।

6. जीवनी साहित्य :-

गद्य साहित्य की विधाओं में गौण मानी जाने वाली विधाएँ जैसे जीवनी, यात्रावृत्त आदि के विकास में भी भारतेंदु तथा उनके सहयोगी लेखकों ने भारी मात्रा में योगदान दिया है। आधुनिक युग की अन्य अनेक विधाओं के समान जीवनी साहित्य का आरंभ भी भारतेंदु युग से ही हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने विक्रम, कालिदास, रामानुज, जयदेव, सूरदास, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, मुगल बादशाहों, मुसलमान महापुरुषों तथा लॉर्ड मेयो, रिपन प्रकृति अंग्रेज शासकों से संबद्ध अनेक महत्वपूर्ण जीवनीयाँ लिखी जो 'चरितावली', 'बादशाह-दर्पण', 'उदयपुरोदय' और 'बूँदी का राजवंश' नामक ग्रंथों में संकलित है। विषयानुकूल तथा भावानुकूल भाषाशैली के प्रयोग द्वारा व्यक्ति के जीवनी का सशक्त लेखन उनके जीवन साहित्य की प्रमुख विशेषता है। भारतेंदुयुगीन अन्य लेखक कीर्तिप्रसाद खत्री ने अहिल्याबाई, छत्रपति शिवाजी, मीराबाई आदि के जीवन चरित्र लिखें। काशीनाथ खत्री ने हिंदुस्थान की अनेक रानियों का जीवनचरित्र तथा भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के जीवनचरित्र की रचना करके जीवनी साहित्य को संपन्न बनाया है। इस कालखंड में प्रचुर मात्रा में जीवनीयाँ लिखी गई। लेकिन भाषा और शैली की दृष्टि से यह साहित्य अधिक परिष्कृत या आकर्षक नहीं है।

7. यात्रावृत्त :-

भारतेंदु युग में यात्रावृत्त लेखन भी विपुल मात्रा में हुआ है। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने यात्रावृत्त विषयक अनेक रचनाएँ लिखी जो 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित हुई। श्रीमती हरदेवी ने अपनी 'लंदन यात्रा' में बंबई से लंदन तक की जहाजी यात्रा का विस्तृत विवरण दिया है, तो भगवानदास वर्मा ने

'लंदन का यात्री' में तुलनात्मक शैली का आश्रय लेते हुए लखनऊ और लंदन की समानताएँ प्रकट की हैं। दामोदर शास्त्री ने 'मेरी दक्षिण दिग्यात्रा' में यात्रावर्णनों को हिंदी और संस्कृत दो भाषाओं में यात्रावृत्त लिखे हैं।

भारतेंदु युग में ज्ञान का साहित्य परिचयात्मक है। इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित, विज्ञान आदि विषयों पर स्कूली छात्रों के लिए किताबें लिखी गई हैं। इसी प्रकार संगीत, धर्म और दर्शन संबंधी रचनाओं के पीछे भी सांप्रदायिक प्रचार की भावना प्रेरक रूप में लक्षित की जा सकती है।

8. पत्र-पत्रिकाएँ :-

भारतेंदु का स्थान हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्यतम हैं। उन्होंने हिंदी के प्रत्येक अभाव को दूर करने की भरपूर चेष्टा की। सन 1868 से 1885 तक पत्रकारिता के विकास का दूसरा उत्थान पूरा हो जाता है। इस अवधि में हिंदी भाषा का रूप स्थिर और परिमार्जित हुआ। जागरण और सुधार की भावना का प्रसार हुआ। अनेक जाति धर्मों में विभाजित भारतवासियों ने अपने जातिवर्ग के उत्थान के लिए जातीय और धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया। कुछ शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हुआ। इनके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आई।

भारतेंदु युग यह हिंदी गद्य साहित्य का प्रथम उत्थान था। इस उत्थान में सबसे मूल्यवान तत्व था - साहित्यकारों का अदम्य उत्साह। उनमें हिंदी के प्रति, राष्ट्र और समाज के प्रति अटूट निष्ठा थी।

* * *

3. द्विवेदीयुगीन हिंदी गद्य साहित्य का स्वरूप और सामान्य विशेषताएँ

-: साहित्य विषयक मान्यता, राष्ट्रीय भावना, सुधारवादी दृष्टि, भाषा-सुधार :-

द्विवेदी युग का कालखंड सन 1900 ई. से सन 1918 तक लगभग माना जाता है। इस समय विरोधी शासन के प्रति जनता में असंतोष बढ़ रहा था। लोग ब्रिटिश शासन से मुक्ति चाहते थे। पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो रही थी। साहित्य सदा से समाजमन का प्रतिबिंब रहा है। उस समय के साहित्य में समाज के असंतोष का, राष्ट्रभावना का रूप दिखाई देना अत्यंत स्वाभाविक ही था। राष्ट्रचेतना की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से हमें साहित्य में गोचर होती है। इस काल में सनातन धर्म और आर्यसमाज इनमें द्वंद्व चल रहा था। धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में क्रमशः उदारता और सहिष्णुता की भावनाएँ फैलती जा रही थी। यह राजनीतिक जागरूकता, आर्थिक समझदारी, सामाजिक-धार्मिक उदारता तथा राष्ट्रप्रेम मुख्यतः शिक्षित मध्यवर्ग की जनता के जागरण का परिणाम था। समाज को सभी क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करने वाला वर्ग यहीं था। साहित्य रचना भी इसी शिक्षित मध्यवर्गीय समाज द्वारा की जा रही थी। साहित्यकारों के मन पर राष्ट्र की प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का प्रभाव पड़ता था और वह उनकी रचनाओं में प्रतिबिंबित होती थी। यही कारण है कि इस युग की प्रत्येक विधा राष्ट्रीय जागरण एवं सुधार की भावना से संबद्ध है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक महान युगप्रवर्तक थे। आधुनिक हिंदी साहित्य में द्विवेदी जी का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली है। द्विवेदी जी एक सफल कवि, निबंधकार, अनुवादक, आलोचक और अभ्यासक थे। उन्होंने अपने युग की साहित्यिक गतिविधियों का बड़े सूक्ष्म रूप से अध्ययन किया और एक कठोर परीक्षक अथवा सच्चे समालोचक की तरह साहित्य-सृजन की गतिविधि का नियंत्रण किया। द्विवेदी जी ने स्वयं रचनाएँ की, दूसरों की रचनाओं का संस्कार किया। तत्कालीन साहित्यिकों को एक विशेष प्रकार का समाजोन्नतिकारक साहित्य रचने की प्रेरणा दी और जनरूचि का इस साहित्य के अनुरूप परिष्कार किया। उन्होंने साहित्य और समाज दोनों को एक विशेष दिशा में मोड़ा। इसीलिए उनके साहित्य रचना काल का नामकरण उनके नाम पर 'द्विवेदी युग' रखा गया। आचार्य द्विवेदी हिंदी साहित्य की महान विभूति और साहित्य के महारथी थे। 'सरस्वती' नाम की प्रतिष्ठित, साहित्यिक पत्रिका का वे संपादन करते थे।

-: भाषा सुधार :-

आचार्य द्विवेदी जी ने खड़ीबोली गद्य को परिमार्जित करके वर्तमान रूप प्रदान किया। 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा हिंदी गद्य का रूप स्थिर किया। द्विवेदी जी ने भाषा परिमार्जन का महत्वपूर्ण कार्य किया। खड़ीबोली गद्य की प्रौढ़ शैली का स्वरूप निश्चित किया। उन्होंने केवल उच्च कोटि के लेखों को सरस्वती पत्रिका में स्थान देकर उसे आदर्श बनाया। अगर किसी लेखक के साहित्य की भाषा में कुछ त्रुटियाँ हो, तो वे उसके लेख को स्वयं परिमार्जित भाषा में लिखकर छापते थे। व्याकरण की अशुद्धियों की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। इसप्रकार इन्होंने अपने संपादन काल में खड़ीबोली गद्य का संस्कार किया और हिंदी को नवीन प्रौढ़ शैली प्रदान की। द्विवेदी युग में विषय का विस्तार हुआ किंतु अधिक ध्यान भाषा संस्कार पर ही रहा। इस काल के साहित्यकारों की भाषा सामान्यतः सरल और प्रवाहपूर्ण है। आचार्य द्विवेदी जी की शैली का समकालीन लेखकों ने अनुकरण किया है। द्विवेदी की शैली विशिष्ट है, उसमें प्रसाद और ओजगुणों का संयोजन है। उनकी भाषा में संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बेखटके किया जाता है। कहीं कहीं पर विशुद्ध हिंदी का प्रयोग भी हुआ है।

द्विवेदी युग के अन्य लेखकों में बाबू श्यामसुंदर दास जी हैं, जिनकी भाषाशैली में भावुकता, प्रवाह एवं संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रचुर मात्रा है। जटिल भावों को सरल बनाने की शक्ति है। इस युग के दूसरे लेखक है पद्मसिंह शर्मा। इनकी शैली में उर्दू शैली की चुलबुलाहट है जो उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। बिहारी का 'संजीवन भाष्य' लिखते हुए उन्होंने अपनी इस व्यंग्यात्मक फड़कती हुई सजीव शैली का परिचय दिया है। इसी युग में प्रेमचंद जी अपनी सरल भाषाशैली लेकर आए। विचारात्मक निबंधों में उन्होंने भी प्रौढ़ शैली को ही अपनाया है।

-: द्विवेदीकालीन गद्य साहित्य की विधाएँ तथा उनका उद्देश्य :-

1. नाटक :-

द्विवेदी युग में संस्कृत की अपेक्षा अंग्रेजी और बंगला के नाटकों के अनुवाद अधिक हुए। बंगला उत्कृष्ट नाटकों के अनुवाद करने वाले पं. रूपनारायण पांडेय, अंग्रेजी के शेक्सपिअर के नाटकों का अनुवाद करने वाले पुरोहित गोपीनाथ तथा संस्कृत नाटकों का अनुवाद करने वाले लाला सीताराम प्रसिद्ध हैं। पं. सत्यनारायण कविरत्न ने भवभूति के उत्तररामचरित और मालतीमाधव का बड़ी सरस और साहित्यिक भाषा में अनुवाद किया। सामायिक उपादानों पर आधृत नाटकों में प्रतापनारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा', भगवतीप्रसाद कृत 'वृद्ध विवाह' जीवानंद शर्मा कृत 'भारत विजय', कृष्णानंद जोशी कृत 'उन्नति कहाँ से होगी' आदि उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सामयिक सामाजिक-राजनीतिक जीवन की विकृतियों को उभारने की चेष्टा की गई है किंतु इनका लक्ष्य समाजसुधार ही हैं।

द्विवेदी युग में कई प्रकार के नाटक लिखे गए। जैसे - पौराणिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक, सामाजिक नाटक, रोमांचकारी नाटक, प्रहसन और अनुदित नाटक इ.। इस काल में नाटक अधिक संख्या में लिखे गए परंतु महत्व की दृष्टि से वे नगण्य सिद्ध होते हैं।

2. उपन्यास :-

द्विवेदी युग में उपन्यास कई प्रकार के तथा संख्या में भी अधिक लिखे गए। लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति कुतूहल, रहस्य और रोमांच के माध्यम से मनोरंजन करने में अधिक रही है। सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को लेकर गंभीर उपन्यासों की रचना इस युग में कम हुई। द्विवेदीयुगीन उपन्यास पाँच वर्गों में रखे जा सकते हैं - तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास, जासूसी उपन्यास, अद्भुद घटनाप्रधान उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और सामाजिक उपन्यास। उपन्यास साहित्य में केवल सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवन दृष्टि ही प्रधान है। इनमें महत्वपूर्ण परंपरा, जिसने आगे चलकर प्रेमचंद की उपन्यास रचना के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की, सामाजिक उपन्यासों की ही है। सामाजिक उपन्यासों का लक्ष्य समाजसुधार था। प्रेमचंद भी इसी उद्देश्य से प्रेरित थे। उनके 'प्रेमा' (1907), 'रूठी रानी' (1907), 'सेवासदन' (1918) उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए। इन तीनों में समाजसुधार की प्रवृत्ति प्रधान हैं। प्रेमचंद का महत्व इस दृष्टि से हैं उन्होंने वास्तविक समस्याओं को केंद्र में रखा तथा अपने कथाप्रसंग तत्कालीन जीवन प्रवाह के साथ जोड़ दिए। हिंदी उपन्यास को इसी काल में प्रेमचंद जी ने एक नया मोड़ दिया।

3. कहानी :-

हिंदी कहानी का जन्म इसी काल के आरंभ से हुआ तथा सन 1918 तक वह पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गई। साहित्य में उसकी स्वतंत्र सत्ता तभी मान्य हुई और उसका मौलिक रूप निखरा। पाश्चात्य कहानी कला से

परिचित होते ही कलापूर्ण कहानियों का प्रारंभ हुआ। इस क्षेत्र में प्रेमचंद और प्रसाद जी ने दो भिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया। प्रेमचंद जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओं को लेकर आदर्श की प्रतिष्ठा कर रहे थे, जबकि प्रसाद मनुष्य के भीतरी भाव द्‌वंद्‌व को व्यक्त करने में लीन थे। प्रेमचंद मुख्यतः वर्तमान के दुख दर्द, न्याय-अन्याय की कहानी कह रहे थे, जबकि प्रसाद अतीत में कल्पना के सहारे रम रहे थे। इन दोनों ने तत्कालीन लेखकों को पर्याप्त प्रभावित किया। इस युग में अधिक तर बंगला कहानियों के अनुवाद हुए।

4. निबंध :-

द्‌विवेदी युग के निबंध लेखकों में महावीर प्रसाद द्‌विवेदी, गोविंदनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, रामचंद्र शुक्ल आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग के निबंधों में परिपक्वता है, तथा निबंध के सभी तत्वों का भलीभाँति विनियोग हुआ है। इस युग के निबंधों में विषय वैविध्य मिलता है - राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ज्ञानवर्धक, सामान्य विषयात्मक, साहित्य समीक्षात्मक आदि। महावीर प्रसाद द्‌विवेदी ने पहली बार हिंदी में समीक्षात्मक निबंधों का प्रारंभ किया।

जैसे :- 'कविता' कवि और कविता, कविकर्तव्य, उपन्यास, नाटक इ. विचारात्मक, भावात्मक, समीक्षात्मक तथा वर्णनात्मक शैली के निबंध लिखे गए। इस युग के निबंधों में स्वतंत्र चिंतन, भावप्रवणता, मधुरता आदि को विशेष स्थान मिला है। प्रमुख रूप से विचारप्रधान, भारतेंदुयुगीन निबंधों की अपेक्षा अधिक गंभीर है। इन निबंधों की भाषा अत्यंत परिष्कृत और व्याकरण के नियमों के अनुकूल है। इस युग की भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता हैं।

5. समीक्षा :-

पं. महावीरप्रसाद द्‌विवेदी ने अपनी 'सरस्वती' पत्रिका द्‌वारा समीक्षा का मौलिक कार्य किया। अपनी पत्रिका में अन्य लेखकों की साहित्य कृतियों के गुणदोषों का सूक्ष्म विवेचन किया। उनकी समीक्षा पद्‌धति से खड़ी बोली गद्‌य एवं पद्‌य का परिमार्जन हुआ और युग की आवश्यकताओं को और साहित्यिकों का ध्यान आकर्षित हुआ। अपनी संपादकीय समीक्षात्मक टिप्पणियों में द्‌विवेदी जी ने साहित्यिकों को सामाजिक आवश्यकताओं एवं राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरणा ग्रहण कर साहित्य निर्माण करने को प्रेरित किया। द्‌विवेदी जी की आलोचना में आलोचना की कई पद्‌धतियाँ हमें मिलती हैं। जैसे द्‌विवेदी जी ने लिखी 'कालिदास की निरंकुशता' में निर्णयात्मक समीक्षा पद्‌धति के दर्शन होते हैं। 'नैषदचरित चर्चा' में व्याख्यात्मक समीक्षा पद्‌धति मिलती हैं। उनकी संपादकीय टिप्पणियों में परिचयात्मक समीक्षा पद्‌धति का प्रयोग हुआ है। उन्होंने अश्वघोष की तुलना कालिदास से की है, यहाँ तुलनात्मक समीक्षा पद्‌धति के दर्शन होते हैं। आचार्य शुक्ल ने द्‌विवेदी जी की आलोचना का महत्व विशद करते हुए कहा है - "यद्‌यपि द्‌विवेदी जी ने हिंदी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा आदि की खरी आलोचना करके हिंदी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया। यदि द्‌विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्‌ध और उटपटाँग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी। उनके प्रभाव से लेखकों ने अपना सुधार किया।

द्‌विवेदी युग के समीक्षाकारों में मिश्रबंधु, पं. पद्‌मसिंह शर्मा और आचार्य रामचंद्र शुक्ल का समीक्षा क्षेत्र में योगदान विशाल है। आ. रामचंद्र शुक्ल समीक्षा क्षेत्र में योगदान विशाल है। शुक्ल जी ने हिंदी समीक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। उन्होंने साहित्य की समीक्षा उसके सारे अंगों को ध्यान में रखते हुए की। शुक्ल जी

ने हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास भी लिखा है, जिसमें उन्होंने सभी प्रकार के कवियों का विचार किया है। उनके गंभीर और मौलिक चिंतन की छाप सर्वत्र ही स्पष्ट है। शुक्ल जी ने संस्कृत की प्राचीन रस और अलंकार पद्धति के साथ पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतो का मिश्रण करके आधुनिक आलोचना का निर्माण किया।

इसप्रकार द्विवेदीयुगीन गद्य साहित्य का मुख्य प्रेरक तत्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण ही था। यह जागरण हमें साहित्य की हर विधा में दिखाई देता है। इस जागरण ने साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन किया। साहित्य उद्देश्य व्यापक जनसमुदाय को प्रभावित करना और उसे आदर्श जीवन की ओर मोड़ना माना गया। मुद्रण व्यवस्था ने इस उद्देश्य की पूर्ति में योग दिया। नई जीवनदृष्टि ने नई भाषा को माध्यम बनाया। खड़ीबोली पूर्णतः प्रतिष्ठित हुई। लेखकों का ध्यान हिंदी के प्रचार-प्रसार और परिमार्जन के साथ ही उसके अभावों की ओर भी गया और सीमित साधनों को संघटित करके उन्होंने योजनाबद्ध रूप में साहित्य के अभावों की पूर्ति का प्रयत्न किया। नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य संमेलन इसी भावना के प्रतीक है। हिंदी साहित्य के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय रहेगा। साहित्य के दुर्लभ ग्रंथों की खोज, हिंदी साहित्य के इतिहास के निर्माण, प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन, ज्ञान-विज्ञान से संबद्ध उपयोगी साहित्य की सृष्टि को प्रोत्साहन देकर इन संस्थाओं ने साहित्य निर्माण में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा, समाजसुधार, चरित्रनिर्माण या व्यापक राष्ट्रीय हित होने के कारण इस काल की साहित्यकृतियों में कलात्मक निखार तो नहीं आया, किंतु सभी प्रकार की गद्य विधाओं की विकास परंपरा का आरंभ अवश्य हो गया। साहित्य स्वर गंभीर हुआ, उसमें दायित्व बोध जागा तथा हिंदी को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

* * *

(ख) 1. हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास

प्रस्तावना :-

उपन्यास साहित्य आधुनिक काल की देन है। हिंदी में उपन्यास विधा का उद्भव भारतेंदु काल में हुआ हैं। परंतु उस काल में लिखे उपन्यास प्रायः बंगला, अंग्रेजी आदि भाषा के अनूदित उपन्यास थें।

कुछ लोग संस्कृत भाषा से इसका उद्भव मानते हैं। पर सही यह होगा कि बंगला से विकसित होकर हिंदी उपन्यास की शुरुआत हुई यह मानना अधिक उचित होगा। क्योंकि शुरुआत में बंगला के उपन्यासों का हिंदी में पर्याप्त मात्रा में अनुवाद हुआ।

विद्वानों में इसी बात पर भी मतभेद है कि पहला उपन्यास किसे समझे? परंतु अधिकांश विद्वान लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं। जिसे बड़ी कहानी कहे ऐसी 'रानी केतकी की कहानी' को कुछ लोग पहला उपन्यास मानते हैं, परंतु इसमें उपन्यास के तत्वों का अभाव है। खुद भारतेंदु जी की कहानी 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' को ही पहला उपन्यास मानने वाले भी कुछ विद्वान हैं। उपन्यास तत्वों के अभाव के कारण इसे भी नकारना उचित होगा। अतः 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का पहला उपन्यास मानना उचित होगा।

हिंदी की उपन्यास परंपरा में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद जी एक ऐसे केंद्रबिंदु हैं जिनकी दोनों ओर उपन्यास साहित्य की भिन्न-भिन्न रेखाएँ स्पष्ट दिखाई देती है। मुंशी प्रेमचंद से पूर्व हिंदी में आचार, नीति, धर्म, उपदेश और सुधार संबंधी उपन्यास लिखे गए। इसीप्रकार केवल मनोरंजन के लिए जादुई या तिलस्मी सभी उपन्यास लिखे गए। इनका संबंध मनुष्य के जीवन से कम होता था। यह तो खुद प्रेमचंद जी हैं जिन्होंने मनुष्य जीवन से संबंधित साहित्य का निर्माण किया उपन्यास लिखे। वास्तविक रूप में यही काल था उपन्यास में पुनरूज्जीवन का या युग-प्रवर्तन का।

प्रेमचंद जी के बाद यथार्थवादी, प्रकृतिवादी, मनोवैज्ञानिक आदि अनेकों नई प्रवृत्ति के उपन्यास लिखे गए।

इस दृष्टि से प्रेमचंद जी को केंद्र मानकर हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास काल इसप्रकार विभाजित करेंगे तो उचित रहेगा। -

1. प्रेमचंद पूर्व काल।
2. प्रेमचंद युग।
3. प्रेमचंदोत्तर युग।
4. स्वातंत्र्योत्तर युग।

(1) प्रेमचंद पूर्व युग :-

वस्तुतः भारतेंदु जी के लिखे 'कुछ आपबीती, कुछ जगबीती' से उपन्यास की शुरुआत हुई थी। परंतु प्रेमचंद जी से पहले श्रीनिवास के लिखे 'परीक्षा गुरु' उपन्यास को ही हिंदी का सबसे पहला उपन्यास माना जाता हैं। इसमें दिल्ली के के एक सेठ पुत्र की कहानी अंकित हैं। इसका उद्देश्य था समाजसुधार की भावना। इसमें उपन्यास के तत्वों को कुछ हद तक पाया गया।

इसके पश्चात ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' पं. बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान' नामक उपन्यास लिखे। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'लवंगलता' और 'कुसुमकुमारी' उपन्यास

लिखे। इनपर तिलस्मी उपन्यासों का प्रभाव था तथा ये सामान्य स्तर के उपन्यास थे जिनको रोमांस के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। देवकीनंदन खत्री का नाम भी इस काल का महत्वपूर्ण नाम है। 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' जैसे क्रमशः प्रकाशित होने वाले उपन्यास उन्होंने रचे। कहते हैं इसके लिए कईयों ने हिंदी भी सीख ली थी। 'भूतनाथ' भी इनका लोकप्रिय उपन्यास रहा।

-: अन्य उपन्यासकार :-

अयोध्यासिंह हरिऔध का 'अधखिला फूल'। गोपालराम गहमरी - जासुसी उपन्यास। किशोरीलाल गोस्वामी, जगन्नाथ मिश्र, शशीप्रसाद आदि उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखे। परंतु इनकी रचना में नवीनता या मौलिकता का अभाव रहा।

इसी काल में इन रचनाओं के साथ-साथ बंगला भाषा के उपन्यासों का अनुवाद किया गया। खुद भारतेंदु जी ने 'राजसिंह' नाम के बंगला उपन्यास का अनुवाद किया था तथा चंद्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश नामक मराठी उपन्यास का भी अनुवाद किया था। प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि ने भी समकालीन साहित्यकारों ने बंगला के उपन्यास के अनुवाद प्रस्तुत किए।

परंतु सही अर्थ में उपन्यास काल या उपन्यासों की शुरुआत 'प्रेमचंद युग' से ही हुई। क्योंकि इन तिलस्मी या जासूसी या अनुवादित उपन्यासों की कोई परंपरा विकसित न हो सकी। फिर भी विधात्मक आधारभूमि प्रस्तुत कर देने की दृष्टि से इस युग के समस्त प्रयास प्रशंसनीय रहे।

(2) प्रेमचंद युग :-

हिंदी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचंद जी का आगमन युगांतकारी साबित हुआ। यही से उपन्यास के वास्तविक स्वरूप में निखार आने लगा। वास्तव में यह प्रेमचंद के उपन्यासों का युग था। इस सूत्र में उच्च कोटि के अनेक सामाजिक उपन्यास लिखे गए। अब इसके पूर्वकालीन तिलस्मी या जासूसी उपन्यासों का कोई महत्व नहीं रहा। साहित्यकारों का ध्यान इन चीजों से हटकर यथार्थपर लग गया। मानव जीवन का दर्शन इनका लक्ष्य बन गया। कला के क्षेत्र में भाषा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इसके पहले उपन्यासों में जीवन के गंभीर समस्याओं का चित्रण नहीं था। कथानक भी काफी मात्रा में काल्पनिक हुआ करते थे। सच बात यह है कि उपन्यास विधा साहित्य का एक ऐसा अंग है जिसमें मनुष्य जीवन की झाँकी छलकती है। सामान्य जनता की वेदना समाज के सामने प्रस्तुत करने का उपन्यास एक साधन बन सकता है। अर्थात ये बाते साबित करने वाला हिंदी का यथार्थ उपन्यास 1918 में 'सेवासदन' नाम का - प्रेमचंद जी ने प्रस्तुत किया। यह उपन्यास केवल लेखक की दृष्टि से नहीं तो हिंदी उपन्यास के इतिहास में भी महत्वपूर्ण घटना थी।

प्रेमचंद :-

प्रेमचंद जी का जन्म बनारस के पास लमही गाँव में हुआ। इनका असली नाम मुंशी धनपतराय था। पहले ये उर्दू में गद्य या कहानियाँ लिखते थे। बाद में उन्होंने हिंदी को अपनाया। खासकर हिंदी में कहानियाँ और उपन्यासों को प्रस्तुत किया। हिंदी में प्रेमचंद जी को 'उपन्यास सम्राट' के रूप में जाना जाता है।

उपन्यास को मनोरंजन के स्तर से उठाकर उसे जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम प्रेमचंद जी ने किया। समाज में फैले पराधीनता, पूँजीपतियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधश्रद्धा,

अस्पृश्यता, नारी जीवन की व्यथाएँ, मध्यवर्ग की कुंठाएँ आदि बातों ने उन्हें साहित्य में सृजन की प्रेरणा दी। 'गोदान' उपन्यास को तो 'ग्रामीण जीवन और संस्कृति का महाकाव्य' कहना उचित होगा। 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में ग्रामीणों की दयनीय स्थिति का सच्चा और व्यापक चित्रण मिलता है। अपने उपन्यासों में उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है। उन्होंने उपन्यास को सशक्त माध्यम प्रदान किया। वे अपने युग के निर्भिक और जनवादी साहित्यकार थे। यथार्थ और आदर्श का सुंदर चित्रण आपने अपने साहित्य में किया।

उपन्यास :- सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि, प्रेमा, वरदान, प्रतिज्ञा, निर्मला, कायाकल्प, मंगलसूत्र आपका अंतिम उपन्यास हैं।

सेवासदन :- दहेज प्रथा, कुलीनता का प्रश्न, वेश्याओं का समाज में स्थान।

निर्मला :- दहेज प्रथा तथा बेमेल ब्याह की समस्या, नारी जीवन के सारे प्रश्न।

गोदान :- गरीब किसान के जीवन की समस्याएँ।

प्रतिज्ञा :- विधवा विवाह की समस्या।

गबन :- मध्यवर्ग की कुंठा, नारी की आभूषण प्रियता।

रंगभूमि :- पूँजीवाद का बढ़ता प्रभाव तथा मूल्यों का विघटन।

* प्रेमचंद जी राष्ट्रप्रेमी और देशभक्त के साथ-साथ गांधीवादी भी थे।
* वस्तुविधान, चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देशकाल, भाषाशैली, सभी दृष्टियों से प्रेमचंद जी के उपन्यास समृद्ध, प्रौढ़ तथा सशक्त रहे।
* उनकी भाषा में माधुर्य गुण मौजुद है। भाषा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से समर्थ है।
* आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को प्रेमचंद जी ने अपनाया था।

इस युग के अन्य उपन्यासकार :-

1. विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक :-

कहानीकार के साथ-साथ उपन्यासकार के रूप में भी सामने आते हैं।

उपन्यास :- 'भिखारीणी' और 'माँ'। इन उपन्यासों में उन्होंने समाज का विशेष रूप से पारिवारिक जीवन का चित्रण करने में सफलता प्राप्त की है।

2. प्रतापनारायण श्रीवास्तव :-

प्रतापनारायण जी ने अपने उपन्यासों में शहरी जीवन का चित्रण किया है। शहरी उच्चवर्ग का यथार्थ चित्र इनके उपन्यासों में अंकित है। 'विदा' 'विकास' और 'विजय' ये तीन ही उपन्यास इन्होंने लिखे हैं। तीनों उपन्यासों में विदेशी रमणियाँ आई हैं। आघातों द्वारा पूर्व जन्म की स्मृतियों को उजागर कर एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग-सा किया गया है। उपन्यासों में मिले-जुले समाज के अनुरूप ही भाषा भी मिलती-जुलती हो गई है।

3. जयशंकर प्रसाद :-

प्रसाद जी का मुख्य क्षेत्र नाटक है। तथापि उपन्यास और कहानियों में भी उनका विशेष स्थान रहा है। प्रेमचंद जी की तरह प्रसाद जी ने भी अपने उपन्यासों में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ का चित्रण किया है। 'कंकाल'

उपन्यास में उन्होंने समाज को सभी प्रकार के पतित लोगों को एकत्र भर दिया हैं। उपन्यासों के पीछे मूल उद्देश्य लोगों का ध्यान बुराईयों की ओर करना ही नहीं बल्कि हिंदु-संगठन की ओर भी रहा।

उपन्यास :- कंकाल, तितली।

तितली में ग्रामीण दृश्यों का चित्रण किया है। तथा ग्रामीण समस्याओं पर प्रकाश डाला है।

एक प्रतिभासंपन्न लेखक होते हुए भी प्रसाद जी हिंदी उपन्यास को कोई नया आयाम नहीं दे सके।

4. जैनेंद्रकुमार :-

केवल तीन उपन्यास लिखकर जैनेंद्रकुमार जी हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासकार बन गए। 'परख', 'सुनीता' और 'त्यागपत्र'। वे खासकर कहानीकार रहे परंतु प्रेमचंद के उपरांत जैनेंद्र का ही स्थान उपन्यास साहित्य में विशेष रूप से विद्यमान हैं।

'परख' में उन्होंने समकालीन सामाजिक उपन्यासों की परंपरा से अलग लीक पर चलने का प्रयास किया है। व्यापक सामाजिक जीवन उनके उपन्यासों का विषय बना। उनके उपन्यासों की कहानियाँ होती है। 'परख' पर आपको 'हिंदुस्थानी अकादमी पुरस्कार' तथा उत्तर प्रदेश के हिंदी संस्थान की ओर से एक लाख रूपए का 'भारती पुरस्कार' मिला है। पात्रों को 'पहेली' बनाना आपके उपन्यासों की त्रुटि है फिर भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करने की राह जैनेंद्रकुमार ने ही खोली है।

कथा के अनुसार भाषा चलती हुई हिंदी, स्थानीय मुहावरों का प्रयोग, अंग्रेजी मुहाँवरों का अनुवाद आपके भाषा की विशेषताएँ हैं। सरल तथा मनोभावों को व्यक्त कराने वाली भाषा आपके भाषिक गुण हैं।

प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास को विशेष व्यक्तित्व प्रदान करने का श्रेय जैनेंद्रकुमार जी को ही जाता है।

5. भगवतीचरण वर्मा :-

वर्मा जी प्रेमचंद युग के महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन्होंने कई उपन्यास लिखे हैं। 'चित्रलेखा' आपका ऐतिहासिक उपन्यास है जो काफी लोकप्रिय हुआ। इसके ऊपर फिल्म भी बनी। इसमें प्रेमभावना को पाप-पुण्य के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया गया। स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि पर आधारित 'भूले बिसरे चित्र' आपका विशेष प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रमुख रचनाएँ :- 'तीन वर्ष', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखरी दाँव', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहि नचावत राम गोसाई' 'प्रश्न और मरीचिका', 'सीधी-सच्ची बातें' आदि।

6. वृंदावनलाल शर्मा :-

झाँसी के रहने वाले बुंदेलखंड से संबंधित ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़मुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी'। इनमें इतिहास और कल्पना का सुंदर सामंजस्य देखने को मिलता है। 'विराटा की पद्मिनी' आप का उच्च कोटि का उपन्यास है। शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की शुरुआत वर्मा जी के उपन्यासों से ही हुई है। विभिन्न सामाजिक उपन्यास भी आपने लिखे हैं।

उपन्यास :- 'संगत', 'लगन', 'कुंडली चक्र', 'सोना', 'संग्राम', 'कभी-कभी', 'अचल मेरा भोई' आदि।

मृगनयनी, रामगढ़ की रानी, भुवन विक्रम, टूटे काँटे, अमर बेल, कचनार, अहल्याबाई आपके ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

7. पं. राहुल सांकृत्यायन :-

बौद्‌ध संप्रदाय और मार्क्सवाद का प्रभाव रखने वाले उपन्यास राहुल जी ने लिखे हैं। केवल भारत नहीं परंतु भारत के बाहर के इतिहास भी इनके उपन्यासों में चित्रित हैं।

प्रमुख उपन्यास :- ऐतिहासिक - 'जययौधेय', 'सिंह सेनापति', 'मधुर स्वप्न', 'विस्मृत यात्री'।

अनुदित उपन्यास - 'शैतान की आँख', 'विस्मृति के गर्भ में', 'सोने की ढाल'।

8. सियारामशरण गुप्त :-

मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास। गांधी दर्शन का प्रभाव। 'नारी' उपन्यास में नारी समस्याओं के निराकरण के लिए वह पुराने मूल्यों के समन्वय पर बल दिया गया है।

उपन्यास :- 'गोद', 'अंतिम आकांक्षा', 'और 3', 'नारी',

9. अन्य उपन्यासकार :-

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' - 'अप्सरा', 'अलंकार'। भगवतीचरण वाजपेयी - 'प्रेमपथ', 'प्यासा', 'दो बहिने'। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' - 'दिल्ली का दलाल', 'शराबी', 'खतूत'

-: उपन्यास साहित्य की विशेषताएँ :-

1. इस युग में उपन्यास साहित्य का बड़ा विस्तार हुआ। अनेक उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना हुई।
2. यथार्थ मानव जीवन से साहित्य का रिश्ता जोड़ा गया। उपन्यास पढ़ना, उसको स्वीकृत करना, अपनाना, सहजता से हुआ।
3. सामाजिक समस्याओं को समाज के सामने प्रस्तुत करने का साधन साहित्य बना।
4. महात्मा गांधीजी के दर्शन का प्रभाव काफी गहरा साबित हुआ।
5. भारतीय पराधीनता का एहसास रेखांकित किया गया।
6. स्वदेश प्रेम - नवजागरण के भावों की जागृति कराने में साहित्य का सहयोग।
7. लेखकों ने एक तरह से देशसेवा की। साहित्य सृजन ही देशसेवा बनी।
8. उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता को आधार बनाने की दृष्टि इसी युग में दिखाई दी।
9. ग्रामीण समाज, ग्रामीण जीवन और ग्रामीण परिवेश को अधिकांश उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान मिला।
10. शोषित और शोषक वर्ग के संघर्ष का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया।
11. शिल्प की दृष्टि से इस युग के उपन्यास साहित्य को विशेष स्तर मिला है। इनकी भाषा बोलचाल की हिंदी ही रही हैं।
12. मानवमन की अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए इस युग में उपन्यास को माध्यम बनाया गया।
13. इस युग के उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में वैविध्य दिखाई देता है। वहीं उपन्यास की प्रौढ़ता, विकास एवं समृद्‌धि का द्‌योतक हैं।

(3) प्रेमचंदोत्तर युग :-

प्रेमचंद युग की तरह 'प्रेमचंदोत्तर युग' में भी उपन्यास लेखन का क्रम जारी रहा। यह काल उपन्यास क्षेत्र के विचार से हिंदी साहित्य का समृद्धि काल है। उपन्यास ने इस काल में बहुमुखी रूप धारण किया।

-: उपन्यास के प्रकार :-

1. सामाजिक
2. मनोविश्लेषणात्मक
3. साम्यवादी
4. ऐतिहासिक
5. आँचलिक

-: उपन्यास साहित्य को समृद्ध करने वाले उपन्यासकार :-

वृंदावनलाल शर्मा, रांगेय राघव, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेंद्र यादव, प्रभाकर माचवे, हजारीप्रसाद द्विवेदी, मोहन राकेश आदि।

1. अज्ञेय :-

प्रेमचंदोत्तरयुगीन जैनेंद्र की परंपरा को अपने ढंग से विकसित करने का श्रेय इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय जी को है। उनका पहला उपन्यास 'शेखर-एक जीवनी' प्रकाशित हुआ तो वह उपन्यास के क्षेत्र में नई दिशा का वाहक सिद्ध हुआ। कथा, शिल्प, भाषा सभी स्तरों पर इसे एक महत्वपूर्ण प्रयोग माना गया है। आधुनिकता का प्रथम अभिनिवेश अज्ञेय जी के उपन्यास में होता है। 'नदी के द्विप' यह इसी परंपरा में लिखा हुआ उपन्यास हैं। 'अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय जी का तीसरा उपन्यास है, जिसमें एक प्रकार की धार्मिक दृष्टि संपन्नता दिखाई पड़ता है।

अज्ञेय जी के उपन्यासों में अस्तित्ववाद जीवन-दर्शन छलकता हैं। इसमें मुख्य समस्या स्वतंत्रता के वरण की है जो संत्रास अकेलेपन, बेगानगी, अजनबीपन आदि से सहज ही संयुक्त हो गई।

2. यशपाल :-

यशपाल जी मुख्यतः समाजवादी उपन्यासकार है। यशपाल जी हिंदी कथा साहित्य के पहले ऐसे लेखक थे जिनके उपन्यासों में साम्यवादी विचारधारा अपने मुख्य रूप में सबसे पहले प्रकट हो गई थी। 'दादा कामरेड' यशपाल जी ही रहे हैं। उन्होंने अपने सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से जीवन के यथार्थ रूप का चित्रण किया। उनके उपन्यासों में युगजीवन के संघर्ष का वर्णन विशेष रूप से दिखाई देता है।

यशपाल जी के उपन्यास :-

देशद्रोही', 'दिव्या', 'अमिता', 'मनुष्य के रूप', 'झूठा सच', 'तेरी-मेरी बात'

'दिव्या', 'अमिता' - ऐतिहासिक उपन्यास।

'झूठा सच' महाकाव्यात्मक सर्वोत्तम उपन्यास और हिंदी का 'गोदान' के उपरांत 'दूसरा सर्वश्रेष्ठ उपन्यास' माना जा सकता है।

3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी :-

हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में द्विवेदी जी ख्यातनाम हैं।

इनके उपन्यासों में इतिहास, कल्पना, धर्म, दर्शन, संस्कृति, मिथक, प्रतीक, बिंब इनका अनूठा मिश्रण हैं। द्विवेदी जी ने भारत के पुराने और आज के संदर्भों से एक सुंदर जोड़ बनाकर भविष्य को आशामय बनाया।

उनके उपन्यास :-

'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचंद्र लेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' ये सभी उपन्यास काफी लोकप्रिय रहे। उनके उपन्यासों में कल्पना और इतिहास का सुंदर मेल पाया जाता है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' यह एक क्लासिकल रोमँटिक उपन्यास है। 'चारुचंद्र लेख' में इन्होंने कुतुहल, विस्मय, रोमांस और रहस्य की सृष्टि की है।

द्विवेदी जी ने किसी कालखंड को जीवंत रूप में प्रस्तुत करने के साथ साथ उसे आज की ज्वलंत समस्याओं के साथ जोड़ने का सफल प्रयास किए हैं।

4. फणीश्वरनाथ 'रेणु' :-

आँचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उनकी राय से उनके पहला उपन्यास 'मैला आँचल' ही पहला विशुद्ध आँचलिक उपन्यास है। इनके उपन्यास 'परती परिकथा' और 'मैला आँचल' में ग्रामोचलों के कितने ही विशद और सवाक् चित्र देखने को मिलते हैं। इनमें आँचलिक उपन्यासों के प्रायः सभी गुण तथा तत्व को देखने को मिलते हैं। रेणु जी ने इसके मानदंड स्थापित किए। इन उपन्यासों की छोटी-छोटी घटनाएँ, कथाएँ, आचार-विचार, रीतिरीवाजों के इतने स्पष्ट चित्र मिलते हैं जो पूरे अँचल के संदर्भ में लागू होते हैं।

'रेणु' जी के उपन्यासों से बिहार प्रदेश के तथा संस्कृति के सजीव चित्र उजागर होते हैं।

5. रामदरश मिश्र :-

मिश्र जी आँचलिक उपन्यासकार रहे हैं। अपने उपन्यासों में उन्होंने अपने आँचल की समस्याओं, विसंगतियों, अभावों को सशक्त भाषा में अभिव्यक्त किया है। उनका साहित्य आंतरिक आवेग से निकलते हुए अधिक परिणामकारक बना है। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' प्रभावशाली ग्रामांचलीय उपन्यास हैं।

(4) स्वातंत्र्योत्तर युग :-

स्वातंत्र्योत्तर काल में हमें पाँच प्रकार के उपन्यास मिलते हैं।

1. समाजवादी विचारपरक
2. मनोविश्लेषणात्मक विचारपरक
3. व्यक्तिवादी विचारपरक
4. अस्तित्ववादी विचारपरक
5. आँचलिक जीवनपरक

1. समाजवादी विचारपरक उपन्यास :-

इस काल के प्रमुख नेता तथा देशनायक महात्मा गांधी तथा कार्ल मार्क्स की विचारधारा को लेकर चलने वाले उपन्यासकारों ने यथार्थ जीवन को आदर्श के रूप में देखना चाहा। जैनेंद्र की 'सुखदा', लक्ष्मीनारायण लाल का 'बैया का घोसला', वृंदावन लाल शर्मा का 'अमरबेल' आदि उपन्यास इस काल में प्रसिद्ध हुए।

मार्क्सवादी समाजवाद यथार्थवादी चिंतन को महत्व देता हैं। इस विचारधारा के उपन्यास इस प्रकार हैं - यशपाल का 'मनुष्य के रूप', 'बारह घंटे'। रामेश्वर शुक्ल 'अँचल' का 'उल्का'। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र'।

2. मनोविश्लेषणात्मक विचारपरक उपन्यास :-

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के प्रणेता श्री. जैनेंद्रकुमार जी हैं। अपने उपन्यास 'सुखदा' और 'विवर्त' में उन्होंने पात्रों के मन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वास्तव जीवन की समस्या, अतृप्ति, कुण्ठा, निराशा आदि भावनाओं के साथ विवाह और सेक्स की समस्या इसमें उभरकर आई। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में इनका सूक्ष्मता से और बारिकी से चित्रण हुआ है। इलाचंद्र जोशी का 'जहाज का पंछी' उपन्यास इसी पृष्ठभूमिपर आधारित है। नरेशचंद्र मेहता का 'धूमकेतु एक श्रुति' और राजेंद्र यादव का 'अनदेखा अनजान पुस' मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

इस दिशा में धर्मवीर भारती, शेवडे, यादवचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे आदि उपन्यासकार प्रमुख हैं।

3. व्यक्तिवादी विचारपरक उपन्यास :-

इन उपन्यासों में व्यक्ति जीवन से संबंधित सेक्स भावना, यौन आकर्षण, हीन भावना, प्रेमविवाह तथा अन्य मनोवैज्ञानिक पहलूओं का भरपूर प्रयोग व्यक्तिवादी विचारपरक उपन्यासों में हुआ।

अज्ञेय का 'नदी के द्विप', भगवतीचरण वर्मा का 'रेखा', भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'उनसे न कहना', 'सपना बिक गया', डॉ. देवराज का 'पथ की खोज', 'अजय की डायरी' आदि उपन्यास इस प्रकार के प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

4. अस्तित्ववादी विचारपरक उपन्यास :-

इस प्रकार के उपन्यासों में अज्ञेय का 'अपने अपने अजनवीं (1965) और इलाचंद्र जोशी का ऋतुचक्र (1969) प्रसिद्ध हैं।

5. आँचलिक जीवनपरक उपन्यास :-

इस प्रकार के उपन्यासों में पहला उपन्यास है 'मृगनयनी' जो वृंदावनलाल वर्मा का लिखा हैं। भैरवनाथ गुप्त का 'गंगामैया', सतीमैया का चौरा, शोले, मशाल, नया आदमी उपन्यास आँचलिकता से परिपूर्ण उपन्यास हैं।

आँचलिक उपन्यासकार :- फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन, हिमांशु श्रीवास्तव, रामदरश मिश्र, उपेंद्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण लाल आदि।

* * *

2. कहानी विधा का उद्‌भव तथा विकास

प्रस्तावना :-

गुनगुनाने के समान कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति मानव के जन्मजात स्वभाव का एक अंग है। इसीलिए कहानी की शुरुआत किसी भाषा में कब हुई यह कहना कठिन है। भारत में ऋग्वेद काल से कहानियाँ उपलब्ध हैं। उसके बाद उपनिषद्, पुराण, जातक में भी कथा के कई तत्व और आलयान मिलते हैं। मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी चली आने वाली अनेक कहानियाँ आज भी प्रचलित हैं।

संस्कृत में उपलब्ध 'कथा सरित्सागर', 'बृहत कथा', 'वैताल पचीसी', 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' आदि ग्रंथ मूलतः लोकप्रचलित कथाओं के संकलित रूप हैं। अतः स्पष्ट है कि कहानियों का आरंभ तथा उसके विकास की परंपरा अत्यंत प्राचीन हैं।

यद्‌यपि प्राचीन साहित्य में सैंकड़ो कहानियाँ मिलती हैं। उन्हें आधुनिक अर्थ में 'कहानी' नहीं कहा जा सकता। प्राचीन कहानियों में नीतिपरक, उपदेशात्मक हुआ करती थी। ज्ञान और मनोरंजन उनके उद्‌देश्य अवश्य थे परंतु कहानी के अन्य तत्वों का उनमें अभाव रहता था।

हिंदी की पहली कहानी किसे माना जाए यह बात विवादास्पद रही है। एक बात निश्चित है कि अन्य गद्‌य विधाओं की तरह आधुनिक कहानी की शुरुआत भारतेंदु युग में ही हुई। कुछ लोग मुंशी इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' हिंदी की पहली कहानी हैं। तत्पश्चात राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की 'राजा भोज का सपना' और भारतेंदु जी की 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' इनमें आधुनिक कहानी के तत्व किसी भी अंश में उपलब्ध नहीं होते।

कुछ विद्‌वान हिंदी कहानी का आरंभ बंगला एवं मराठी की कहानियों का अनुवाद से स्वीकार करते रहे। इन्हीं अनुवादों ने सर्वप्रथम हिंदीवालों का ध्यान कहानी के आधुनिक रूप की ओर आकृष्ट किया था। 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन ने इस आकर्षण को अच्छा अवसर दिया। इस पत्रिका में हिंदी लेखकों की कहानियों के प्रकाशन का आरंभ हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी भी 'इंदुमती' कहानी सरस्वती पत्रिका में सर्वप्रथम प्रकाशित हो चुकी थी। इस कहानी में आज की कहानी के मौलिक तत्वों के सर्वप्रथम दर्शन होते हैं। अतः आचार्य शुक्ल से लेकर कई विद्‌वान इसी कहानी से आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ मानते हैं। 'इंदुमती' के पश्चात सरस्वती में किसी बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी प्रकाशित हुई। उसके बाद रामचंद्र शुक्ल जी की 'ग्यारह वर्ष का समय' यही से आधुनिक हिंदी कहानी का काल शुरु होता है ऐसा कइयों का मानना हैं। तब से लेकर आजतक हिंदी कहानी की विकासयात्रा का सिलसिला जारी है। विकास मात्र इसप्रकार माना जाता है -

1. प्रेमचंद पूर्व युग
2. प्रेमचंद युग
3. प्रेमचंदोत्तर युग
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी
5. नई - साठोत्तर कहानी
6. अ-कहानी। सचेतन तथा समांतर कहानी

1. प्रेमचंदपूर्व युग :-

भारतेंदु युग में प्रायः कहानियाँ नहीं लिखी गईं। हिंदी कहानियों का आरंभ कुछ बाद में हुआ। सन 1900 में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हिंदी कहानी का जन्म हुआ। आरंभ में शेक्सपिअर के नाटकों के आधार पर या बंगला भाषा से रूपांतरित लोककथाओं से प्रेरणा पाकर वास्तविक घटनाओं को प्रस्तुत करना कहानियों का रूप रहा। जयशंकर प्रसाद, किशोरीलाल गोस्वामी, बंग महिला, माधवप्रसाद मिश्र, वृंदावनलाल वर्मा आदि लेखकों ने कहानियाँ लिखी।

वृंदावनलाल वर्मा 'राखीबंद भाई' कहानी लिखकर ऐतिहासिक कहानियों की परंपरा की शुरुआत की। इसी समय काशी से 'इंदु' पत्रिका प्रकाशन हुआ। जिसमें जयशंकर प्रसाद की भावात्मक कहानियाँ प्रकाशित हो गई। राधिकारमसिंह की 'कानों में कँगना' भी 'इंदु' पत्रिका में ही प्रकाशित हुई थी।

चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' सन 1915 में 'सरस्वती पत्रिका' में प्रकाशित हुई। पहले महायुद्ध की पृष्ठभूमि को लेकर लिखी गई यह कहानी रचनाशिल्प की दृष्टि से अपने समय से बहुत आगे की रचना है। इसी काल में ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन', विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की 'रक्षाबंधन', पद्मलाल पन्नालाल बक्षी की 'झलमला' आदि बहुचर्चित कहानियाँ प्रकाशित हुई। इसी समय हिंदी 'गल्पभाक' नामक मासिक पत्रिका का आरंभ हुआ। इसमें गंगाप्रसाद श्रीवास्तव और इलाचंद्र जोशी की कुछ प्रारंभिक कहानियाँ प्रकाशित हुई। साहित्य में कहानी की स्वतंत्र सत्ता सर्वमान्य हुई और उनका मौलिक रूप निखरने लगा।

-: प्रेमचंदपूर्वकालीन कहानियों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :-

-: इस युग में तीन प्रकार की कहानियाँ दिखाई दीं।
1. रूपांतरित 2. अनुदित 3. मौलिक कहानियाँ।

-: यह कहानी का प्रयोग काल था। कहानी रचना की यह आरंभिक अवस्था थी। इसमें कहानी की प्रधानता थी। कथानक या कथ्य की उपस्थिति थी।

-: उस समय कहानी मनोरंजन की वस्तु थी। यह साहित्य सबसे सस्ता, छोटा और सहज उपलब्ध हो सकने वाला मनरंजन था।

-: अपनी कहानियों द्वारा कहानीकारों ने उपदेश देने की भावना को भी जागृत रखा।

-: अनुभूति के साथ यथार्थ चित्रण पर भी बल था।

-: चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' द्वारा अच्छी शुरुआत के साथ विश्वंभरनाथ शर्मा, चतुरसेन शास्त्री, उग्र, निराला आदि कहानीकार उभरे।

-: ये कहानियाँ प्रायः आदर्श को सामने लाना चाहती थी। मनुष्यता के साथ-साथ स्वदेश प्रेम यह भी उद्दिष्ट था।

-: प्रायः ये कहानियाँ पत्रिका में छपकर सामने आई थी।

प्रेमचंदपूर्व कालीन प्रमुख कहानीकार :-

1. किशोरीलाल गोस्वामी :-

शेक्सपिअर के 'टेम्पेस्ट' नाटक पर आधारित 'इंदुमती' कहानी 'सरस्वती' नाम की सर्वप्रथम मौलिक कहानी है। इस कहानी पर 'कथासाहित्सागर' का प्रभाव है। इसके अंत में भरतवाक्य की योजना की गई है।

उपदेश, अलंकृती, जासूसीतत्व, चमत्कार सब इसमें विद्यमान है। फिर भी इसकी कथावस्तु में निहित युगीन संदर्भ आदि तत्व इसे आगे की कहानियों से जोड़ते हैं।

2. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' :-

हिंदी साहित्य क्षेत्र में कुशल संपादक, प्रबुद्ध निबंधकार और असाधारण कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आप की कहानी 'उसने कहा था' ने उनकी सर्वाधिक ख्याति हुई। आचार्य शुक्ल तथा डॉ. नगेंद्र जी दोनों ने 'गुलेरी' जी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। कहानी की संरचना, जीवंत वातावरण, बालप्रेम की अमिट छाप और उसके लिए कुर्बानी, देशकाल की पृष्ठभूमि, सस्पेन्स, संक्षेप में सभी पहलुओं से यह एक उत्कृष्ट कहानी है।

3. बंग महिला :-

इनका अपना एक विशिष्ट स्थान है। वे मिरजापुर के निवासी प्रतिष्ठित बंगाली सज्जन बाबू रामप्रसन्न घोष की पुत्री और बाबू पूर्णचंद्र की धर्मपत्नी थी। उन्होंने बहुत-सी कहानियों का बंगला से अनुवाद किया। हिंदी में मौलिक कहानियाँ भी लिखी। उनकी 'दुलाईवाली' कहानी सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

4. पं. माधवप्रसाद मिश्र :-

मिश्र जी बड़े तेजस्वी, सनातन धर्म के कट्टर समर्थक, भारतीय संस्कृति की रक्षा के सतत अभिलाषी विद्वान हैं। इनकी लेखनी में बड़ी शक्ति थी। इनकी शैली प्रगल्भ थी। काशी की सुदर्शन पत्रिका में इनके लेख छपते थे। सन 1900 में इनकी प्रथम कहानी 'मन की चंचलता', 'सुदर्शन' पत्रिका में ही छपी थी।

2. प्रेमचंद युग :-

आधुनिक हिंदी कहानी का युग प्रेमचंद जी पूर्व सन 1900 से ही शुरु हुआ। सही अर्थ में प्रेमचंद युग से पहले ही प्रेमचंद जी ने साहित्य निर्माण किया था। कहानी लिखना भी आरंभ कर दिया था। प्रसाद और प्रेमचंद दोनों विद्वानों के कृतित्व का विकास उसके बाद हुआ। परिणाम और प्रकार दोनों दृष्टियों से प्रेमचंद ही इस काल के प्रमुख कहानीकार रहे। 'उपन्याससम्राट' की तरह ही कहानियों के क्षेत्र में भी प्रेमचंद जी ने विस्तृत लेखन किया। सैंकड़ो कहानियाँ लिखीं। कहानी-विकास के इस युग को सार्थ रूप से 'प्रेमचंद युग' कहा जाता है।

प्रेमचंदयुगीन प्रमुख कहानीकार :-

1. प्रेमचंद :-

उपन्यास की तरह कहानी क्षेत्र में भी प्रेमचंद जी का स्थान अद्वितीय रहा। उन्होंने लगभग तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी जो 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं।

आरंभ में उर्दू में कहानियाँ लिखा करते थे। इनमें राष्ट्रीय भावना के भाव होते थे। 'जमाना' पत्रिका में ये कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थी। 'सोजे वतन' उनकी कहानियों का पहला संग्रह है। अंग्रेज सरकार ने उस संग्रह को जब्त कर दिया क्योंकि उनमें वर्णित राष्ट्रीय भावना तीखी एवं कठोर थी।

अब तक अनुवाद के जरिए और भाषाओं पर अवलंबित हमारी कहानियाँ प्रेमचंद जी के आगमन से स्वावलंबी बन गई। प्रेमचंद जी ने अभ्यासपूर्ण कहानियाँ लिखी जो शिल्प और कला की दृष्टि से उच्च कोटि की साबित हुई।

प्रेमचंद जी जनता के लेखक थे। सैंकड़ो मूक, हीन-दीन, सामान्य जनों की वेदना को, दुख को, अन्याय-अत्याचार को उन्होंने मुखर बनाया। वास्तविक जीवन की अनुभव संपन्नता के कारण इनकी के कारण उनकी कहानियाँ सजीव तथा परिणामकारक बनीं। पढ़ने वाले को वे आसपास की और संभवनीय लगती। सत्याग्रह का वातावरण, नारी जीवन, स्कूलों कॉलेजों का, जमींदारों का, साहूकार-क्लर्कों का सभी प्रकार के जिंदगी का लेखा-जोखा कहानियों द्‌वारा प्रेमचंद जी ने जनता के सामने प्रस्तुत किया।

जीवन समस्याएँ, उनका यथार्थ, घटना प्रधान तथा वर्णनात्मक कहानियों में चितारना, एक तरह से समाज जागृति का गांधीजी का काम ही वे लेखक, कहानीकार, बनकर कर रहे थे। अतः उनका साहित्य 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' बन गया।

हिंदी-उर्दू शब्दप्रयोग, मुहावरेदार भाषा, सशक्त अभिव्यक्ति शैली, प्रभावी संवाद इन गुणों के कारण प्रेमचंद जी कहानियाँ सहज और सजीव बन गई।

बड़े घर की बेटी, शतरंज के खिलाड़ी, कफन, ईदगाह, सुजान भक्त आदि प्रेमचंद जी की लोकप्रिय कहानियाँ रही हैं।

2. जयशंकर प्रसाद :-

सन 1921 में 'इंदु' पत्रिका में प्रसाद जी की पहली कहानी 'ग्राम' छप गई। इसके तुरंत बाद उनकी कई महत्वपूर्ण और लोकप्रिय कहानियाँ भी प्रकाशित हुई। इनकी लोकप्रिय कहानियाँ 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आँधी', 'इंद्रजाल', 'आकाशदीप' आदि। ये कहानियाँ इन्हीं नामों के कहानी संग्रहों में संग्रहित हैं।

प्रसाद जी की कहानियाँ यथार्थ से ज्यादा अतीत के गौरव, कोमल भावुक, रोमान्स, कल्पना की उड़ानों के चित्रों से भरी हैं। ये भाव आधुनिक हिंदी कहानी से हटकर हैं। अपनी कहानी में प्रेम के उच्च आदर्श को इन्होंने चित्रित किया है।

शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी की कहानियाँ किसी एक भावना, मानवीय पहलु या घटना पर आधारित होती है। प्रेमचंद की तरह वे किसी समस्या पर बल नहीं देते। व्यक्तिचरित्र ही उनकी कहानियों में मुख्य होते हैं।

नाटकीय तत्व, दृश्य और वातावरण का भी वे सुंदर प्रयोग करते हैं। कहानियों का अंत बड़ा प्रभावशाली होता है।

3. विश्वंभर शर्मा 'कौशिक' :-

कौशिक प्रेमचंद युग की कहानी परंपरा के कहानीकार हैं। वे भी पहले उर्दू में ही कहानियाँ लिखते थे। उनकी पहली कहानी 'रक्षाबंधन' सरस्वती पत्रिका में सन 1912 में प्रकाशित हुई।

इनके कहानी संग्रह :- 'गल्पमंदिर', 'चित्रशाला', 'प्रेमप्रतिमा', 'मणिमाला', 'कल्लोल', 'कलामंदिर' इनमें कौशिक जी की दो सौ से भी अधिक कहानियाँ संग्रहित हैं। समाज से इन्होंने कई समस्याओं को कहानी के लिए चुना। जैसे; बालविवाह, पर्दाप्रथा, दहेज प्रथा। इनमें पारिवारिक जीवन का ही चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है। ग्रामीण से ज्यादा नागरी जीवन का चित्रण किया है। 'ताई' कहानी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। ये कहानियाँ 'कथा' हैं।

4. सुदर्शन :-

प्रेमचंद की तरह तत्कालिन समस्याओं पर कहानियाँ लिखी। जीवनोपयोगी आदर्श का समावेश। विषयों में विविधता है।

कहानियाँ घटनाप्रधान, वर्णनात्मक, सहज, धारायुक्त, मुहावरेदार भाषा में लिखित हैं। निम्नवर्ग तथा मध्यवर्ग से पात्र चुने हैं।

कहानी संग्रह :- 'सुप्रभात', 'पुष्पलता', 'पनघट', 'तीर्थयात्रा', 'फूलवती', 'नगीने', 'प्रमोद' प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कहानियाँ - 'हार की जीत', 'आशीर्वाद', 'अल्बम', 'कवि की स्त्री' आदि।

5. जैनेंद्रकुमार :-

कहानी नए आयाम देने वाले कहानीकार। प्रेमचंद जी के समकालीन होते हुए भी उनका अनुसरण जैनेंद्रकुमार ने नहीं किया। घटनाप्रधान से ज्यादा पात्रप्रधान कहानियाँ लिखी।

सामाजिक से ज्यादा मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ। लेखक मानसिक गूत्थियाँ सुलझाने में, सामाजिक परिवेश के दबाव के विश्लेषण में अधिक रूचि रखने वाले।

मुख्य विषय नारी है। ऐसी नारी जो घर ही नहीं पातिव्रत्य की चहारदीवारी से भी बाहर निकलकर मुक्त साँस लेना चाहती हैं।

कहानी संग्रह :- 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'दो चिड़ियाँ', 'स्पर्धा', 'पाजेब', 'एक रात', 'फाँसी' आदि।

6. अज्ञेय :-

जैनेंद्र जी की तरह अज्ञेय जी ने भी हिंदी कहानी को नई क्षमताएँ प्रदान की। उनकी बहुमुखी प्रतिभा का तथा बहुमुखी व्यक्तित्व का प्रभाव इनकी कहानियों पर दिखाई देता हैं।

भावुकता से ज्यादा बौद्धिकता इनकी कहानियों से छलकती है। उनका पहला कहानी संग्रह - 'त्रिपथगा' सन 1931 में प्रकाशित हुआ। कहानी से एक प्रकार की विचारशीलता और तटस्थता दिखाई देती है। विषयों में विविधता पाई जाती है। आत्मकथा, डायरी, पत्र आदि शैलियों में भी अज्ञेय जी ने कहानियाँ लिखी।

कहानी संग्रह :- 'शरणार्थी', 'परंपरा', 'अमर वल्लरी', 'कोठारी की बात', 'त्रिपथगा' आदि।

7. अन्य कहानीकार :-

भगवतीचरण वर्मा :- 'इन्स्टॉलमेंट, कहानी संग्रह में संग्रहित।

सुमित्रानंदन पंत :- 'पानवाला' कहानी।

सुभद्राकुमारी चौहान :- कहानीसंग्रह - 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी', कहानी 'पाटी पेट'।

शिवरानी देवी :- प्रेमचंद जी की शैली में लिखी कहानियाँ 'कौमुदी' पत्रिका में प्रकाशित।

विष्णु प्रभाकर :- हंस और अलंकार पत्रकार में प्रकाशित कहानियाँ।

चतुरसेन शास्त्री :- ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित कहानियाँ 'अंबापत्रिका', 'प्रबुद्ध', 'भिक्षुराज', 'हद्विघाटी में' आदि उल्लेखनीय हैं।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' :- अपनी लीक बनाकर कहानियाँ लिखी। सामाजिक विकृति इनकी कहानियों का विषय बनी, 'उसकी माँ', कहानी प्रभावशाली है। व्यंग्यात्मक 'चिनगारियाँ', 'दोजख की आग', 'इंद्रधनुष' आदि कहानीसंग्रह।

कहानी विकास में यह युग महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके स्तंभों के रूप में प्रेमचंद और प्रसाद ने हिंदी कहानी की नींव पक्की की। प्रेमचंद जी ने आधुनिक कहानी को कलात्मक ऊँचाई दी। कौशिक, सुदर्शन, उग्र आदि ने इसे सामाजिक पीड़ा की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया। जैनेंद्र, अज्ञेय जी ने मनोविश्लेषण के आधार पर कहानी शिल्प में नवीन प्रयोग किए जहाँ से हिंदी कहानी की एक नवीन धारा फूट पड़ी।

3. प्रेमचंदोत्तर युग :-

प्रेमचंद जी के पश्चात 1936 के बाद का यह काल 'प्रेमचंदोत्तर युग कहलाता है। कहानी का यह चतुर्थ उत्थान काल रहा। इस काल में कहानीकारों ने कहानी शैली पक्ष को नवीन दिशाओं में प्रवाहित किया।

मनोविश्लेषण, वातावरण चित्रण तथा चरित्रों का अंतद्वंद्व इनके बारे में सतर्कता से देखा गया। वैसे तो प्रेमचंद जी की कहानियों में भी मनोविश्लेषण दिखाई देता है परंतु वह बहुत स्थुल है। इस काल के लेखक जैनेंद्रकुमार, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय जी की कहानियों में मनोविश्लेषण का बड़ा ही स्वाभाविक और मार्मिक दर्शन होता है। जैनेंद्रकुमार की 'चरित्रचित्त' अज्ञेय जी की 'विपथगा' आदि कहानियाँ इसको सिद्ध करती है।

इस काल में रोमानी कहानियाँ भी लिखी गई। अरकली, धर्मवीर भारती, श्रीराम शर्मा आदि इस प्रकृति को अपना चुके थे। यशपाल जी ने सामाजिक जीवन के आर्थिक आधार और तज्जन्य विषमताओं का चित्रण सफलता से किया। उन्होंने कई सामाजिक समस्याओं को कथानकबद्ध किया।

रांगेय राघव, अमृतलाल नागर, प्रभाकर माचवे, राजेंद्र यादव, विष्णु प्रभाकर आदि कवि तथा उपन्यासकार भी इस काल में कहानी क्षेत्र में आए।

हिंदी कहानी की कई शैलियाँ इस काल में विद्यमान थी।

विभिन्न शैलियाँ :-

1. ऐतिहासिक तथा वर्णनात्मक शैली :-

इस शैली में कहानीकार एक इतिहासकार की भाँति तटस्थ होकर वर्णन करता है। वह स्वतंत्र रहता है। इसमें रचित कहानियों में आकृति वर्णन, मानसिक द्वंद्व या संभाषण ज्यों के त्यों लिख दिए जाते हैं। उदाहरण - 'ताई', 'विधवा', 'उसने कहा था', 'कफन', 'आत्माराम' आदि।

2. आत्मचरित्रात्मक शैली :-

इस प्रकार की कहानी एक ही पात्र कहता चलता है। इसमें वर्ण्य विषय प्रथम पुरुष के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है। चरित्रप्रधान कहानियों के लिए उत्तम है। उदा :- 'चित्रवाले प्रतिमा', 'वह प्रतिमा', 'खूनी', 'अपत्नीक'।

3. पत्रात्मक शैली :-

इस शैली में एक-दो या अधिक पात्र कथा को पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। कहानी का विकास पात्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में होता है। यह तभी सफल हो सकती है, जब कहानीकार पत्रों में तर्कवादिता का आश्रय न ले।

उदा; प्रेमचंद की 'दो सखियाँ', प्रसाद की 'देवदासी'।

4. अन्योपदेसिक शैली :-

इस शैली में लिखी कहानियों में व्यंग्यार्थ की सिद्धि प्रमुख होती है। इसमें सांकेतिकता एवं प्रतीकात्मकता होती है।

उदा; अज्ञेय की 'शत्रु', उग्र जी 'भुनगा', प्रसाद की 'पत्थर की पुकार'।

5. डायरी शैली :-

इस शैली में कहानी लेखक को आत्मकथा के बंधनों में बँधकर ही कथानक को पूर्ण करना पड़ता है। इसमें डायरी के पन्नों द्वारा कहानी की संपूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है। पत्रात्मक शैली के समबद्ध यह शैली है।

6. नाटकीय शैली :-

यह कहानी की सर्वोत्तम शैली है। इसमें बड़ी सजीवता रहती हैं। कहानी का प्रारंभ प्रायः किसी कथोपकथन से होता है। प्रसाद जी की कहानियाँ इसी शैली में लिखी गई है।

7. मिश्रित शैली :-

कहानियों में प्रायः नाटकीय तथा वर्णनात्मक शैली का मिश्रण रहता है। इसमें संवाद कहानी में सजीवता लाते हैं। कथानक को गति प्रदान करते हैं।

8. प्रतीकात्मक शैली :-

कलात्मक तथा भावात्मक दोनों रूपों में यह शैली पाई जाती है। इसमें विभिन्न मूर्त-अमूर्त प्रतीकों के द्वारा मानव जीवन के कल्याणकारी तत्वों एवं सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण किया जाता है। इसमें मानसिक संघर्ष से युक्त चरित्रों का चित्रण करता हैं।

9. सांकेतिक शैली :-

इसमें दृष्टांत वार्ता और कथा शैली के द्वारा किसी नैतिक या दार्शनिक रहस्य का उद्घाटन या उपदेश रहता है।

10. हास्यव्यंग्य प्रधान शैली :-

इस वर्ग की कहानियों में हास्य और व्यंग्य की सहायता से मानव जीवन के किसी पक्ष का उद्घाटन किया जाता है।

प्रेमचंदोत्तर कहानी की प्रवृत्तियाँ :-

हिंदी कहानी भारतीय जीवन तथा परिवेश को अभिव्यक्ति देने का सफल एवं सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है। इस काल की कहानियों में देने वाली प्रवृत्तियाँ इसप्रकार है -

1. घटनाप्रधानता :-

इस काल की कहानियों में घटनाओं के विकास के साथ लेखक संवेदनशीलता पैदा करने हेतु मार्मिक स्थलों की योजना करते थे।

2. भावप्रधानता :-

इन कहानियों में घटना को कहानीकार घटना के सूत्र को रमणीय कल्पना में पिरोकर सुंदर संवादों से सजाकर प्रभावोत्पादक बना देता था।

3. कवित्तपूर्ण :-

कहानी का वातावरण तथा परिस्थिति को कहानीकार अलंकृत शैली में प्रस्तुत करते, उनका वर्णन करते। ऐसी कहानी में घटना के क्षीण सूत्र रहते थे।

4. दार्शनिकता :-

कई कहानियों में भावुकता की जगह दार्शनिकता का पुट रहता है।

प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी में भावुकता की जगह दार्शनिकता का पुट रहता है।

प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी के इतिहास में तीन प्रकार के कहानीकार पाए जाते हैं।

कहानीकारों का वर्गीकरण :-

1. मनोवैज्ञानिक कहानीकार
2. सामाजिक कहानीकार
3. यथार्थपरक कहानीकार

1. मनोवैज्ञानिक कहानीकार :-

इस प्रकार की कहानी के लेखकों ने ऐसे पात्रों को, चरित्रों को निर्माण किया जो किसी न किसी तरह की मनोवैज्ञानिक समस्या के शिकार थे। उनकी असाधारण परिस्थिति तथा व्यक्ति का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना कहानी का अभिन्न अंग रहता है।

अज्ञेय की 'रोज' कहानी इसप्रकार की कहानियों का उत्तम उदाहरण हैं।

2. सामाजिक कहानीकार :-

इसप्रकार की कहानियों में लेखकों ने सामाजिक स्थितियों का गहन और मनोवैज्ञानिक चित्रण अपनी कहानियों में किया। ये कहानियाँ काफी मशहूर और लोकप्रिय रही। यशपाल की 'कर्मफल', 'पूर्ति', 'दुख', 'चारआने'। उपेंद्रनाथ अश्क जी की 'पिंजरा', 'खिलौने' आदि कहानियाँ रामप्रसाद पहाड़ी की 'सड़क पर', 'मैली बरगद', विष्णु प्रभाकर की 'अभाव', 'धरती अब भी घूम रही हैं' आदि कहानियाँ इसप्रकार की हैं।

3. यथार्थपरक कहानी :-

समाज में व्याप्त नग्न सत्यों को इस काल से कई लेखकों ने ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया। इससे कहानी का क्षेत्र विस्तारित हुआ। चतुरसेन शास्त्री की 400 कहानियों के 25 संग्रह इस काल में प्रकाशित हुए। डॉ. रांगेय राघव की 'देवदासी' कहानी इसी काल में लिखी गई यथार्थपरक कहानी है।

4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी (नई कहानी) :-

इस काल में हिंदी कहानी का स्वरूप बदला। उसमें युगचेतना प्रस्फुटित हुई। स्वतंत्रता से पूर्व की हिंदी कहानी की परंपरा में इस युग में मोड़ आया। यह क्रांतिकारी परिवर्तन इतना प्रभावशाली हुआ कि इसकी तुलना में पूर्ववर्ति कहानी प्राचीन-सी हो गई और यह कहानी उससे विभिन्नता रखने के कारण, उसकी अपेक्षा में 'नई कहानी' कहलाई।

स्वतंत्रता के बाद अन्य साहित्यविधा की तरह कहानी विधा में भी लेखकों ने अपने पिछले तीस पैतीस साल की विसंगतियों, स्वानुभावों को कहानी रूप में ढ़ालना पसंद किया। कहानी लेखन करते समय वैयक्तिकता का स्वातंत्र्य लिया गया। अपनी कुण्ठा, संत्रास, अस्वीकृति, नैराश्य, टूटती आशा आदि भावनाओं का प्रगटीकरण कहानी के माध्यम से किया गया।

ये कहानीकार कहानी में भी परिवेश के बोध की संवेदना, बाह्य एवं आंतरिक विसंगतियों, अंतर्विशेषों, कटुताओं, पारिवारिक विघटन, मूल्य संक्रमण, स्त्री-पुरुष संबंधों आदि को लेकर नए मानवीय क्षितिज की खोज करने लगे। मध्यमवर्गीय जीवन की वस्तुस्थिति, धर्म, पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था आदि के कारण व्यक्ति और समाज के संबंध निश्चित पड़ते गए और वह सामाजिक यथार्थ से विन्मुख होकर व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक यथार्थ की ओर अधिक झुकता गया।

नई कहानी कथ्य और शिल्पगत प्रवृत्तियाँ :-

नई कहानी पुरानी कहानी से भिन्न है। नई कहानी आंदोलन की शुरुआत मोहन राकेश (मिस पाल) से होती है। कमलेश्वर के शब्दों में "पुरानी कहानी में विचारों को हाड़माँस प्रदान किया जाता था। अब हाड़माँस के इन्सान के विचारों को प्रस्तुत किया जाता है।"

1. काल के प्रवाह में व्यक्ति भी सामाजिकता का बोध एवं स्थिति 'नई कहानी' का प्रतिपाद्य विषय रहा है। इसमें बदलते हुए जीवन को पकड़ने एवं व्यक्त करने का जोरदार प्रयत्न है।
2. इनमें चरमसीमा का आग्रह नहीं है। क्योंकि इसमें विशेष मनःस्थिति का निरूपण है। इसके अंकन की पृष्ठभूमि सामाजिक है।
3. इनमें प्रवाह का अभाव है। कथा के विकास एवं सस्पैन्स को कहानीकार आवश्यक नहीं मानता।
4. नई कहानी में सांकेतिकता तथा प्रकृति विधान महत्वपूर्ण हैं।
5. नई कहानियों में पश्चिमी मनोभाव का तथा परिस्थितियों के कारण अवास्तविकता का वातावरण उत्पन्न हो गया है।

-: नई कहानी का कथ्य/वर्ण्य विषय :-

1. राष्ट्रीय दृष्टिकोण :-

नई कहानी जीवन की प्रत्येक स्थिति और समस्या को अपना वर्ण्य विषय बनाकर चली है। फिर भी मूलतः कहानीकार का स्वर राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रहा। उसने इस युग के समाज की विविध समस्याओं की ओर ध्यान दिया और वह दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। उसने कुंठाओं से घुटते और छटपटाते हुए निराशावादियों का चित्रण और साहसपूर्वक विषमताओं से जूझाते हुए पुरुषार्थियों का वर्णन भी किया है।

2. वर्गसंघर्ष से पीड़ित व्यक्ति मानव का चित्रण :-

नई कहानी में कहानीकार ने वर्गसंघर्ष से पीड़ित व्यक्ति मानव की विवशता, कुंठाओं और विकृतियों का चित्रण भी किया है। व्यक्ति की घुटन तथा विषम परिस्थितियों से जुझते हुए विकास के नए मार्गों की खोज विशेष महत्वपूर्ण है। इसप्रकार 'नई कहानी' व्यक्ति के संघर्ष, घुटन, कुण्ठा, निर्बलता एवं सबलता को बड़े मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है।

उदा; फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'तिसरी कसम', राजेंद्र यादव की 'किनारे से किनारे तक', कमलेश्वर की 'एक ही निर्मला', अमृता प्रितम की 'धुआँ और लाट'।

नई कहानी में समाज के हर क्षेत्र का चित्रण है और कहानीकार प्रत्येक पात्र को अपनी समान संवेदना प्रदान करता है।

3. यौन भावना का स्वच्छंद प्रवाह :-

नई कहानी में यौन भावना एवं संबंधों का स्वच्छंद रूप दिखलाई पड़ता है। इनमें नारी के अंगों का कामोत्तेजना वर्णन नहीं है, परंतु रतिक्रिड़ा का खुलासा उद्दाम वर्णन भी मिलता है। जो कही कही बीभत्स भी हो गया हैं। कहानिकारों ने इस रूप में अपनी दमित वासना एवं यौन कुण्ठा अभिव्यक्त की है।

4. पाश्चात्य जीवन से संबंधित प्रश्नों पर विचार :-

नई कहानी परिवार से संबद्ध विभिन्न समस्याओं को लेकर चली है। वैवाहिक जीवन के बारे में प्रश्नों को इन कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नारी की स्थिति में सुधार हुआ और वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रयत्नशील बनी। शिक्षा के प्रसार ने उसे अशांत बना दिया। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ गई। उसने केवल अपना ही नहीं, पति का जीवन भी दूभर बना दिया। नए कहानीकारों ने नारी के जीवन की विषमता का मार्मिक चित्रण किया हैं।

5. क्लाइमैक्स का अभाव एवं सामाजिक परिवेश का चित्रण :-

नई कहानी में 'चरमसीमा' (क्लाइमैक्स) का आग्रह नहीं होता। आधुनिक कहानीकार मानता है कि पात्र एक ही समय में मन के विभिन्न स्तरों पर जीता है। अलग-अलग आयामों में खड़ा होता है। अतः इन कहानियों के पात्रों का न कोई प्रवाह है न संगति। चरित्र की असंगतियाँ ही नई कहानियों की विशेषता बन गई है। इसके साथ-साथ बदलते हुए मनुष्य का और उनके परिवेश परिवेश का अंकन उसका प्रधान लक्ष्य हैं।

-: नई कहानी का शिल्पविधान :-

नई कहानी में सांकेतिकता, बिंबविधान एवं प्रतीक योजना मिलती है। नया कहानीकार विशेष स्थानों पर अंर्तद्वंदों का सायास चित्रण नहीं करता बल्कि स्वाभाविक रूप से ये कहानी में आते हैं।

वैचित्र्यपूर्ण नवीन शिल्प :-

यह नई कहानी की विशेषता रही। इस प्रकार शिल्प की नवीनता से कहानीकार प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा करता रहा। यह अमरिकन साहित्य का प्रभाव है।

शैली शिल्प की दृष्टि से नई कहानी में सात रूप मिलते हैं -

1. लोककथा
2. आँचलिक शैली
3. लघुकथा शैली
4. प्रतीक शैली
5. नायकहीन शैली
6. चित्रात्मक शैली
7. अनुभूतिपूर्ण शैली

नई कहानी में तरह-तरह के ग्यारह नवीनतम प्रयोग किए गये। इन प्रयोगों में कहानी तत्व या संवेदनाओं की अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण ढंग से हो सकी या नहीं इसपर विवाद है। किंतु इन प्रयोगों के द्वारा कलाकारों के अहं की तृप्ति तो निश्चित रूप से हो रही है।

ग्यारह प्रयोग इसप्रकार हैं :-

1. अवस्था
2. एक स्थिति
3. एक इरादा
4. एक पूर्वदीप्ति
5. एक विचार
6. एक मनःस्थिति
7. एक प्रक्रिया
8. एक भावबोध
9. एक निःसंगता
10. एक यात्रा
11. एक विसंगति।

5. साठोत्तर कहानी :-

सन उन्नीस सौ साठ के बाद लिखी गई कहानियों में अत्याधिक उग्रता और निर्ममता तथा यथार्थ की क्रुरता की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं।

इन कहानियों को लिखने वाले प्रायः स्वातंत्र्योत्तर काल में या तो जन्मे हैं या जिन्होंने बड़े होकर समाज की विसंगतियों को देखा है। यथार्थ की पहचान कर उसीका वर्णन करना उनका हेतु रहा। अपनी भोगी हुई जिंदगी को उन्होंने उतनी ही यथार्थता से पाठकों के सम्मुख ज्यों का त्यों रखना चाहा।

साहित्य में काव्यात्मकता की जगह वैचारिक गद्यता को महत्व दिया गया। मंजुल भगत की 'सफेद कौआ' एक प्रतीकात्मक व्यंग्य तो रमेश बतरा की 'थप्पड़' मध्यवर्ग की कायरता और मृदुला गर्ग की 'दुनिया का कायदा' मानवीय

हेयता का वर्णन करती है। इस काल के लेखकों ने आत्मकेंद्रित न रहकर समस्त मानव समस्याओं तथा भावनाओं को उजागर करना, उनका निरूपण करना अपना कर्तव्य समझा। उसमें जातियवाद, कुलीनता, क्षेत्रीयता, सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने वाली राजनीतिक चरित्रों का या हथखंड़ों का पर्दाफाश किया। उसमें उल्लेखनीय कहानीकार हैं - ब्रजेश्वर मदान, ज्ञानरंजन, मृणाल पांडेय, अनीता मनोचा, नरेंद्र मौर्य आदि।

सातवे दशक में 'जनवादी कहानी' कहानी के क्षेत्र में अस्तित्ववाद, दर्शनजनित अनास्था, संत्रात, ऊब, तनाव, अकेलापन, विवशता, अवसाद, कुंठा, निराशा आदि के साथ जीवनमूल्यों का विघटन, जीवन का टूटना आदि से व्याप्त जीवन ने कुछ दशक में मानवतावादी दृष्टिकोण, संपन्न यथार्थपरक स्वस्थ सृजन का मार्ग प्रशस्त होता गया। कुछ अंशों में पाश्चात्यों का प्रभाव की जगह आत्मानुभूति वर्णन, रचनात्मक दृष्टि आदि से लेखनकला को नई दिशा और स्वास्थ्य मिला।

आठवे दशक में अपने पक्व अनुभव और आधुनिकता के आयाम समझ लेने से मिली। सक्षमता ने लेखकों को सक्षम अभिव्यक्ति की प्रेरणा दी। भीमसेन त्यागी, इब्राहिम शरीफ, ज्ञानप्रकाश, रवींद्र कालिया, पानू खेलिया, नरेंद्र कोहली, वेह राही, श्रवणकुमार आदि ने कहानी क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, सुभा अरोड़ा, निरूपमा सेवनी, मोना गुलाटी, दीप्ति खंडेलवाल आदि ने दिया कहानी क्षेत्र में योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। आधुनिक पारिवारिक जीवन, पति-पत्नी संबंध, नारी जीवन से संबंधित सभी प्रकारकी भाव-भावनाएँ इनको इस समय की कहानियों में स्थान मिला।

इस काल में मौलिक कहानियों के साथ-साथ अन्य देशों की भाषा में लिखी गई कहानियों का अनुवाद भी किया गया। इसमे इंग्लैंड, अमरिका, फ्रांस, रूस, चीन आदि देशों की भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का अनुसार मिलता हैं। राजेंद्र यादव, श्रीराम शर्मा, संतोष गार्गी, रामचंद्र जैन, गोपाल नेवटिया आदि के नाम इसमें आते हैं।

आठवे दशक से और उसके बाद की कहानियों से प्रतीत होने लगा कि हर मनुष्य उस काल में बिना किसी भय, निराशा के सामने आने वाली समस्याओं का सामना करने लगा है। फिर एक बार जीवन के प्रति मूल्यों के प्रति आस्था, मोह जाग्रत हो रहा है। अब वह खुद की जिम्मेदारियाँ, खामियाँ समझने लगा है और हो सके तो उसे स्वीकारने, बदलने की कोशिश में जुटा है। 'प्रसाद', 'यशपाल', 'जैन' तथा 'अज्ञेय' के जैसे लेखकों ने स्वस्थ, सृजनशील क्षमता का उपयोग कर ऐसी कहानियाँ पेश की। समाज को साहित्य की स्वास्थ्य भी दे सकता है, इसपर भरोसा होने लगा।

-: साठोत्तरी कहानी की विशेषताएँ :-

1. इस काल की कहानियों में रचना की दृष्टि से विविधता आ गई।
2. आज के जीवन में व्यवहृत ढोंग, ढकोसला, स्वार्थपरता, यांत्रिकता, कृत्रिमता, खोखलापन, अमानवीयता, स्त्री-पुरुष संबंधों का वर्णन आता है।
3. कहानीकारों के अनुभवों का दायरा सीमित हैं।
4. संख्या की दृष्टि से काफी मात्रा में कहानियाँ लिखी गई।
5. आधुनिकता के नाम पर अति बौद्धिकता का दोष उत्पन्न हुआ।
6. इन लेखकों को परंपरा या रूढ़ि के प्रति न आस्था रही ना आसक्ति।

7. सामाजिक चेतना और मध्यवर्गीय कटु अतृप्तिपूर्ण प्रवृत्तिगत वैविध्य, विवशता, दिखावे की प्रवृत्ति, अंतर्विरोध आदि के कारण समाज में 'मिसफिट' होने की भावना, कही अवसरवादिता, आर्थिक संकट आदि भावनाओं को कहानियों में स्थान मिला।

8. स्त्री जीवन का विविधांगी वर्णन, उसका शरीर, उसका बढ़ता कार्यक्षेत्र, पारिवारिक और सामाजिक स्थिति में द्वंद्व, पारिवारिक उत्तरदायित्व, घर-परिवार से दूर रहकर कार्य करना, विवाहित/अविवाहित दोनों रूपों में उसका आहत होना, उसका टूटना, अकेलापन इनका काफी मात्रा में चित्रण हुआ।

9. आत्मपरक विश्लेषण की धारी की स्थापना की गई। कथानक का ऱ्हास हुआ। कई बातें कहानीकार केवल संकेतों को माध्यम से स्पष्ट करने में लग गया।

10. कई कहानियाँ लेखक ऐसे बिंदूपर छोड़ देते हैं जहाँ से पाठक, श्रोता उसे अपनी माँग के अनुसार पूरा कर ले। अति बौद्धिकता के कारण वे और भी दुरुह-जटिल बन गई।

11. आधुनिक कहानी के पात्र यथार्थ से चुने हुए।

12. पाश्चात्य साहित्य का, विचारों का इतना भारी प्रभाव इन साहित्यकारों पर रहा कि वह भारत में रहकर भी अपने देश को चित्रित कर न सके।

6. समांतर कहानी :-

1978-79 में कहानी और कविता का नया नारा था 'आम आदमी की तलाश' वास्तव में यह तलाश भी विवादास्पद है। इस काल की कहानियों में टूटते हुए मध्यवर्ग परिवार का संत्रास, टूटते हुए मूल्यों, आर्थिक कुंठाओं आदि का चित्रण होता है जो साठोत्तरी कहानीयों में भी दिखाई देता है। फर्क इतना है कि सत्तर के बाद की इन कहानियों में निम्न मध्यवर्ग का चित्रण ज्यादा बल देकर किया गया है। इसमें वास्तविकता और सृजनात्मकता की ओर ध्यान रहा है। कृषक-मजदूर वर्ग के आदमी को महत्वपूर्ण आदमी माना गया। इन कहानियों का स्वर अधिक तीखा है। 'आम आदमी की तलाश' एक फॉर्म्युला बन गया। इसी का दूसरा नाम 'समांतर कहानी' या 'समानांतर कहानी' बन गया।

इस काल की कहानी के विशेष :-

-: जीवन सत्य और रचना के बीच सामंजस्य।

-: आम आदमी के संघर्ष और उसकी लड़ाई का संदर्भ।

-: आम आदमी की संपूर्ण लड़ाई को दिशा निर्देश।

-: राजनीति में स भाग और क्रांति का समन्वय।

-: समय के समांतर कहानी लिखना।

-: कहानी फार्म पर बल नहीं दिया जाता।

लेखकों के नाम :-

कमलेश्वर, हिमांशु जोशी, इब्राहिम शरीफ, मधुकर सिंह, जितेंद्र भाटिया, आशिष सिन्हा, भीष्म सहानी, राजेंद्र यादव आदि।

'अ-कहानी'

नई कहानी आंदोलन की प्रतिक्रिया के रूप में अकहानी आंदोलन का जन्म हुआ क्योंकि यह महसूस किया गया कि नई कहानी को अपने आग्रहों और विश्वासों को नकार कर अपनी ही बनाई हुई रूढ़ियों और परिपाठी का शिकार होती जा रही थी। अकहानी किसी तरह के मूल्यों की रक्षा करती हुई या आग्रह रखती हुई नहीं चलती है। उसके लिए पुराने मूल्यों का टूटना भी कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है।

-: अकहानी में अस्तित्ववाद और एब्सर्ड विचारधारा का प्रभाव है।

-: उसमें पूर्ण जीवन की अस्वीकृति है और वह जीवन की कोई परिभाषा नहीं देती।

-: वह कहानी के सभी रूढ़ मानदंड़ों से मुक्त हैं।

-: उसमें स्थूलता का अभाव रहताहै।

-: उसमें टाईप (विशिष्ट प्रकार के) चरित्र नहीं होते। भावुकता उनमें नहीं होती।

-: उसमें तटस्थता, निरपेक्षता और आधुनिक जीवनदृष्टि रहती है।

-: आत्मपीड़न औरर संत्रास द्वारा वह बृहत्तर सत्य का उद्घाटन करती है।

-: इस कहानी की दृष्टि में आदमी नितांत अकेला है और वह अपने अस्तित्व के संबंध में भयभीत रहता है।

-: जीवन की विसंगतियों पर मनुष्य अपना दुख व्यक्त करता हैं।

-: कलात्मकता न्हास और प्रतीकों द्वारा भावनाओं का उद्घाटन करना इस काल की रीति बन गई हैं।

-: निबंध, डायरी के समान संस्मरण, असंबद्ध आत्मप्रलाप के नजदीकी यह कहानी हैं।

डॉ. गंगाप्रसाद विमल जी की राय से "निःपक्ष होकर यदि हम इनका विश्लेषण करे तो हम समझ जाऐंगे कि सामान्यतया सभी समकालीन रचनाओं का मिलाप होकर ये कहानियाँ बनी थी जो आम कथाओं से कुछ अर्सेतक अलग-सी प्रतीत होती हैं।

'सचेतन कहानी'

नई कहानियों में कथातत्वों का न्हास होता रहा। कहानियों में मुख्यतः शहर तथा देहात के जीवन के कलुषित, अस्वस्थ एवं कुंठाग्रस्त जीवन का जिक्र होने लगा। आंचलिकता के नाम पर ग्रामीण जीवन की ओर आकर्षित किया जाने लगा। ऐसे समय नई कहानी की प्रतिक्रिया में 'सचेतन कहानी' के लेखकों ने नवीन वर्ग की स्थापना की। इसके अग्रणी डॉ. महीपसिंह थे। मनहर चौहान, हिमांशु जोशी, सुदर्शन चोपड़ा, रमेश गौड़, जगदीश चतुर्वेदी, राजीव सक्सेना, देवेंद्र सत्यार्थी आदि अनेक लेखक सचेतन कहानी के वर्ग के प्रतिनिधि रहे हैं।

ये सभी कहानी के नए-नए प्रयोगों में रत हैं और मानव जीवन की अनेक समस्याओं को उनके समग्र परिपाश्र्व में उपस्थित करके मानव की अभिनव चेतना को उद्भुद्ध करने में प्रयत्नशील हैं।

-: आधुनिक काल की कहानियों का कथ्य तथा शिल्पगत प्रवृत्तियाँ :-

(नई कहानी की उल्लेखनीय विशेषताएँ)

1. बदलते हुए सामाजिक जीवन की पहचान :-

इस काल के कहानीकारों की दृष्टि बौद्धिक है। जीवन की सत्य पर निष्ठा। जीवन के नाना रूप सामने आए।

2. जीवन की जटिलता की पकड़ :-

नई कहानी में मिथ्या आदर्श और नैतिकता नहीं है। आज के जीवन की जटिलता को पकड़कर कहानीकार उसकी भव्यता का अनुसंधान करना चाहता है। यह कहानी केवल आनंद नहीं देती, जीवन बोध को भी जागृत करती है। युग की जीवन-जटिलता को भी पकड़ती है।

3. मनोविश्लेषणात्मकता :-

इन कहानियों में मानव मन की पहचान की गई है। मानव के चेतन मन से ज्यादा अचेतन मन अधिक प्रभावकारी होता है। अशांति, संदेह, घुटन भरी जिंदगी से आज का संसार त्रस्त है। मनुष्य अंतर्बाह्य 'टूटना' महसूस करता है। कहानीकार इन्हीं को चित्रित करने में जुटा है।

4. कृत्रिम जीवनमूल्यों पर दृष्टि :-

ये कहानियाँ आज का यथार्थ कहानियों में प्रस्तुत करती हैं। कहानीकार कभी गाँव को, कभी नगर के टूटते बनते जीवनमूल्यों का एहसास कराता है।

5. रूप-बंध की नविनता :-

नई कहानी में नए-नए प्रयोग किए गए। कथ्य की सूक्ष्मता और सांकेतिकता को उभारने का कार्य भी हुआ। कथा क्षीण केवल वातावरण रहता है।

6. बिंबों का स्थान :-

नई कहानी 'जीवन की स्पिरिट' को पकड़ना चाहती है। वह बिंबों को पकड़ती है। पुरानी कथा को भी नया कहानीकार नए संदर्भों में मोड़ देता है।

आधुनिक काल के कहानीकार :-

1. प्रेमचंद :-

कहानी क्षेत्र में प्रेमचंद एक महान लेखक हैं। कहानी क्षेत्र में आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परंपरा के वे प्रतिष्ठापक हैं। शुरुआत तो उन्होंने उर्दू में कहानी लिखने से की परंतु हिंदी में उनकी सर्वप्रथम कहानी है 'पंच परमेश्वर'। इनके कहानियों का संग्रह 'खोजे वतन' अंग्रेज सरकार ने जलवा दिया। इसमें तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ थी।

प्रेमचंद जी मानवतावादी कहानीकार थे। उन्होंने कई प्रकार की कहानियाँ लिखी। जैसे : चरित्रप्रधान, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि। उनकी सभी कहानियाँ किसी न किसी उद्देश्य से लिखी गई हैं।

इनकी कहानियाँ कलात्मकता और साहित्यिक महत्ता में बहुत श्रेष्ठ हैं। इनकी भाषा मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण हैं। हिंदी कहानी का विकास देखते हुए उनके नाम पर एक युग माना जाता है क्योंकि वे साहित्य में कहानीकार के रूप में उपन्यासकार के के रूप में इस प्रकार छाए रहे कि उनका स्थान अद्‌वितीय रहा। उनकी तीन सौ कहानियाँ 'मानसरोवर' के 8 भागों में संकलित हैं।

इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ :-

पंच परमेश्वर, आत्माराम, पूस की रात, बड़े घर की बेटी, शतरंज के खिलाड़ी, वज्रपान, रानी सारंधा, अलग्योझा, ईदगाह, सुजान भक्त, कफन, अग्नि समाधि आदि।

कहानियों की विशेषताएँ :-

-: प्रेमचंद जी जनता के लेखक थे। उन्होंने अपनी कहानियों द्वारा सहस्त्रो हीन-दीन किसानों-मजदूरों की वेदना को शब्द दिए।

-: उनकी कहानियाँ आसपास की जिंदगी से जुड़ी रहती थी। कहानी के विषय को लेकर पात्र भी देहातों से चुने जाते। उनकी अपने अनुभवों की ठोस बुनियाद पर कहानियाँ अवतरित होती रही।

-: उस समय के यथार्थ को चित्रित किया। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियाँ लिखी।

-: कहानियाँ मुख्यतः घटना-प्रधान एवं वर्णनात्मक रही। उनमें चरित्रगत विशेषताएँ तथा मानसिक तथ्यों का उद्घाटन हुआ है।

-: हिंदी शब्दों का प्रयोग, मुहावरेदार भाषा, संवाद आदि के कारण कहानियाँ सहज तथा सजीव हो उठती हैं।

2. जयशंकर प्रसाद :-

प्रसाद जी कहानी जगत के महत्वपूर्ण कहानीकार रहे। इनकी कहानियों के पाँच संग्रह उपलब्ध हैं। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इंद्रजाल'। इनकी सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' सन 1922 में इंदु पत्रिका में छपी थी।

इनकी प्रारंभिक रचनाओं पर बंगला का प्रभाव स्पष्ट है। बादमें इनकी अपनी शैली का विकास हुआ है। प्रसाद मूलतः प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। अर्थात इनकी काव्यात्मकता का असर कहानियों पर दिखाई देता है। इनकी कहानियों में स्थूल समस्याओं का अंकन कम हुआ है। इनकी भाषा सांस्कृतिक तथा शैली अलंकृत और भावमयी है।

कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। परंतु उनमें काल्पनिकता अधिक और ऐतिहासिकता कम मात्रा में हैं। इनमें भारतीय दर्शन और आदर्श का समन्वय है। भावुकता की दृष्टि से हिंदी कहानी क्षेत्र में प्रसाद जी का स्थान विशिष्ट है। इन्हीं की शैली पर लेखन करने वालों में विनोदशंकर व्यास, गोविंदवल्लभ पंत आदि ने कहानियाँ लिखी हैं।

'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खंडहर' ऐतिहासिक कहानियाँ।

* * *

3. हिंदी नाटक का उद्‌भव और विकास

प्रस्तावना :-

चौदहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवी शताब्दी तक वैसे तो हिंदी में कई नाटक लिखे गए परंतु वे नाटकीय तत्वों से युक्त नहीं थे। इनमें विद्‌यापति का 'रुक्मिणीहरण', हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक', सुकवि नेवाज का 'शकुंतला नाटक' आदि का समावेश है। ब्रजवासी का 'प्रबोध चंद्रोदय' इसी समय का नाटक है जिसमें नाटकीय तत्वों को पाया जा सकता है।

बस उसी काल तक संस्कृत में प्रचुर मात्रा में नाटक लिखे गए। संस्कृत में नाटकों की प्रचुर मात्रा में परंपरा रहीं है। परंतु हिंदी में नाटक आधुनिक अर्थों में जिन्हें 'नाटक' माना जा सकता है' का विकास उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध में ही हुआ। डॉ. दशरथ ओझा ने अपने महत्वपूर्ण संशोधन से यह सिद्‌ध करने की चेष्टा की है कि नाटक का उद्‌भव तो तेरहवी शताब्दी में ही हुआ। 'गाय सुकुमार रास' उनकी राय से सर्वप्रथम नाटक है। इस काल के नाटकों के विषय में यह बात ध्यान में लेनी होगी कि इनमें कविता की प्रधानता है और नाटकीय तत्वों का अभाव है।

उन्नीसवी सदी से पहले नाटकों का विकास न होने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे :- गद्‌य का अभाव, मूर्तिपूजा विरोधी मुसलमानों का शासन काल, निराशामूलक संतों की वाणी। समाज में वह उल्लास या चेतना ही नहीं थी जो साहित्यिक निर्मिति या पुष्टि करें।

हिंदी नाटक विधा के विकासात्मक इतिहास को इसप्रकार विभाजित किया जा सकता हैं।

1. पूर्व भारतेंदु युग
2. भारतेंदु युग
3. प्रसाद युग
4. प्रसादोत्तर युग
5. साठोत्तर नवीन युग।

1. पूर्व भारतेंदु युग

भारतेंदु जी आधुनिक नाटक साहित्य के जन्मदाता है। इनके पूर्व शृंगारकालीन कवियों ने ब्रजभाषा पद्‌य में कुछ संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया था। 'हनुमन्नाटक (हृदयराम) के बाद सुकवि नेवाज का 'शकुंतला' अठारहवी सदी के पूर्वार्ध में महाराजा विश्वनाथसिंह ने 'आनंद-रघुनंदन' और ब्रजवालीदास ने 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक की रचना की। इनमें पद्‌य की प्रधानता और नाटकीय तत्वों की न्यूनता है। आधुनिक साहित्यिक दृष्टि से इनका मूल्य नगण्य मात्र हैं। विद्‌वानों में हिंदी नाटक का आरंभ इसपर एकमत नहीं है। आमतौर पर बहुत से विद्‌वान इस मतपर सहमति दर्शाते हैं कि नाट्‌यविधान की शुरुआत सही अर्थ में भारतेंदु जी से ही हुई। (भारतेंदु जी का राजा हरिश्चंद्र नाटक से)

इसके बाद राजा लक्ष्मणसिंह ने संस्कृत के 'अभिज्ञान शाकुंतलम' नाटक का हिंदी में अनुवाद किया जिसमें मूल कृति का सौंदर्य पाया जाता है। इसमें खड़ीबोली का प्रयोग हुआ है। यह नाटक कालक्रम के अनुसार भारतेंदु जी के बाद आता हैं।

2. भारतेंदु युग

भारतेंदु काल राष्ट्रीय जागरण तथा नव सांस्कृतिक चेतना का उन्मेष युग था। एक तरफ जनसामान्य में राष्ट्रीय भावना जग गई थी तो दूसरी तरफ सामाजिक और धार्मिक जागरूकता आई थी। यह वातावरण साहित्य सृजन तथा विकास के लिए अत्यंत पोषक तता उपयुक्त साबित हुआ।

इस काल के नाटककारों में अन्य विधाओं की तरह जनता की आशा-आकांक्षाओं का यथायोग्य चित्रण हुआ। खुद भारतेंदु जी के सजग व्यक्तित्व ने तत्कालिन सभी प्रमुख तत्वों को कलात्मक रूप से आत्मसात किया था। भारतेंदु कृत नाटक हिंदी के सर्वप्रथम नाटक माने जाते हैं। उन्होंने अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत नाटकों का काफी अभ्यास किया था। रंगमंचीय आवश्यकताओं को भी खूब जान लिया था, समझ लिया था। पारसी रंगमंच की दूषित प्रवृत्तियों को भी समझ लिया था। अतः उन्होंने साहित्य में नाटकों की रचना करते समय लोगों की रूचि का खयाल किया था। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने तो इन्हें सभी तरह की विशेषताओं से संपन्न नाटककार कहा है।

तीन प्रकार के नाटक :-

1. मौलिक :-

'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'चंद्रावली', 'विषस्य विषमौधम्', 'सती प्रताप'।

2. अनुदित :-

'मुद्राराक्षस', 'धनंजय विजय', 'भारत जननी'।

3. रूपांतरित :-

'रत्नावली', 'दुर्लभ बंधु'।

-: शैली की दृष्टि से इनके बहुतांश नाटक संस्कृत नाटकों की परंपरा का पालन करने वाले नाटक हैं। नांदी पाठ, भरतवाक्य, अंकावतार, विष्कंभक आदि का प्रयोग इन्होंने किया है।

-: भारतेंदु जी ने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक सभी प्रकार के नाटक लिखे और भावों के साथ हास्यविनोद के भाव भी उनके नाटकों में मौजूद हैं।

-: उनके प्रायः सभी नाटकों की विशेषता है जिंदादिली और इनके सभी नाटक अभिनेय हैं।

-: चरित्र चित्रण, संघर्ष, कार्यव्यापार की एकता आदि का भी इन्होंने ध्यान रखा हैं।

-: भारतीय जनता के मन में नवचेतना का उगम, राष्ट्रीय चेतना का विकास और देशप्रेम एवं स्वाभिमान का निर्माण इनके साहित्य के उद्देश्य रहे। इनकी पूर्तता अपने नाटकों में करने में भारतेंदु जी सफल रहे हैं। लंबे कथोपकथन और उपदेशात्मकता इनके विशेष हैं।

भारतेंदु युगीन अन्य नाटककार :-

भारतेंदु जी के प्रभाव से उनके समकालीन लगभग सभी साहित्यकारों ने नाटक लिखे।

1. प्रतापनारायण मिश्र :-

'गोसंकट', 'जुआही खवारी', 'कालिप्रभाव', 'संगीत शाकुंतला', 'हठी हमीर' आदि नाटक इन्होंने लिखे। भारतेंदु जी के अनुकरण पर मिश्र जी ने 'भारतदुर्दशा' नाटक भी लिखा था।

2. राधाकृष्णदास :-

'पद्मावती' नामक ऐतिहासिक नाटक लिखा जो वीररसपूर्ण है। 'दुखिनी बाला' इनकी प्रथम नाटकीय रचना है। इसका विषम भारतीय विधवा की दयनीय दशा हैं।

3. लाला श्रीनिवासदास :-

भारतेंदु कालीन नाटककारों में इनका विशेष स्थान हैं।

'प्रल्हाद चरित्र', 'रणधीर और प्रेममोहिनी', 'संयोगिता स्वयंवर' इनके उल्लेखनीय नाटक हैं। 'प्रल्हाद चरित्र' 11 दृश्यों का बड़ा नाटक है।

4. पं. बालकृष्ण भट्ट :-

'बृहन्नला', 'वेणु संहार' 'रेल का बिकट खेल', 'बालविवाह', 'जैसा काम वैसा परिणाम' आदि मौलिक नाटकों के साथ ही बंगला के अनेक नाटकों के अनुवाद भी भट्ट जी ने किए हैं। इनमें पौराणिक कथाओं के साथ नए युग की समस्याओं का अंकन है। इनके कथानक शिथिल हैं।

भारतेंदु युग के नाटकों की विशेषताएँ :-

-: इस काल के नाटकों की रचना मुख्यतः संस्कृत नाट्यशैली पर हुई है। उनपर पाश्चात्य शैली का प्रभाव दिखाई देता है।

-: विभिन्न प्रकार के पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं धार्मिक नाटकों की रचना इस काल में हुई।

-: पारसी रंगमंचीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इनकी रचना की गई।

-: इन नाटकों की भाषा खड़ी बोली रही, फिर भी बीच-बीच में पद्य या हिंदी की जगह ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया।

-: बीच-बीच में व्यंग्यविनोद के कारण ये नाटक बहुत मर्मस्पर्शी और बहुचर्चित तथा लोकप्रिय भी हुए।

-: बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी से कई नाटक अनुदित किए गए।

इस काल के अनुदित नाटक :-

संस्कृत से :-

बाबू सीताराम ने 'नागानंद', 'मालतीमाधव' का, सत्यनारायण कवित्व ने भवभूति के 'उत्तर रामचरित'।

बंगला से :-

द्विजेंद्रलाल राय के नाटकों का अनुवाद - रूपनारायण पांडेय और रामकृष्ण वर्मा ने किया।

अंग्रेजी से :-

शेक्सपीअर के नाटकों का गंगाप्रसाद पांडेय, मथुरादास उपाध्याय ने किया।

ये अनुदित नाटक भी मौलिक नाटकों की तरह सुंदर बने हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतेंदु काल में हिंदी साहित्य के साथ हिंदी नाटकों की शुरुआत हुई। विशेष कर निबंध और नाटक इन दो विधाओं में इस काल के लेखकों को अभूतपूर्व सफलता मिली। यह काल व्यापक जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुआ।

3. प्रसाद युग

हिंदी उपन्यास क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचंद जी का है वही स्थान प्रसाद जी का नाटक के क्षेत्र में है।

भारतेंदु द्वारा स्थापित की गई नाटक और रंगमंच की परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने आगे बढ़ाते हुए उसे नया जीवन और नई दिशा प्रदान की। इस काल में प्रसाद जी ने नौ नाटकों की रचना की। इनमें से सात ऐतिहासिक नाटक है, एक नाट्यरूपक है तो एक एकांकी है। उनके ऐतिहासिक नाटक इसप्रकार हैं :- विशाखा, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त और ध्रुवस्वामिनी।

प्रसाद काल में नाटक अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचा। पहली बार उन्होंने नाटकों के पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। उनमें शील-वैचित्र्य, शक्ति और औदात्य का समावेश किया। उनके मने के द्वंद्व का प्रसाद जी ने बड़ी कलात्मकतापूर्ण चित्रण किया। गौतम बुद्ध, चाणक्य, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी इन पात्रों के व्यक्तित्व इतिहास के इन व्यक्तित्व से नितांत भिन्न हैं।

युरोप के समस्या नाटकों से प्रेरणा लेकर प्रसाद जी ने अपने नाटकों में समस्याओं की चर्चा की। ध्रुवस्वामिनी नाटक में उन्होंने तलाक, पुनर्विवाह की समस्या को बड़े कौशल से उठाया हैं। 'स्कंधगुप्त' में समृद्धि और ऐश्वर्य के शिखर पर बैठे गुप्त साम्राज्य की स्थिति का उन्होंने वर्णन किया है वहीं पारिवारिक कलह, आंतरिक संघर्ष और विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप उसके भावी क्षय के लक्षण प्रकट होने लगे थे। विषय और रचना शिल्प दोनों की दृष्टियों से 'स्कंदगुप्त' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति मानी जाती है। 'चंद्रगुप्त' में लेखक ने विदेशियों से भारत के संघर्ष और उस संघर्ष में अंततः भारत की विजय की कल्पना ही उठाई थी। उनके प्रत्येक नाटक में राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक एवं उदात्त दार्शनिक चेतनाओं का संदेश मिलता है।

'कामना' प्रसाद जी का वैशिष्ट्यपूर्ण नाटक रहा है। नाट्यशिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण न होनेपर भी इसका महत्व अधिक है क्योंकि इसमें प्रसाद जी की प्रयोगशीलता का परिचय होता है। प्रसाद जी के नाटकों पर लगाए जाने वाले आरोप - इनके नाटकों की भाषा क्लिष्ट होती है। इनमें दार्शनिकता अधिक है। वे अभिनय के योग्य नहीं होते।

प्रसाद जी के नाटकों की विशेषताएँ :-

-: अपने नाटकों में प्रसाद जी ने नेए नाट्यशिल्प का प्रयोग किया।

-: प्रसाद जी के नाटकों से नाटक के आकार तथा नाट्यविन्यास में नवीनता लाई।

-: वध, आत्महत्या, युद्ध आदि दृश्यों को (जो नाट्यशास्त्र से वर्णित दृश्य थे।) खुलकर दिखाया जाने लगा।

-: प्रस्तावना, विष्कंभक आदि नाट्यशास्त्र के अनुपयोगी तत्वों का पूर्णतः बहिष्कार हुआ।

-: पाश्चात्य नाट्यकला के तत्वों का निःसंकोच संचयन किया गया।

-: नाटक दुखांत या सुखांत न होकर 'प्रसादांत' हुआ, होने लगे। (सुख-दुख मिश्रित अंत)

-: इनके नाटक युगीन चेतना से ओतप्रोत थे।

-: नाटक को कलाहीन स्तर से ऊपर उठाने और उसे भावना की गहराई से जोड़ने की दृष्टि से प्रसाद जी का विशेष महत्व है।

इस काल के अन्य नाटककार :-

1. हरिकृष्ण प्रेमी :-

प्रसादकालीन नाटककारों में विशेष उल्लेखनीय नाटककार हैं। इन्होंने लगभग बीस नाटक लिखे।

'रक्षाबंधन', 'स्वर्णविहान', 'प्रतिशोध', 'शिवसाधना' आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। भारतीय इतिहास के मुश्लिम काल को इन्होंने अपने नाटक का आधार बनाया।

अन्य नाटक :- स्वप्नभंग, आहुति, उद्धार, शपथ, भग्न प्राचीर, विदा, संरक्षक।

हिंदु-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीय, सांप्रदायिक, राजनैतिक आदि विभिन्न प्रकार की स्थितियों और समस्याओं का अंकन किया है। आकर्षक शिल्पविधान, कथावस्तु का कलापूर्ण संगठन, स्वाभाविक चरित्रांकन, मनोनुकूल भाषा आदि गुणों के कारण प्रेमी जी के नाटक काफी लोकप्रिय हुए।

2. लक्ष्मीनारायण मिश्र :-

प्रसाद से सर्वथा भिन्न मार्ग पर चलकर नाटक लिखने वाले नाटककार रहे। इन्होंने नाट्यशास्त्र की दिशा में अनेक मौलिक एवं क्रांतिकारी प्रयोग किए।

इनके नाटक :- 'अशोक', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य', 'राक्षस का मंदिर', 'राजयोग', 'सिंदूर की होली', 'आधीरात'।

इनके सभी नाटक तीन अंकों के हैं। मिश्र जी के नाटकों के साथ हिंदी नाटक के वर्ण्य विषय और शिल्प दोनों में बदलाव आ गया। गांधीजी का असहयोग, रौलट ऐक्ट, पंजाब हत्याकांड आदि से उत्पन्न स्थितियों का चित्रण इनके नाटकों में हैं। 'संन्यासी', 'आधी रात' में मिश्र जी ने खास कर नारी समस्याओं को चित्रित किया। इनके नाटकों के माध्यम से स्त्री-शिक्षा के प्रचार, नारी स्वातंत्र्य आंदोलन के फलस्वरूप आधुनिक नारी का रूप समाज के सामने आया। शिल्पविधि तथा रंगस्वरूप पर इब्सेन और शॉ का प्रभाव है। मूलतः भारतीय दृष्टि रखने वाले मिश्र जी के नाटकों में गीत नहीं होते। शैली के क्षेत्र में उन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है।

इसी काल में धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, हास्य-व्यंग्यात्मक नाटक भी लिखे गए। नाट्यस्वरूप तथा 'गीतिनाट्य' भी। संक्षेप में उनकी जानकारी नीचे दी है।

1. धार्मिक-पौराणिक नाटक :-

अंबिकादत्त त्रिपाठी - सीय-स्वयंवर, गंगाप्रसाद अरोडा - सावित्री सत्यवान, हरिऔध - प्रद्युम्न विजय व्यायोग, रुक्मिणी परिणय; किशोरीलाल वाजपेयी - सुदामा।

2. ऐतिहासिक नाटक :-

चंद्रराज भंडारी - 'सम्राट अशोक', प्रेमचंद - 'कर्बला', ज्ञानचंद्र शास्त्री - 'जयश्री', दशरथ ओझा - 'चितौड़ की देवी', चतुरसेन शास्त्री - 'अमर राठौर', नशीमल उपाध्याय - 'अत्याचारी औरंगजेब'।

3. सामाजिक नाटक :-

विश्वंभर शर्मा 'कौशिक' - 'हिंदु विधवा नाटक', सुदर्शन - 'अंजना', रामेश्वरी प्रसाद 'राम' - 'अछूतोद्धार', केदारनाथ बजाज - 'बिलखती विधवा', अमर विशारद - 'त्यागी युवक', चंद्रिकाप्रसाद सिंह - 'कन्या विक्रम'।

यद्यपि ये नाट्यकृतियाँ उच्च कोटि की नहीं हैं परंतु इनमें एक प्रकार की सामाजिक चेतना की झलक मिलती है।

4. हास्य-व्यंग्यप्रधान नाटक :-

गंगाप्रसाद श्रीवास्तव - 'टुमदार आदमी', 'गड़बड़ाना', 'भूलचूक', 'चालबेढ़ब'।

5. नाट्यरूपक :-

सुमित्रानंदन पंत कृत 'जोत्स्ना' नामक कृति इस शैली की उल्लेखनीय प्रतीकात्मक रचना है। इसमें संसार में व्याप्त अशांति, हिंसा, संघर्ष आदि को दूर करने के लिए रूमानी ढंग का समाधान प्रस्तुत किया गया हैं।

6. गीतिनाट्य और भावनाट्य :-

मैथिलीशरण गुप्त 'अनय', हरिकृष्ण प्रेमी - 'स्वर्णविहान', भगवतीशरण वर्मा - 'तारा', उदयशंकर भट - 'विश्वामित्र'

संक्षेप में प्रसाद युग के नाट्य साहित्य को अन्य विधाओं की तुलना में बहुत पिछड़ा हुआ नहीं माना जा सकता। जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र इस युग के अग्रणी कलाकार है जिनकी नाट्यकृतियाँ निःसंदेह गौरवास्पद हैं।

4. प्रसादोत्तर युग

भारतेंदु के पश्चात प्रसाद जी को दिशा प्रवर्तक नाटककार के रूप में माना जाता है, किंतु उनके नाटकों को मंच न मिलने से वे अभिनित नहीं हो सके। अतः उनके दृश्यात्मक प्रभाव की परीक्षा नहीं हो सकी। एक बात बिल्कुल सत्य है कि अपनी सांस्कृतिक चेतना, कथ्यात्मक परिवेश, नाटकीय संघर्ष की सूझ और चरित्र सर्जन भी अपूर्व क्षमता के कारण उनके नाटक अद्‌वितीय बने। अपने रोमँटिक दृष्टिकोण के कारण इतिहास के अतीत के साथ समसामायिक जीवन को आदर्श के साथ जोड़कर उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। उपेंद्रनाथ अश्क जी ही पहले नाटककार हैं जिन्होंने हिंदी नाटक को रोमान्स के कटघरे से बाहर निकालकर आधुनिक भावबोध के साथ जोड़ा। इस युग को प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य का युग के नाम से संबोधित किया जाता है।

उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचंद्र माथुर, धर्मवीर भारती, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश आदि प्रमुख नाटककार हैं।

प्रसादोत्तर युग के नाटककार :-

1. उपेंद्रनाथ अश्क :-

अश्क जी हिंदी के एक सशक्त नाटककार हैं। वे कथाकार भी हैं। युग जीवन की समस्या के साथ उन्होंने नाटकों का रिश्ता जोड़ा। इनके नाटक रंगमंच, अभिनय आदि की स्वाभाविकता औऱ सहूलियत के प्रति पूर्णतः जागरूक रहते हुए लिखे गए हैं। इसी कारण इनको अभिनीत किया जा सकता हैं। नाटक के पीछे मनोरंजन की क्षमता और रंगमंचीय उपयुक्तता के हेतू स्पष्ट हैं।

समस्या नाटक के क्षेत्र में अश्क जी की कृतियाँ विशेष महत्व रखती हैं। 'स्वर्ग की झलक', 'अंजो दीदी', 'कैद', 'उड़ान', 'अलग-अलग रास्ते', 'अंधी गली' उनके प्रसिद्‌ध समस्या नाटक हैं। मध्यवर्ग को उन्होंने अपने नाटकों का विषय बनाया। वैवाहिक जीवन, यांत्रिक जीवन, परिवार विघटन आदि समस्याएँ उन्होंने अपने नाटकों में उठाई हैं। इनके नाटकों में जीवन के यथार्थ और वास्तविक चित्र मिलते हैं।

इनके नाटक :- ऐतिहासिक नाटक 'जय-पराजय'।

सामाजिक नाटक :- 'अंजो दीदी', 'अलग-अलग रास्ते', 'पैतरे', 'अंधी गली', 'स्वर्ग की झलक'।

2. विष्णु प्रभाकर :-

प्रसादोत्तर युग के नाटककारों में विष्णु प्रभाकर जी का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 'समाधि', 'डॉक्टर' आदि विभिन्न प्रकार के नाटक इन्होंने लिखे। इनमें से 'डॉक्टर' नाटक बहुचर्चित रहा जो एक मनोवैज्ञानिक सामाजिक नाटक रहा है। इसमें भावना और कर्तव्य का संघर्ष दिखाया गया हैं।

3. जगदीशचंद्र माथुर :-

इन्होंने तीन नाटक लिखे - 'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा'। ये तीनों नाटक ऐतिहासिक हैं। 'कोणार्क' नाटक द्वारा इन्होंने प्रभुसत्ता और गरीब शिल्पी के बीच का संघर्ष चित्रित किया हैं। 'शारदीया' नाटक में प्रेम और सर्जनात्मक प्रक्रिया का प्रश्न उठाया है। भाषा की सरलता इस नाटक की विशेषता हैं। 'पहला राजा' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा नाटक है। 'दशरथ नंदन' माथुर जी का चौथा नाटक है जो कथ्य और शैली दोनों की दृष्टि से परिपूर्ण नाटक कहा जा सकता हैं।

4. धर्मवीर भारती :-

'अंधा युग' इनका गीतिनाट्य विशेष उल्लेखनीय है। महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से कृष्ण के देहावसान के क्षणों तक की पौराणिक कथा का आधार भारती जी ने इस नाटक के लिए लिया है।

5. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल :-

'प्रसादोत्तर युग' के एक श्रेष्ठ नाटककार के रूप में लक्ष्मीनारायण लाल जी का विशेष स्थान है। इनके नाटकों में विषयवस्तु, नाटक का शिल्प आदि दृष्टि से विविधता पाई जाती है। इनके नाटक - 'मादा कैक्टस' तीन आँखोवाली मछली, 'सुंदर रस', 'रक्त कमल', 'रातरानी', 'कलंकी', 'दर्पण', 'सगुण पंछी', 'मि. अभिमन्यु' आदि।

6. मोहन राकेश :-

महाकवि कालिदास को प्रेरणास्त्रोत बनाकर राकेश जी ने 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक लिखा। श्रेयस-प्रेयस का प्रश्न, राग-विराग का प्रश्न लेकर उसके नए संदर्भों को प्रस्तुत किया। 'आधे-अधुरे' नाटक उनका एक अद्‌भुत सफल प्रयोग हैं। इतिहास के आधार को छोड़कर समाज की विसंगतियों से सीधे जुझने का प्रयास उन्होंने इस नाटक में सूचित किया है।

'स्वातंत्र्योत्तर काल'

स्वतंत्रता के बाद भारत में अनेक हिंदी रंगमंचो की स्थापना हुई। इनके परिणामस्वरूप हिंदी नाटकों के सृजन और उनकी रंगमंचीय अर्हता पर पर्याप्त अनुकूल प्रभाव पड़ा। इस व्यापक परिवेश और रंगचेतना के कारण हिंदी के अनेक महत्वपूर्ण रंगमंचोपयोगी नाटकों - 'मादा कैक्टस', 'अंधा युग', 'आषाढ़ का एक दिन', 'रातरानी', 'लहरों के राजहंस' तथा 'दर्पण' आदि का उदय हुआ जिनमें रंगमंच और साहित्य पक्ष दोनों का स्वस्थ और सुंदर समन्वय हुआ है। हिंदी की अनेक मौलिक रचनाएँ सामने आई। 'चार अपाहिज' और 'बीना दीवारों के घर' नाटकों से शौकिया रंगमंच को काफी

प्रोत्साहन मिला। गिरिराज किशोर का 'नरमेध', श्याम उमाठे के 'औरत', 'प्राण', और 'पत्थर', सुरेंद्र वर्मा रचित 'द्रौपदी', भूटानी का 'शायद हाँ' आदि हिंदी नाटक जगत में महत्वपूर्ण मौलिक नाटक बन पड़े।

स्वतंत्रता के बाद लिखे गए नाटकों में विद्यालंकार के 'न्याय की रात', विनोद रस्तोगी के 'आजादी के बाद' नाटकों में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति है। मन्नू भंडारी के 'बिना दीवारों के घर' में पीढ़िगत संघर्ष का चित्रण तो 'नीफा की एक शाम' नाटक में चीनी आक्रमण से संबद्ध घटनाओं एवं प्रतिक्रियाओं का अंकन हुआ हैं।

बी. एम. शाह, ज्ञानदेव अग्निहोत्री और सुरेंद्र वर्मा के नाटकों में समसामायिक जीवन और समाज का यथार्थ चित्रण हैं।

अन्य भाषाओं के महत्वपूर्ण नाटकों के अनुवादों से हिंदी नाट्य और समृद्ध बना। श्री. कृष्णकुमार ने उत्पल दत्त के बंगला नाटक 'छायाघट' का मोहित चटर्जी के 'निषाद', बादलसरकार के बंगला नाटकों 'एवं इंद्रजित', 'बाकी इतिहास' आदि का अनुवाद किया। मराठी से विजय तेंडूलकर जी के 'अशी पाखरे येती' का केशवचंद्र वर्मा ने 'पंछी ऐसे आते हैं' सफल अनुवाद किया। गिरीश कर्नाड रचित 'हयवदन' का ब. ब. कारंत ने 'हयवदन' नाटक में अनुवाद किया।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में हिंदी नाटकों का विकास कुछ मंद गति से हुआ। इसका एक कारण था रंगमंचों का अपेक्षाकृत अभाव और दूसरा कारण था नाट्य विधा का स्वरूप। नाटक में उस देश के समाज की स्थिति का होना अनिवार्य होता है। हिंदी गद्य साहित्य की और विधाओं की तरह भारत की स्वाधीनता के परिणामस्वरूप इस काल में नाटक विधा की रचनाओं को नए आयामों के साथ प्रतिष्ठित कर दिया गया।

5. साठोत्तर युग

सामान्यतः द्वितीय महायुद्धोत्तर काल उपन्यास और कहानी का युग रहा। नाटक तथा एकांकियों की रचना बहुत कम हुई। नाटकों की संख्या कितनी ही कम क्यों न हो किंतु उनमें वर्ण्य विषयों और शिल्पविधान का वैविध्य पाया जाता हैं।

साठोत्तर नाटकों में खासकर सामाजिक नाटकों में स्त्री-पुरुष संबंधों, यौनाचार, वर्गचेतना आदि को स्थान मिला। उनमें व्याप्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता आदि अनेक विषयों पर अपने-अपने दृष्टिकोण व्यक्त किए गए।

बदलते जीवन मूल्य, परिवार में बिखराव, प्रेम की बदली हुई परिभाषा आदि को लेकर नाटक लिखे जाने लगे।

उदा; मन्नु भंडारी का 'बिना दीवारों के घर', मोहन राकेश का 'आधे-अधुरे'। प्रेम की उदात्तता की जगह एक दूसरे को भावनात्मक अवहेलना-पीड़ा-यातना देने की कोशिश नाटकों में दिखाई दी। लक्ष्मीनारायण लाल के 'रातरानी' (1962), 'कर्फ्यु' (1972) आदि में सामायिक युग के बुद्धिजीवी पुरुष-स्त्री-पुरुष के पूर्वाग्रह, दुराग्रह, भावनिक एकता की जगह टूटन, अस्तित्ववाद आदि को उजागर किया गया। धर्मवीर भारती जैसे लेखकों ने सामायिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए गीतिनाट्य की रचना भी की।

इस काल में कथावस्तु के साथ शिल्प की विविधता भी पाई जाने लगी। लेखकों ने रूढ़ियों को तोड़कर नए-नए प्रयोग किए। पाश्चात्य प्रभावों को भी नाटकों में पाया गया। अभिनेयता की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया। आंतरिक एवं द्वंद्व चित्रण और बौद्धिकता आ गई। स्वगत तथा संगीत के अंश रखने की पद्धति लुप्त हो गई। कथोपकथन (संवाद) छोटे-छोटे और व्यावहारिक बन गए। प्रासंगिक कथानकों की कमी हो गई, मनोविज्ञान को प्रधानता मिली। रेडिओ शिल्प का प्रभाव वाचन पद्धति, ध्वनिप्रभाव, फ्लॅशबैक पद्धति आदि के रूप में मंचीय नाटकों पर भी होने लगा।

स्वतंत्रता के बाद भी अधूरे सपने, जीवन की विद्रुपता से बेचैन लेखनी ने 'आजादी के बाद' (विनोद रस्तोगी) जैसा नाटक लिखा। पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों का जीवन के संदर्भ में प्रतिपादन करते हुए 'बेकेट' नाटक का 'तीन अपाहिज' (विपिनकुमार अग्रवाल) जन्म हुआ। जीवन की विसंगतियों के अनुरूप वस्तु और शिल्प में अंतर्मन का उद्घाटन और समस्त संवेगों के साथ पाठक या दर्शक में जीवन का बिंब उभर कर हिंदी नाट्य साहित्य ने एक नया मोड़ लिया।

1969 में जगदीशचंद्र माथुर ने 'पहला राजा' नाटक लिखकर उसे पौराणिक नहीं बल्कि यथार्थवादी रचना कहा। उनकी राय से नाटक में वर्णित समस्या उलझनें लेखक का भोगा हुआ यथार्थ था। ऐसे नाटक की पार्श्वभूमि पौराणिक मगर भाषा के साथ पूरा नाटक ऐतिहासिक या पौराणिक न होकर मात्र यथार्थ था।

इतिहास या पुराण से पात्र या प्रसंग चुनकर आधुनिक अन्योक्ति के रूप में नाटक लिखे गए। खुद जगदीशचंद्र माथुर जी शिल्प की अपेक्षा कथ्य को अधिक महत्व दिया। मोहन राकेश के 'लहरों के राजहंस' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित काल्पनिक नाटक रहा, जो कई बार मंच पर अभिनित हो चुका। इसमें पुराणकथा नहीं बल्कि नियति का आतंक, चिंतनमूढ़ता के द्वारा वर्तमान बुद्धिजीवी वर्ग की मनःस्थिति का वर्णन आया है।

रेवतीशरण वर्मा ने 'चिराग की लौ' (1962) जो एक ईमानदार अफसर की जीवनीपर आधारित है तथा 'अपनी धरती' (1963) जो चीनी आक्रमणों पर आधारित हैं नाटक लिखकर युग की समस्या के साथ भ्रष्टाचार का भी बोध कराते हैं। ये नाटक विषयवस्तु, संवाद, पात्र, देशकाल, संकलनत्रय की दृष्टि से सफल और अभिनेय रहे।

संक्षेप में 1979 तक आते-आते अनेकांगी नाटकों की रचना अधिक हो गई। ये नाटक जनरूचि और रंगमंच से जुड़ चुके थे। उनमें सांस्कृतिक और कलात्मक चेतना पैदा करने की कोशिश हुई। लेखक, रंगकर्मी बन गए। उनमें प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई।

* * *

4. हिंदी निबंध का विकास

निबंध गद्य का प्रमुख अंग है। 'निबंध' यह संस्कृत भाषा का शब्द है। नि+बंध मतलब - नि का अर्थ है - पास और बंध का मतलब है बाँधना। किसी भी विषयपर अपने विचारों को सुसूत्रता से बाँधने का मतलब है 'निबंध'।

हिंदी में इसका प्रयोग अंग्रेजी शब्द *'ESSAY'* के पर्याय के रूप में किया जाता है, जिसका कोशिय अर्थ है 'प्रयास'। भारतेंदु हरिश्चंद्र के पहले काल में इसप्रकार की रचना के उदाहरण नहीं मिलते। अतः आधुनिक गद्य साहित्य निबंध का आरंभ भी हम भारतेंदु काल से ही मान सकते हैं।

'निबंध' आधुनिक गद्य साहित्य की सर्वथा नवीन विधा है।

1. भारतेंदु युग

वैसे बनारसीदास जैन जी के 'दार्शनिक निबंधों' से निबंध विधा की शुरुआत हुई है। जिनका काल आज से पहले चार सौ साल का है और भारतेंदु जी के पहले राजा शिवप्रसाद का लिखा 'राजा भोज का सपना' निबंध के समान गद्य रचना अवश्य थी परंतु उनकी रचनाएँ मात्र लेख थी वे निबंध की कोटि में नहीं आती।

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र (1914-1957)

भारतेंदु हरिश्चंद्र स्वयं ही अपने युग के पहले निबंधकार थे। उनका प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर बड़ा गहरा पड़ा है। धर्म के साथ-साथ राजनीति तथा समाज के साथ साहित्य के विषयों पर अनेक सामाजिक समस्याओं का विवेचन इनके निबंधों में पाया जाता है।

'हम मूर्तिपूजक हैं', 'अकबर और औरंगजेब', 'सूर्योदय', 'होली', 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती हैं?', 'जातीय संगीत', 'भूकंप', 'अपव्यय', 'संगीत सार' आदि उनके निबंधों के शीर्षक हैं।

अपनी 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' तथा 'बालबोधिनी' आदि पत्र पत्रिकाओं में उन्होंने अपने विचारों को निबंधों के रूप में प्रकाशित किया। प्रवाही और स्पष्टता उनके निबंधों की विशेषता थी और पढ़ते समय इनके पीछे रहे लेखक के सोच-विचारों का अनायास दर्शन ये निबंध कर रहे थे। संख्या से ज्यादा निबंधों का पूर्ण रूप आपके 'कंकड़ स्त्रोत्र' और 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' इन दो निबंधों में दिखाई देता हैं।

भारतेंदु जी के निबंध 'भारतेंदु निबंध' संग्रह के नाम से प्रकाशित हुए।

खुद भारतेंदु जी केवल निबंधकार ही नहीं बल्कि एक प्रेरक व्यक्तित्व वाले साहित्यकार हैं। अपने युग के अनेक लेखकों को उन्होंने निबंध लेखन की प्रेरणा दी।

भारतेंदु युगीन निबंधों की विशेषताएँ :-

1. विषयों की विविधता :-

भारतेंदु ने अधिक संख्या में निबंध नहीं लिखे है परंतु विविध विषयों पर निबंध लिखे हैं। जैसे :- खोजयात्रा, प्रकृति वर्णन, आत्मचरित्र, व्यंग्यविनोद आदि विषयों पर उनके निबंध मौजुद हैं।

2. समाज प्रबोधन :-

अपने धार्मिक निबंधों में उन्होंने अंधविश्वासों, मिथ्या परंपराओं और बाह्याडंबरों पर तीखा व्यंग्य किया है, प्रहार किया है। सामाजिक निबंधों में उन्होंने कुरितियों का खुलकर विरोध किया हैं।

3. शैली :-

इनके निबंध व्याख्यात्मक तथा विचारात्मक शैली में लिखे गए हैं।

4. गुण :-

ताजगी, जिंदादिली, व्यक्तित्व की अभिव्यंजना, मौलिकता, आत्मीयता, व्यंग्यात्मकता इनके निबंधों के विशेष गुण हैं।

5. सामान्य विषय :-

इस युग में निबंधकारों ने अत्यंत सामान्य विषयों पर भी निबंध लिखे हैं। जैसे : दाँत, भौं, बात, आशीर्वाद आदि।

6. इस युग का निबंध साहित्य प्रायः पत्र एवं पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आया है जिसमें साहित्यिक प्रवृत्ति से युक्त थोड़े ही निबंध हैं।

हिंदी निबंध साहित्य के प्रारंभिक युग के अनुरूप ही इस युग के निबंध साहित्य का महत्व है।

भारतेंदुयुगीन निबंधकार :-

भारतेंदु काल के प्रमुख निबंधकार खुद भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं जिनके निबंधों का संग्रह 'भारतेंदु निबंध' शीर्षक से प्रकाशित हुआ हैं। परंतु भारतेंदु जी के अलावा और कई निबंधकार इस काल में निबंध लेखक के रूप में उभरे हैं जिन्होंने अपने निबंधों से हिंदी साहित्य को पुष्ट बनाया। इनमें से कईयों को खुद भारतेंदु जी प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। विषय और शैली दोनों की दृष्टि से वे भारतेंदु जी के ऋणी हैं। चौधरी, पं. बद्रिनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' का नाम इनमें से एक है। इनकी भाषाशैली गंभीर परंतु उन्होंने तत्सम शब्दों के साथ आलंकारिकता को भी अपने निबंधों में अपनाया था। ठा. जगमोहनसिंग अपनी काव्यात्मकता शैली के लिए प्रसिद्‌ध हैं। इनकी भाषा ठेठ हिंदी है। पं. बालकृष्ण भट्‌ट भारतेंदु युग के वे निबंधकार हैं जिन्होंने हिंदी निबंध लेखन की वह परंपरा स्थापित की जो निरंतर विकसित होती रही। प्रधानता पत्रकार एवं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के निबंधकार प्रतापनारायण मिश्र इस युग के अत्यधिक जागरूक लेखक रहे। गंभीर से गंभीर बात आपके निबंध में हास्य विनोद का निर्माण करती रही। 'भारत मित्र' पत्र के संपादक बालमुकुंद गुप्त इस युग के अंतिम निबंधकार रहे। इनकी शैली व्यंग्यात्मक किंतु शालीन, सांकेतिक तथा व्यंजक रहीं।

पंडित राधाचरण गोस्वामी (सामाजिक कुरितियों पर व्यंग्य करने वाले) ठा. जगमोहनसिंह, अंबिकादास व्यास, महादेव दुबे, गोविंदराम प्रभाकर, हरिश्चंद्र उपाध्याय आदि भारतेंदु युग के निबंधकार रहे हैं।

श्री प्रतापनारायण मिश्र :-

मिश्र जी प्रधानतया पत्रकार थे। उन्होंने अनेक विषयों को लेकर निबंध लिखे हैं। जैसे :- बालक, युवावस्था, काँग्रेस की जय, धरती माता, खुशामद, भौं, तिल, धोखा, छल, होली, बात, रिश्वत, पतिव्रता आदि।

इनके अधिकांश निबंध उन्हीं के द्‌वारा संपादित 'ब्राह्मण' पत्रिका के अग्रलेख के रूप में प्रकाशित हुए थे। इनके निबंधों में गंभीरता की जगह बातचीत का विनोद देखने को मिलता है।

मिश्र जी भारतेंदु युग के सबसे अधिक जागरूक लेखक थे। गंभीर से गंभीर बात को इन्होंने बड़े सरस ढंग से कह दिया। वे अत्यंत मनमौजी और मस्त लेखक थे। इनकी भाषा और शैली में पूर्ण स्वाभाविकता, सजीवता और सरलता

रहती थी। कहावतों, मुहावरों, श्लेष और अनुप्रास के चमत्कार द्‌वारा वे अपनी बातें सहज, स्वाभाविक तथा आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते थे।

वे व्यक्तिनिष्ठ शैली के निबंधकार है। बात, भौं, दाँत, पेट आदि साधारण विषयों पर इन्होंने निबंध लिखे। भाषा दोष रहने पर भी मिश्र जी की शैली पाठकों को आकर्षित करती रही।

भारतेंदु युग के निबंध साहित्य का मूल्यांकन :-

इस युग में निबंध साहित्य पर्याप्त मात्रा में निर्माण हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, जितनी सफलता भारतेंदु युग के लेखकों को निबंध रचना में मिली उतनी कविता और नाटक में नहीं मिली।

फिर भी निबंध कला का विकास पूर्णतया न हो सका। यह गद्‌य का नवजागरण काल था। अतः विविध विषयों पर निबंध लिखे गए परंतु कलात्मक, उच्च कोटि के निबंधों की संख्या तुलना में कम ही रही। निःसंदेह राजनीति या धर्म सभी विषय निबंधकारों की निबंध परिधि में आ गए। इन निबंधकारों की भाषा सर्वसाधारण थी, जिसमें प्रांतीय लोकोक्तियों, मुहावरों और शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया था।

भारतेंदु काल आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रथम उत्थान काल है। हिंदी गद्‌य का स्वरूप स्थिर होने के साथ-साथ उसके शुद्‌ध साहित्योपयोगी तथा व्यवहारोपयोगी रूप की प्रतिष्ठा भी हो रही थी। नाट्‌यविधा के साथ निबंध विधा को भी इस काल में अभूतपूर्व सफलता मिली।

2. द्‌विवेदी युग

भारतेंदु युग में प्रवाहित हुई निबंध लेखन की कला द्‌विवेदी युग में और विकसित एवं गंभीर होती गई। इसका श्रेय काफी मात्रा में महावीरप्रसाद द्‌विवेदी जी को जाता है। भारतेंदु काल में यह धारा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रस्फुटित हुई थी। इस युग के लेखकों का ध्यान विविध क्षेत्रों से सामग्री संचय की ओर अधिक गया। अतीत का गौरव तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान लेखकों को अधिक आकृष्ट करने वाले विषय रहे। विश्वबंधुता, सामाजिक ऐक्य भी इस युग के लेखकों के चहिते विषय रहे। मासिक पत्र-पत्रिकाओं के रूप में बदलाव आया। उन्होंने गंभीर रूप धारण किया। इसी समय सरस्वती मासिक पत्रिका का आविर्भाव हुआ। महावीरप्रसाद द्‌विवेदी जी के द्‌वारा। निबंधों में देखे गए वैयक्तिकता की जगह सामाजिक, सांस्कृतिक भावना ने स्थान लिया। विचारात्मक निबंध लिखने शुरु हुए। स्वतंत्र विचार, चिंतन दिखाई देने लगा।

इस युग की समस्त साहित्य चेतना महावीरप्रसाद द्‌विवेदी जी में समाहित हैं। इन्होंने सशक्त अभिव्यक्ति के लिए सर्वप्रथम व्याकरण की दृष्टि से भाषा का परिष्कार किया। भाषा के व्याकरण सम्मत प्रयोग तथा हिंदी विरामचिह्‌नों के प्रयोग पर अत्याधिक बल दिया।

द्‌विवेदी जी ने अपने युग के कई निबंधकारों का पथप्रदर्शन किया। इसके लिए उन्होंने दो अनुवाद ग्रंथ प्रकाशित किए। पहला था 'बेकन विचार रत्नावली' (अंग्रेजी के बहुत पुराने पहले लेखक लॉर्ड बेकन के कुछ निबंधों का अनुवाद) और दूसरा था 'निबंधमालादर्श' (चिपलूणकर जी के मराठी निबंधों का अनुवाद)। इनको लिखते और प्रकाशित करते समय द्‌विवेदी जी के सामने एक ही लक्ष्य था - साहित्य की नई विधाओं तथा रचना प्रक्रियाओं से परिचय कराना। उन्होंने हमेशा यह कोशिश की हिंदी भाषा का रूप ऐसा बने जो और भाषाओं के शब्दों से पुष्ट हो और साथ ही संस्कृत शब्दों को भी अपनाएँ। उनकी इस नीति का तत्कालीन निबंधों पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। यद्‌यपि उनके निबंधों की संख्या अल्प रहीं परंतु उन्होंने पाश्चात्य लेखकों के ज्ञान को अर्जित करके अपने निबंधों द्‌वारा पाठकों का ज्ञानवर्धन किया।

'दंडदेव का आत्मनिवेदन', 'कालिदास का भारत', 'गोपियों की भगवद्भक्ति', 'नल का दुस्तर कार्य' आदि आपके निबंधों से आपकी आत्मीयता तथा रोचकता दृगोचर होती हैं। वैयक्तिकता ऱ्हास के कारण द्‌विवेदी जी के निबंधों में आलोचनात्मक टिप्पणियाँ दिखाई देती है। निबंध की सहजता इन निबंधों में अभाव से दिखाई देती है। इनके निबंधों में चिंतन कम परंतु भाषा का शुद्‌ध रूप जरूर देखने को मिलता है।

द्‌विवेदी युग के निबंधों की प्रमुख विशेषताएँ :-

-: इस युग के निबंधों में भारतेंदु युग की अपेक्षा अधिक परिपक्वता तथा निबंधों के सभी तत्वों का विनियोग हुआ है।

-: इस युग के निबंधों में विषय वैविध्य मिलता है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ज्ञानवर्धक साहित्य, समीक्षात्मक निबंध इस काल में लिखे गए।

-: भावात्मक, प्रभावाभिव्यंजक, समीक्षात्मक तथा वर्णनात्मक शैली में निबंध लिखे जाने लगे।

-: इस युग के निबंधों में स्वतंत्र चिंतन, भावप्रवणता, मधुरता आदि गुणों को देखा जा सकता हैं।

-: भारतेंदु युगीन निबंधों की अपेक्षा इस युग के निबंध गंभीर, सामाजिक अस्मिता को जाग्रत करने वाले रहे।

-: इन निबंधों की भाषा अत्यंत परिष्कृत और व्याकरण के नियमों के अनुकूल है। भाषा में तत्सम शब्दों की प्रधानता हैं।

द्‌विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार :-

1. महावीरप्रसाद द्‌विवेदी :-

यह द्‌विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार रहे। 'कवि और कविता', 'साहित्य की महत्ता', 'क्रोध', 'लोभ', 'उपन्यास', 'नाटक', 'प्रतिभा' आपके प्रमुख निबंध हैं।

इनमें द्‌विवेदी जी ने संबंधित विषयों का सरल और सुबोध शैली में विवेचन किया है। तात्विक चर्चा इनमें अधिक मात्रा में पाई जाती है। इनके निबंधों का महत्व साहित्य से ज्यादा इतिहासिक अधिक हैं।

2. श्री माधवप्रसाद मिश्र :-

इनके निबंध 'सुदर्शन' पत्रिका में प्रकाशित होते थे। 'माधव मिश्र निबंधमाला' आपके निबंधों का संग्रह प्रकाशित हुआ था। धर्म, त्योहार, साहित्य, यात्रा सभी प्रकार के विषयों का इसमें संकलन हैं। ये सभी निबंध रोचक, मधुर, सजीव तथा सरस औऱ आत्मव्यंजक हैं। गंभीरता के साथ इनमें मार्मिकता भी मौजूद है।

3. बालमुकुंद गुप्त :-

बंगवासी पत्रिका के संपादक बाबू बालमुकुंद गुप्त द्‌विवेदी युग के एक ओर निबंधकार रहे हैं। वास्तविक रूप में भारतेंदु युग और द्‌विवेदी युग को जोड़ने वाली प्रमुख कड़ी 'गुप्त जी' कहे जा सकते हैं। हिंदी साहित्य में गुप्त जी 'शिवशंभु के चिट्‌ठे' के लिए मशहूर रहे हैं। ये चिट्‌ठे 'भारतमित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। राष्ट्रीय कई महत्वपूर्ण प्रश्नों तथा तत्कालीन राजनीतिक, साहित्यिक प्रश्नों पर इन्होंने निर्भिकतापूर्वक लेखन किया। उर्दू से हिंदी में आए गुप्त जी की भाषा तीखी, प्रवाहपूर्ण, चुस्त, सजीव एवं व्यावहारिक रहीं।

4. पं. गोविंदनारायण मिश्र :-

सारसुधा में निबंध लिखते थे। इनके निबंध पांडित्यपूर्ण, तत्समप्रधान, संस्कृतनिष्ठ और अनुप्रासयुक्त गद्‌य शैली के लिए प्रसिद्‌ध रहे। वे भाषाविद्‌ रहे, अतः भाषा संस्कृत प्रचुर दिखाई देती है। कवि और चित्रकार, आत्माराम की टेंटें इनके प्रमुख निबंध हैं।

5. डॉ. श्यामसुंदरदास :-

द्विवेदी युग के महत्वपूर्ण निबंधकार रहे हैं। 'नागरी प्रचारिणी सभा' के स्थापना कालसे आप निबंध लिखते आए हैं। गंभीर विषयों पर विचारात्मक एवं भावात्मक निबंध इन्होंने लिखे हैं। 'समाज और साहित्य', 'हमारी भाषा', 'सूरदास', 'तुलसीदास', 'कर्तव्य और सत्यता' आपके प्रसिद्ध निबंध रहे हैं। इनमें तर्क की पुष्टि से आपने विवेचन किया है। आपके अधिकांश निबंध व्यास शैली में लिखे हुए हैं। हिंदी भाषा को इन्होंने आधुनिक सभ्यता की आवश्यकता के अनुकूल बनाया।

6. सरदार पूर्णसिंह :-

इनका भी द्विवेदी युग में महत्वपूर्ण स्थान है। छह निबंध लिखकर इन्होंने आलोचकों का ध्यान आकर्षित किया। 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मजदूरी और प्रेम', 'पवित्रता', 'कन्यादान' आपके प्रसिद्ध निबंध हैं। ये अपनी शैली के निबंधकार रहे। इनके निबंध नैतिक और सामाजिक विषयों से संबद्ध हैं।

द्विवेदीयुगीन एक श्रेष्ठ निबंधकार सरदार पूर्णसिंह मस्तानापन और सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग करने वाले सक्षम लेखक रहे हैं। जयपुर से 'समालोचक' पत्र में लिखने वाले 'चंद्रधर शर्मा गुलेरी' उच्च कोटि के निबंधकार रहे हैं।

'मारे सि मोहिं बुढ़ायँ', 'कछुआ धर्म', आपके बहुचर्चित निबंध हैं। विचारों की सलगता एवं प्रभावकारकता इनकी विशेषताएँ रही हैं। स्वच्छ और चमत्कारपूर्ण भाषा आपके निबंधों के विशेष हैं।

7. आचार्य रामचंद्र शुक्ल :-

द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकार रहे और कविहृदय के रामचंद्र शुक्ल हिंदी निबंध साहित्य में सर्वोत्कृष्ट तथा युगप्रवर्तक निबंधकार रहे। 'नागरी प्रचारिणी सभा' विचारविधि आदि में आपके निबंध प्रकाशित हुए। 'भय और क्रोध', 'उत्साह', 'प्रेम' आदि इनके प्रमुख निबंध हैं।

निबंध के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक प्रमुख एवं युगप्रवर्तक निबंधकार माने जाते हैं। इनके साहित्य प्रवेश से साहित्य क्षेत्र में उमंग उत्साह भर गया। इन्होंने द्विवेदी युग में अपना लेखन जरूर शुरु किया परंतु वे द्विवेदी से प्रभावित नहीं थे।

इनके निबंधों का संग्रह 'विचारवीथि' नाम से प्रकाशित हुआ था। इनके साथ साहित्यशास्त्र से संबंध रखने वाले कुछ और साहित्यिक निबंध जोड़कर इनका एक संग्रह 'चिंतामणि' के नाम से प्रकाशित हुआ है। यह मंगलाप्रसाद पुरस्कार द्वारा सन्मानित हो चुका हैं।

निबंधों में उनकी शृंखलाबद्ध विचारधारा तर्कपूर्ण और समास शैली में प्रकट होती हैं। शुक्ल जी निबंधकार के साथ आलोचना सम्राट भी रहे। इन्होंने लिखे साहित्य इतिहास का आधार पर आज भी हिंदी साहित्य के विविध इतिहास लिखे जा रहे हैं।

अपने मौलिक निबंधों द्वारा सुसंबद्ध और विचारों को उत्तेजित करने वाली नई शैली, नई भाषा उन्होंने हिंदी साहित्य को प्रदान की। इनके निबंध का हर एक शब्द वैशिष्ट्यपूर्ण तथा महत्वपूर्ण होता है। इन्होंने मनोवैज्ञानिक निबंधों की रचना भी की। शुक्ल जी ने कहीं-कहीं जीवनी से उदाहरण देकर और कहीं मीठी चुटकियाँ लेकर अपनी शैली को सरस बनाया है। अपने मौलिक विचारों को प्रकट करते हुए उसमें हास्यव्यंग्य का सहारा लेकर नीजीपन प्रदान कर उन्होंने निबंधों को केवल विषयप्रधान होने से बचाया हैं।

शुक्ल जी के निबंधों की रचना पद्धति की विशेषताएँ :-

खुद शुक्ल जी अध्ययनशील, विद्वान थे। विचारों की स्पष्टता रखने वाले इतिहासकार और साहित्यकार थे। तुलसी उनके आदर्श कवि थे। साहित्य के पीछे कल्याणकारी भावनाओं का होना वे जरूरी मानते थे। उनके निबंधों की विशेषताएँ इसप्रकार हैं -

-: निबंधों में वर्णित विचार शृंखलाबद्ध होते हैं। इनमें प्रत्येक शब्द महत्वपूर्ण और एक भी फालतू शब्द प्रयुक्त की संभावना नहीं होती।

-: उनके व्यक्तित्व की झलक उनके निबंधों में जरूर मिलती है, फिर भी निबंध के विषय का मूल्य घटने नहीं दिया जाता।

-: इनके निबंधों से सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना होती हैं। इनमें 'वैर, क्रोध और आचार का मुरब्बा है' अथवा 'भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है' तथा 'यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण' आदि सूत्रात्मक वाक्यों को काफी मात्रा में पाया जाता हैं।

-: अपने निबंधों में उन्होंने मानवतावाद को स्थान दिया। गंभीरता के साथ कल्याणकारी भावों को इनके निबंधों में पाया जाता है।

-: अपने निबंधों में उन्होंने ऐसी तर्कपूर्ण विवेचना पद्धति का शुभारंभ किया जिसमें एक समन्वित समीक्षाशैली के दर्शन होते हैं।

-: निबंधों की व्याख्यानात्मक शैली के कारण उसका प्रभाव पाठक या श्रोताओं पर जरूर पड़ता है।

आ. रामचंद्र शुक्ल जी के रूप में हिंदी को एक ऐसा निबंधकार मिला जिसने अपनी रचनाद्वारा संपूर्ण हिंदी साहित्य का पथ-प्रदर्शन किया, उसे एक नया ओज प्रदान किया।

3. शुक्ल युग

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के साहित्य पदार्पण से हिंदी साहित्य में नवजीवन आ गया। खासकर निबंध विधा अधिक परिपुष्ट तथा परिमार्जित शैली में परिवर्तित हुई। शुक्ल जी के रूप में हिंदी को एक उच्च कोटि का निबंधकार मिला। शुक्ल जी ने द्विवेदी युग की शास्त्रीय गद्यशैली को नया रूप दिया। उसे समृद्ध और उन्नत बनाया। नए क्रांतिकारी बदलाव शुक्ल जी के कारण ही निबंध के क्षेत्र में होने लगे। निबंध अधिक ललित भी और समीक्षात्मक भी बनने लगे। द्विवेदी युग के निबंधों की गंभीरता इन्हीं कारणों से कम होती गई। परंतु खुद शुक्ल जी ने ही वैचारिक निबंधों को उत्कर्ष के चरम शिखरों तक पहुँचा दिया। अतः शुक्ल युग निबंध विधा के चरमोत्कर्ष युग कहलाने लगा।

शुक्ल जी का जन्म विक्रम संवत 1941 में हुआ। उनके साहित्यिक जीवन के कई पक्ष हैं। इन्होंने निबंध, आलोचना, कविता, साहित्य का इतिहास आदि साहित्य के विभिन्न अंगों को अपनी रचनाओं द्वारा समृद्ध बनाया था। बंगला तथा अंग्रेजी के अनेक ग्रंथों का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया था। अनेक ग्रंथों और पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी।

शुक्ल जी का साहित्य :-

1. निबंध :-

चिंतामणि (भाग 2)

विचार वीथि।

2. आलोचना :-

तुलसी, सूर और जायसी की विस्तृत आलोचनाएँ। सूरदास। रसमिमांसा।

3. कविता :-

ग्यारह वर्ष का समय।

4. अनुवाद :-

कल्पना का आनंद, विश्व प्रपंच, राजप्रबंध, आदर्श जीवन, शिक्षा, शशांक।

5. इतिहास :-

हिंदी साहित्य का इतिहास।

विशेषताएँ :-

-: शुक्ल जी ने अपने मौलिक निबंधों द्वारा सुसंबद्ध और विचारोत्तेजेक नई शैली और नई भाषा निबंधों का नया सुगठित रूप आदि चीजें प्रदान की थी। इससे निबंध के क्षेत्र में एक क्रांति-सी पैदा हो गई थी।

-: हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वालों के लिए इनका कार्य प्रथ-प्रदर्शन करेगा।

-: इनके निबंधों में प्रौढ चिंतन, सूक्ष्म विश्लेषण, तर्कपूर्ण सुसंबद्ध विवेचन दिखाई देता हैं।

-: अपने मनोविकारों के संबंध में काफी विचारों के बाद सूक्ष्म, स्पष्ट, स्वरूप विवेचन इन्होंने किया हैं।

-: प्रौढ़ चिंतन, व्यापक जीवनानुभव और विश्लेषण शक्ति के कारण अपने निबंधों में वे दार्शनिकता व्यक्त करते हैं।

-: शब्दों को चुनते समय, वाक्यरचना करते समय इनकी काव्यात्मक रूचि का प्रत्यय आता है। इनकी भाषा अप्रतिम सुंदर बन गई है।

-: विचार और उनकी अभिव्यक्ति दोनों का सुंदर मिलन इनकी रचना में दिखाई देता है।

शुक्ल युग के निबंधकार :-

रामचंद्र शुक्ल जी के साथ परंतु भिन्न स्तर पर निबंध लिखने वाले निबंधकार हैं -

1. बाबू गुलाबराय :-

इनके निबंधों में वर्ण्य विषय से ज्यादा लेखक का व्यक्तित्व, उसकी नीची प्रतिक्रियाएँ अधिक महत्व रखती हैं। इन्होंने विचार प्रधान तथा भावप्रधान दोनों प्रकार के निबंध लिखे। इसमें लेखक का मनोविश्लेषक भूमिका स्पष्ट होती है। इनके निबंधों की भाषा स्पष्ट, सरल तथा भावव्यंजक है।

'ढलुआ क्लाब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएँ', 'मेरा मकान', 'प्रीतिभोज' आदि निबंधों में ललित निबंधों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। हास्य व्यंग्य पूर्ण आत्मकथनात्मक निबंधों की शृंखला में डॉ. गुलाबराय रचित निबंध कृतियों का विशेष स्थान है।

2. पद्मलाल पन्नालाल बक्षी :-

शुक्ल युग के एक विशेष निबंधकार हैं। इनके निबंधों की भाषा सजीव तथा चित्रात्मक है। 'पंचपात्र' इनका निबंध संग्रह हैं।

'उत्सव', 'रामलालपंडित', 'समाजसेवा', 'अतीत-स्मृति', 'श्रद्धा जी के दो फूल' आदि आपके बहुचर्चित लोकप्रिय निबंध हैं। विचारों की मौलिकता और शैली की नूतनता आपके निबंधों की विशेषताएँ हैं।

3. रघुवीरसिंग :-

शुक्ल युग के ऐतिहासिक संस्मरणात्मक लेखकों के लिए विशेष प्रसिद्ध है। इनका 'शेष स्मृतियाँ' निबंध काफी महत्वपूर्ण हैं। मुघलकालीन इतिहास की घटनाओं और इमारतों पर इन्होंने अनेक ललित निबंध लिखे हैं।

4. माखनलाल चतुर्वेदी :-

अनेक भावप्रधान निबंधों के लिए शिवपूजन सहाय भाषा के जादूगर के रूप में पंडित बचन शर्मा 'उग्र'। अपनी चित्रात्मक गतिशील और नाटकीय भाषा के लिए प्रसिद्ध हुए।

5. शांतिप्रिय द्विवेदी :-

भावात्मकता की प्रधानता रखने वाले शांतिप्रिय द्विवेदी ने नीजि जीवन और व्यक्तिगत समस्याओं पर निबंध लिखने के अतिरिक्त 'कवि और काव्य', 'साहित्यिकी'। समीक्षात्मक निबंधों में इनकी गहरी पकड़ है। इनके निबंधों की भाषा काव्यमयता, सुकुमार शब्द योजना और तरल अभिव्यक्ति उनके निबंधों की सहज विशेषता है।

6. जयशंकर प्रसाद :-

शुक्ल युग के एक विचारप्रधान निबंध लिखने वाले एक महत्वपूर्ण लेखक रहे। उन्होंने कुल अट्ठाईस (28) निबंध लिखे। ये ऐतिहासिक और साहित्यिक निबंध हैं। 'चित्राधार', 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' इस निबंध संग्रहों में इनके निबंध प्रकाशित हुए हैं। 'ब्रह्मर्षि', 'पंचायत', 'रहस्यवाद', 'यथार्थवाद और प्रयोग', 'चम्पू', 'कवि और कविता' आदि आपके निबंध इंदु पत्रिका में प्रकाशित हुए। प्रसाद जी के विवरणात्मक निबंधों की भाषा अलंकारिक है. इन्होंने इतिहास और दर्शन का सुंदर मिलाप करके राष्ट्रीय संस्कृति का उज्वल रूप अंकित किया हैं।

7. महादेवी वर्मा :-

शुक्ल युग की ऐसी निबंधकार रही जिनके निबंधों में चिंतन, मनन के साथ बौद्धिकता और तर्क का संयोग भी हैं। उनकी भाषा तत्सम तथा लोक प्रचलित शब्दों से युक्त है। वे खुद चित्रकार होने के कारण उनके निबंधों में चित्रकला की सभी विशेषताएँ मौजूद हैं। 'युद्ध और नारी', 'जीवन का व्यवसाय', 'आधुनिक नारी', 'जीने की कला' आदि आप के लोकप्रिय निबंध हैं। आपके कविरूप तथा दार्शनिकता का सहज सुंदर आविष्कार उनके निबंधों में पाया जाता है। 'अतित के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' संकलनों के निबंध रहे हैं।

शुक्ल युग के निबंधों की विशेषताएँ :-

-: इस युग के निबंध गांभीर्य से युक्त रहे। इनमें गंभीरता के साथ-साथ हृदय का भी योग है।

-: इन निबंधों में वस्तु और भाव का संयोग है।

-: इस काल में साहित्य समीक्षा संबंधी निबंध काफी लिखे गए।

-: साहित्यिक निबंधों के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक निबंध भी इस युग में लिखे गए।

-: इन निबंधों में विचारों का प्राधान्य रहा।

-: इस युग के निबंध में सूत्रात्मक शैली के दर्शन होते हैं।

-: प्रायः साहित्य के सभी पक्षों पर निबंध इस काल में पाए जाते हैं।

4. शुक्लोत्तर युग

यह निबंध विधा का चरम विकास का युग है। यह काल ऐसा था जब शुक्ल जी के पथप्रदर्शन कई कवि साहित्य निर्माण में जुटे थे। शुक्ल युग के कई एक कवि इस युग में कार्यरत रहे।

नए मूल्यों का संगठन और प्राचीन मूल्यों का विघटन इस प्रक्रिया का आरंभ हो चुका था। समाज परिवर्तन का परिणाम साहित्य में दृगोचर होता रहा। निबंधों के विषयों में वृद्धि होती गई। शिकारसंबंधी, घुमक्कड़ी संबंधी निबंध भी प्रकाशित होते रहे। मनोविज्ञान, समाजवाद आदि विचारधाराएँ इसमें शरीक होती गई। आत्माभिव्यक्ति, वैयक्तिकता निबंधों में छलकने लगी। अर्थात इन बातों का एक परिणाम निबंधों के लालित्य पर हुआ। निबंधों का लालित्य कम होता गया।

शुक्लोत्तर युग के निबंधकार :-

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी, रामधारीसिंह दिनकर, डॉ. नगेंद्र, अज्ञेय, रामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीराम शर्मा, यशपाल, गुलाबराय, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', धर्मवीर भारती, हरिशंकर परसाई, रवींद्रनाथ त्यागी इ.।

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी :-

हजारीप्रसाद द्विवेदी जी शुक्लोत्तर युग के महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ निबंधकार हैं। द्विवेदी जी आलोचक उपन्यासकार और निबंध लेखक हैं परंतु उनके निबंध ही उनके असली व्यक्तित्व के परिचायक हैं।

इनके निबंधों में एक विशिष्ट सांस्कृतिकता, शास्त्रीयता और विनोदप्रियता के साथ प्रकट हुई है। इनके निबंधों में चिंतन भी मौलिकता एवं गंभीरता के साथ-साथ निबंधकार के व्यक्तित्व की कलात्मक सरसता और सहजता एक ही जगह देखने को मिलती है। इनके निबंध ललित निबंध है। 'अशोक के फूल', 'कल्पलता', 'विचार और वितर्क', 'विचार प्रवाह' आदि इनके निबंध संग्रह हैं।

भाषा प्रसंगानुकूल ललित, संस्कृत गर्भित, मिश्रित और लोकभाषा के विभिन्न सरस रूपों का उपयोग करने में सक्षम हैं। हास्य व्यंग्यार्थ, सरस, मृदुल व्यंग्यात्मक भाषा में द्विवेदी जी सिद्धहस्त रहे हैं।

भारतीय संस्कृति से असीम प्रेम, गांधीवादी विचारधारा, शुद्ध राष्ट्रीय भावना आपके निबंधों की विशेषताएँ हैं।

2. जैनेंद्र :-

यह शुक्लोत्तर युग के कथाकार के साथ-साथ श्रेष्ठ निबंधकार भी रहें। 'जड की बात', 'इतस्ततः', 'सोच विचार', 'मंथन' आदि उनके कई निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। मनोविज्ञान, साहित्य दर्शन तथा कई सामाजिक विषयों पर इन्होंने निबंध लिखे हैं। इनके निबंधों की शैली चटकदार होते हुए भी दार्शनिकता के कारण बोझिल हो गई हैं। पर्याप्त मौलिक चिंतन और मनन के दर्शन इनके निबंधों में दिखाई देते हैं।

3. रामधारीसिंह 'दिनकर' :-

इस युग के ऐसे निबंधकार रहे जिनके अधिकांश निबंधों में वैचारिक पक्ष अधिकता से उभर आया हैं। 'अर्धनारीश्वर', 'रेती के फूल', 'मिट्टी की ओर', 'प्रसाद पंत और मैथिलीशरण' आदि उनके निबंध संग्रह है। अपने विचार दिनकर जी बड़ी विश्वसनीयता, निश्चयात्मकता और स्पष्टता से पाठकों तक संप्रेषित करते हैं।

4. अज्ञेय :-

आधुनिक युग के एक विलक्षण प्रतिभासंपन्न साहित्यकार रहे हैं। इनके निबंधों की परिधि काफी बड़ी है। साहित्य, चिंतन, इतिहास, कला, संस्कृति आदि विषय इनमें आते हैं। 'आत्मनेपद' तथा 'लिखि कागद कोरे', 'केंद्र और परिधि' में प्रकाशित इनके पूर्व प्रकाशित निबंधसंग्रह 'अद्‌यतन', 'घाट और किनारे' में एकत्रित हैं। 'भवति', 'अंतरा', 'संवत्सर' आदि आपके उल्लेखनीय निबंध संग्रह हैं। 'कुट्टिचातन' उपनाम से भी आपने निबंध लिखे हैं।

5. रामवृक्ष बेनीपुरी :-

आत्मपरक निबंध लिखने वालों में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाम महत्वपूर्ण हैं। 'गेहूँ और गुलाब' संग्रह में आपके निबंध संग्रहित हैं। इनकी भाषा सरल है इसमें जरा भी जटिलता नहीं। भावुकता और आवेगमयता का प्राधान्य इनमें दिखता है।

6. डॉ. नगेंद्र :-

आलोचनात्मक निबंध ही लिखे हैं। 'विचार और विवेचन' 'विचार और विश्लेषण', 'विचार और अनुभूति', 'अनुसंधान और आलोचना', 'चेतना का बिंब' आदि आपके निबंध संग्रह रहे हैं। इनके निबंध 'निबंध' से ज्यादा लेखन के रूप में सामने आते हैं।

7. यशपाल :-

यशपाल जी ने कथा की तरह निबंधकला में भी मार्क्सवाद के दृष्टिकोण को ग्रहण किया। 'चक्कर क्लब', 'देखा सोचा समझा', 'न्याय का संघर्ष', 'गांधीवाद की शव परीक्षा' आपके निबंध संग्रह हैं।

8. हरिशंकर परसाई :-

हास्य व्यंग्यभरे निबंध लिखने वाले परसाई जी इस काल के श्रेष्ठ निबंधकार हैं। 'भूत का पाँव', 'सदाचार का तावीज', 'निठल्ले की डायरी' आदि इनके निबंध संग्रह हैं।

इसप्रकार शुक्लोत्तर युग में निबंध साहित्य ने अल्प काल में ही आशाजनक प्रगति की। इस युग के निबंध साहित्य में अभूतपूर्ण विषय वैविध्य दृष्टिगत होता है और निबंध विकास के साथ शुक्लोत्तर युगीन साहित्य सर्वांग परिपूर्ण एवं समृद्‌ध बना।

9. कुबेरनाथ राय :-

ललित निबंधों की परंपरा को आधुनिक युग में जिन लेखकों ने आगे बढ़ाया उनमें कुबेरनाथ राय का स्थान महत्वपूर्ण है। राय जी हजारीप्रसाद द्‌विवेदी परंपरा के निबंधकार हैं। आपकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि द्‌विवेदी जी से प्रेरणा पाकर परंतु उनके प्रभाव से मुक्त होकर आपने निबंध लिखे हैं।

इनके निबंधसंग्रह :- 'प्रिया निलकंठी', 'रस आखेटक', 'गंधमादन', 'विषाद योग' आदि आपके बहुचर्चित संग्रह हैं।

10. हरिशंकर परसाई :-

हिंदी के हास्य व्यंग्यभरे निबंध लिखने वालों में हरिशंकर परसाई जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। अपने निबंधों में उन्होंने राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा पीढ़िगत मूल्यों की विसंगतियों पर करारा व्यंग्य कसा हैं। इनके कई

निबंधों में सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना उनकी गहरी सहानुभूति को काटने वाली व्यंग्यपूर्ण भाषा में साकार हुई हैं।

सूक्ष्म दृष्टि, प्रगल्भ कथनशैली और अर्थगर्भित भाषा के साथ मानवीय संवेदनशीलता के अनुभवों को उन्होंने सुंदरता से अपने निबंधों में चित्रित किया है। इनकी साहित्य सृजन के पीछे होने वाली लोकमंगल की भावना उनके निबंध अधिक सुंदर बनाते हैं। उनके व्यंग्य आमतौर पर मूल्यगत विसंगतियों को उजागर करते हैं।

इनके निबंध संग्रह हैं - 'भूत का पाँव', 'सदाचार का तावीज', 'निठल्ले की डायरी'। 'बाढ़ का नियंत्रण', 'शिरस्त्राण संमेलन' आपके निबंधों में से कुछ उल्लेखनीय निबंध हैं। परसाई जी शुक्लोत्तर युग के श्रेष्ठ निबंधकार रहे।

* * *

5. आलोचना : उद्‌भव तथा विकास

प्रस्तावना :-

भारतीय साहित्य में पुराने जमाने से आलोचना की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह कोई केवल नवी प्रवृत्ति नहीं। वस्तुतः काव्य विधा के जगत में संस्कृत साहित्य में इसका पुष्ट रूप दिखाई देता हैं। वहाँ भी आलोचना का सैद्धांतिक रूप ही देखने को मिलता है। उसमें व्यवहार पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

हिंदी साहित्य में रीति काल से आलोचनात्मक पद्धति कम-अधिक मात्रा में प्रचलित है। परंतु आज हम 'आलोचना' विधा को साहित्य की जिस एक प्रवृत्ति के रूप में पाते हैं, वह पुराने समालोचना से भिन्न रूप की है। इस अर्थ में आलोचना एक आधुनिक विधा है।

भारतेंदु युग से लेकर आजतक प्रवाहित इस विधा का कालखंडों के अनुसार विकास इसप्रकार है -

1. भारतेंदु युग (1927-1962)

हिंदी आलोचना का जन्म तथा उसका थोड़ा बहुत विकास भारतेंदु युग में ही हुआ था। इसका उपयोग तथा अधिक परिणाम उस समय में नहीं हुआ। परंतु द्‌विवेदी युग में आलोचना की जो पद्धतियाँ प्रचलित थी उनमें से अधिकांश का सूत्रपात भारतेंदु युग से ही हो चुका था।

आलोचना धारा के स्त्रोत :-

1. परिचयात्मक
2. सैद्धांतिक
3. ऐतिहासिक
4. प्रयोगात्मक
5. तुलनात्मक

भारतेंदु युगीन श्रेष्ठ समालोचक :-

भारतेंदु हरिश्चंद्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमघन, पं. बालकृष्ण भट्‌ट, लाला श्रीवास्तव, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र :-

इन्होंने 'नाटक' नामक एक विस्तृत निबंध लिखकर 'सैद्धांतिक आलोचना' का श्रीगणेशा किया। इसमें उन्होंने व्यापक दृष्टि से नाट्यतत्वों पर निरूपण किया। इसके द्‌वारा इन्होंने नाटककारों के सामने साम्यवादी दृष्टि रखी। कविता की आलोचना का भी प्रयत्न इन्होंने 'कवि वचन सुधा' पत्रिका में हिंदी कविता के नाम से किया।

डॉ. बद्रीनारायण गुप्त ने इनके बारे में नाटक निबंध के बारे में लिखा हैं - "यह ग्रंथ एक अत्यंत प्रौढ़ रचना है। इस रचना का वर्ण्य विषय काफी गहन एवं प्रभावी हैं।" भारतेंदु जी का यह निबंध 'भारतेंदु ग्रंथावली' में संग्रहित हैं। इसके आधार पर भारतेंदु हरिश्चंद्र आधुनिक हिंदी सैद्धांतिक आलोचना के जनक सिद्‌ध होते हैं।

2. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' :-

इन्होंने अपनी पत्रिका 'आनंद कादंबिनी' के माध्यम से पुस्तकों की आलोचना की है। समालोच्य पुस्तक के विषयों का अच्छी तरह से विवेचन करके उसके गुण-दोष के विस्तृत निरूपण की पद्धति उन्होंने चलाई। लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की आलोचना भी इन्होंने की है। इनकी आलोचना 'व्यावहारिक आलोचना' का रूप थी।

3. पं. बालकृष्ण भट्ट :-

भारतेंदु युग के प्रमुख आलोचक रहे। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार समालोचना का सूत्रपात भट्ट जी ने और बद्रीनारायण चौधरी ने ही किया। नाटककार को व्यक्तिगत रूप से संबोधित करते हुए कटु आलोचना शीर्षक एक लेख में इन्होंने 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की आलोचना की थी।

भारतेंदु युगीन आलोचना की विशेषताएँ :-

-: भारतेंदुयुगीन आलोचना पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम स विशेष रूप से 'हिंदी प्रदीप' पत्र के द्वारा प्रकाश में आई।

-: तीन स्वरूप की आलोचना - सैद्धांतिक, परिचयात्मक और इतिहास ग्रंथ।

-: यह आधुनिक आलोचना पद्धति का सूत्रपात था।

-: इस काल की आलोचना में रचनाकार के जीवनमूल्य अथवा उसके द्वारा निर्धारित सौंदर्यतत्व उभरकर नहीं आए।

-: ये आलोचनाएँ निर्भिक लेखन शैली और मनोरंजन के गुण से पूर्ण थी।

हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि यद्यपि इस युग में आलोचना शिल्प का उतना विकास नहीं हो सका, फिर भी परवर्ति द्विवेदी युग का मार्गदर्शन इस युग के साहित्य ने अवश्य किया। इस युग में अनुवादों की भरमार थी और आलोचकों ने उनकी आलोचना में उसकी भाषा तथा दोषों का विवेचन भी किया। फिर भी इस युग में पुस्तकाकार रूप में आलोचना नहीं हुई।

2. द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना साहित्य का गंभीर एवं गंभीर एवं तात्विक रूप तो नहीं निखरा, किंतु उसकी कई महत्वपूर्ण पद्धतियाँ विकसित हुई।

'सरस्वति' के संपादक महान युग प्रवर्तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पहली बार पुस्तकाकार रूप में हिंदी कालिदास की आलोचना लिखकर गुण-दोष या सूक्ष्म विशेषताएँ दिखाने के लिए एक दूसरी पुस्तक तैयार करने की शुरुआत की।

इस काल के आलोचक इस प्रकार हैं :-

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, मिश्रबंधु, पं. पद्मसिंह शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, भगवतस्वरूप मिश्र, नंददुलार वाजपेयी, डॉ. जयकिसनप्रसाद खण्डेलवाल, रामकुमार वर्मा, हरिऔध, गुलाबराय।

1. आ. पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी :-

द्विवेदी जी की समीक्षा पद्धति से खड़ी बोली गद्य तथा पद्य का परिमार्जन हुआ और जनरूचि का निर्माण तथा युग की आवश्यकताओं की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित हुआ। अपनी संपादकीय

समीक्षात्मक टिप्पणियों में द्विवेदी जी ने साहित्यिकों को राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरणा ग्रहण करने की प्रेरणा दी। द्विवेदी जी ने कालिदास के 'मेघदूत' की आलोचना की। उन्होंने पहली बार निर्णयात्मक और परिचयात्मक आलोचना लिखना शुरु किया। 'विक्रमांक देव चरित चर्चा', 'नैषध चरित चर्चा' उनका आलोचनात्मक ग्रंत है।

उन्होंने छायावाद का घोर विरोध किया। प्राचीन के साथ नवीन काल से भी उनको प्रेम था। इनकी शैली में सरलता, सरसता और व्यंग्यात्मकता विद्यमान हैं।

2. मिश्रबंधु :-

अर्थात विख्यात पं. गणेशबिहारी मिश्र, पं. श्यामबिहारी मिश्र और पं. शुकदेव बिहारी मिश्र ने आलोचना के प्रारंभिक काल में विशेष सहयोग दिया है। 'हिंदी का बृहत इतिहासग्रंथ', 'मिश्र बंधु विनोद' के नाम से तीन खंडों में प्रकाशित हैं।

'निर्णयात्मक आलोचना' का पहला प्रयोग इन्होंने ही किया हैं। इनकी समीक्षा ने साहित्यिक इतिहास-दर्शन को आगे बढ़ाया।

3. 'बिहारी सतसई की भूमिका' की रचना करने वाले 'पद्मसिंह शर्मा' द्विवेदीयुगीन महत्वपूर्ण आलोचक रहे।

3. शुक्ल युग

द्विवेदी युग के पश्चात हिंदी में वास्तविक आलोचना का प्रारंभ होता है। इसी समय बाबू श्यामसुंदरदास ने विश्वविद्यालय की उच्च कक्षाओं के लिए अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'साहित्यालोचन' लिखा। इसमें भारतीय और अंग्रेजी समालोचना सिद्धांतो का सुंदर समन्वय था। इसी समय आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का आगमन हुआ। उनके आते ही इस क्षेत्र के विकास में गति आ गई। उन्होंने विश्लेषणात्मक शैली द्वारा एक नवीन पद्धति का श्रीगणेशा किया। रस और अलंकार साहित्य को नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की।

अबतक विश्वविद्यालयों में अध्ययन अध्यापन के संदर्भ में विविध साहित्य विधाएँ विकसित हो रही थी। संस्कृत में अंग्रेजी की कई नवीन प्रवृत्तियाँ दिखाने देने लगी। अतः उनके पक्ष-विपक्ष में अधिकतर निबंधों के रूप में आलोचना का एक ऐसा रूप विकसित हुआ जो अपने युग के लिए नया तो था, वह भावी आलोचना की पीठिका भी बना।

द्विवेदी युग के परवर्ति काल में आलोचना के क्षेत्र में विस्तार हुआ। छायावादी, स्वच्छंदतावादी समीक्षा की नींव डाले हुए थे ऐसे समय आलोचना की कई अन्य पद्धतियाँ भी उभरकर आई।

रामचंद्र शुक्ल जी के कारण इस युग की आलोचना में मौलिकता आ गई। परिपक्व चिंतन को बल मिला।

शुक्ल युग की आलोचना पद्धति की विशेषताएँ :-

शुक्ल जी ने आलोचना के क्षेत्र में युगांतरकारी परिवर्तन किया। इनके समय में आलोचना में निखार आया। उन्होंने भारतीय चिंतन के साथ पाश्चात उपयोगी आलोचना सिद्धांतों को स्वीकार करके आलोचना का एक दृढ़ स्वरूप निर्मित किया।

1. आचार्य शुक्ल जी ने आलोचना को स्तरीय रूप प्रदान किया।
2. इस काल में प्राचीन कवियों पर खूब लिखा गया।

3. इस युग में भारतीय चिंतन के साथ पाश्चात्य आलोचना के मानदंड़ों का समुचित उपयोग किया गया।

4. इनकी आलोचना में मौलिकता, पांडित्य और सूक्ष्म दृष्टि देखने में आती हैं।

5. सैद्धांतिक आलोचना के साथ-साथ व्यावहारिक आलोचना का अच्छा विकास इस युग में हुआ।

6. इस काल में सैद्धांतिक आलोचना के अनेक गंभीर ग्रंथ लिखे गए।

शुक्ल युग के प्रधान आलोचक, लेखक :-

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल :-

शुक्ल जी हिंदी के सर्वप्रथम समर्थ आलोचक रहे। हिंदी आलोचना क्षेत्र में इनका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इनका कार्य बड़ा ही ठोस और गंभीर रहा। इनके कारण आलोचना शास्त्र के नए युग द्वार खुल गए। उन्होंने साहित्यकार की रचना को तत्कालीन सामाजिक आलोक में रखकर उसकी समीक्षा की। उन्होंने हिंदी साहित्य का प्रामाणिक, समीक्षात्मक इतिहास लिखा। इसमें अपने समकालीन लेखकों द्वारा की गई समीक्षाओं आदि का खंडन-मंडन करते हुए एक निश्चित दृष्टिकोण के आधार पर हिंदी साहित्य के कालों में रचित साहित्य का मूल्यांकन किया।

आलोचना के सिद्धांतो और मानदंड़ों को प्रतिपादित करने वाले उनके ग्रंथ इसप्रकार हैं :-

'रसमीमांसा', 'त्रिवेणी' और 'चिंतामणि (भाग 2)', 'तुलसी ग्रंथावली', 'भ्रमरगीत सार', 'जायसी ग्रंथावली' में उन्होंने तुलसीदास, सूरदास तथा जायसी के कृतित्व की विस्तृत समीक्षाएँ प्रस्तुत की।

'चिंतामणि (भाग 2)' में और प्रथम भाग के कुछ लेखों में शुक्ल जी के साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

उनकी शैली में प्रौढ़ता, गंभीरता, सूक्ष्मता, सरसता, प्रवाह और अपूर्व बल है।

2. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी :-

शुक्ल जी के बाद समालोचकों में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्होंने हिंदी समालोचना को अधिक संगत और वैज्ञानिक बनाने में बड़ा योगदान दिया है। हिंदी के छायावादी काव्य को अपना प्रबल समर्थक एवं आलोचक नंददुलारे जी के रूप में मिला था। हिंदी के छायावादी काव्य के सर्वप्रथम सहृदय व्याख्याता भी आप ही रहे। उन्होंने बहुत ही तर्कपूर्ण एवं प्रामाणिक ढंग से छायावाद की सामाजिक संदर्भ में व्याख्या की, छायावाद की विशेषताएँ बताई। प्रसाद, पंत और निराला पर उन्होंने अलग-अलग तीन निबंधों के माध्यम से 'छायावाद की बृहद त्रयी' की घोषणा की। उनके अनुसार प्रसाद के काव्य में 'मानवीय भूमि' पंत के काव्य में 'कल्पनातत्व' तथा निराला के काव्य में 'बुद्धितत्व' की प्रधानता हैं। आलोचकों द्वारा छायावादी कवि जब कुण्ठित हो रहे थे, उसी समय वाजपेयी जी ने उनका (कवियों का) समर्थन किया।

उनके आलोचनात्मक निबंधों में उनकी काव्यविषयक गहरी पकड़ तथा तीक्ष्ण विश्लेषणक्षमता के दर्शन होते हैं। वाजपेयी जी ने समालोचना को अधिक संगत और वैज्ञानिक बनाते हुए 'हिंदी साहित्य', 'बीसवी शती', 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य', 'नए प्रश्न', 'महाकवि सूरदास' आदि समालोचक कृतियों को जन्म दिया।

3. डॉ. रामविलास शर्मा :-

डॉ. रामविलास शर्मा प्रगतिवादी समीक्षा युगानुरूप सत्साहित्य के प्रेरक है। वे मार्क्सवादी दर्शन के प्रबल समर्थक हैं। हिंदी समालोचना को प्रगतिशील विचारधारा की ओर अग्रसर करने में डॉ. रामविलास शर्मा जी का नाम अग्रसर रहा हैं। इनकी आलोचना बड़ी प्रखर और मौलिक सूझ-बूझवाली होती है.

डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य की समस्याओं का निरूपण किया है। उनकी राय से प्रगतिवादी समीक्षा ने दो वस्तुएँ मुख्य रूप से हमें दी हैं - एक तो काव्य साहित्य का संबंध सामाजिक वास्ववता से है और वही साहित्य मूल्यवान हैं जो उक्त वास्तविकता के प्रति सजग और संवेदनशील है. दूसरे साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना दूर होगा उतना ही काल्पनिक और प्रतिक्रियावादी बनेगा।

व्यापक और गहरे अध्ययन मनन के बाद डॉ. रामविलास जी ने आलोचाना लिखी है।

'प्रेमचंद और उनका युग', 'भारतेंदु हरिश्चंद्र', 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', 'निराला की साहित्य साधना', 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी जनजागरण', 'अस्तित्ववाद और नई कविता' आदि इनकी महत्वपूर्ण समालोचनात्मक रचनाएँ हैं।

4. शुक्लोत्तर युग

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात हिंदी समालोचना बड़ी ही द्रुत गति से आगे बढ़ रही थी। देश की तेजी से परिवर्तित होनेवाली परिस्थितियों तथा विदेशी साहित्य एवं विचारधाराओं के प्रभाव के कारण हिंदी में कई प्रकार की समीक्षा पद्धतियों का निर्माण हुआ। प्रधानतः आलोचना की चार पद्धतियाँ विकसित हुई।

1. शुक्ल जी की मर्यादावादी शास्त्रीय पद्धति।
2. फ्राईड, एडलर युंग के मनोविश्लेषणशास्त्र से प्रभावित मनोवैज्ञानिक पद्धति।
3. मार्क्स के विचारों और नई समाजवादी चेतना से निकली प्रगतिवादी पद्धति।
4. वैयक्तिक रूचि पर आधारित प्रभाववादी पद्धति।

शुक्ल युग के प्रमुख आलोचक :-

1. नंददुलारे वाजपेयी :-

वाजपेयी जी हिंदी के समर्थ आलोचक थे। शुक्ल जी के वे सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारी रहे तथा उन्हीं के समान दृढ़ तथा निर्भिक आलोचक थे।

हिंदी में सबसे पहले उन्होंने ही छायावादी काव्य का निष्पक्ष और संतुलित मूल्यांकन कर उसके महत्व की प्रतिष्ठा कर दी थी। उन्होंने छायावादी युग प्रवृत्ति को एक स्वस्थ और समृद्ध प्रवृत्ति घोषित किया।

प्रमुख रचनाएँ :-

'हिंदी साहित्य की बीसवी सदी', 'आधुनिक साहित्य' इनकी सर्वप्रथम आलोचनात्मक रचनाएँ हैं।

'महाकवि सूरदास', 'निराला', 'नया साहित्य - एक प्रश्न', 'सूरसंदर्भ', 'प्रेमचंद - साहित्यिक विवेचन' आपकी अन्य रचनाएँ हैं।

कवि की परिस्थिति, उसके मनोभाव आदि पर भी वाजपेयी जी ने सहानुभूतिपूर्ण विचार किया है। हिंदी समालोचना को अधिक संगत और वैज्ञानिक बनाने में आप का योगदान महत्वपूर्ण हैं।

2. आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी :-

शुक्लोत्तर युग के एक और महत्वपूर्ण आलोचक हजारीप्रसाद द्विवेदी जी है। उनमें बोध और पांडित्य का अद्भुत मिश्रण था। उनकी विशेषता है कि शुक्ल जी से अलग उनकी मानवतावादी दृष्टि तथा ऐतिहासिक पद्धति। इन्होंने दो प्रकार की आलोचनाएँ लिखी हैं। पहली सैद्धांतिक तथा दूसरी व्यावहारिक आलोचना। प्राचीन भारतीय समीक्षा सिद्धांतों और नवीन पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों का समन्वय करके एक स्वस्थ, संतुलित समीक्षा प्रणाली की इन्होंने स्थापना की।

आलोचना साहित्य :-

'सूर साहित्य', 'कबीर', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी कविता', 'नाथ-संप्रदाय', 'मध्यकालीन धर्म साधना' आदि आप के आलोचनात्मक ग्रंथ हैं।

3. डॉ. रामविलास शर्मा :-

डॉ. शर्मा मार्क्सवादी दर्शन के प्रबल समर्थक हैं। हिंदी समालोचना को प्रगतिशील विचारधारा की ओर अग्रसर करने में डॉ. रामविलास शर्मा जी का नाम सर्वप्रमुख हैं। इनकी आलोचना बड़ी प्रखर और मौलिक सूझ-बूझवाली होती है। व्यापक और गहरे अध्ययन-मनन के बाद ये आलोचना लिखते हैं।

आलोचना साहित्य :-

'प्रेमचंद और उनका युग', 'भारतेंदु हरिश्चंद्र', 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', 'निराला की साहित्य साधना' आदि आपकी महत्वपूर्ण समालोचनात्मक रचनाएँ हैं।

5. साठोत्तर युग (नई आलोचना)

साहित्य की अन्य विधाओं में नएपन के समान आलोचना क्षेत्र में भी लगभग 1960 के समय नएपन ने प्रवेश किया। अब की इस आलोचना पर अमरिकी विद्वान जॉन क्रो रेन्शम की पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज्म' तथा शिकागो स्कूल के आलोचकों का प्रभाव है।

नए आलोचक आलोचना को वैज्ञानिक आधार देता है। वह रचनाकार का परिवेश, वातावरण आदि को महत्व नहीं देता। उसकी दृष्टि से रचना में प्रयुक्त भाषा की स्थिति में विसंगति, विडंबना, तणाव उसकी घनता आदि का ज्यादा महत्व है। आलोचक कृति की भाषिक संरचना पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। आलोच्य वस्तु को ही उसका प्रतिमान मानता है। रचना के आंतरिक अंगों की तरफ नहीं तो रचना के अन्य अंगों के साथ अपेक्षित अनुबद्धता को परखना चाहता है।

इस काल के उल्लेखनीय आलोचक हैं -

डॉ. देवीशंकर, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रघुवंश, डॉ. देवराज, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. शंभुनाथ सिंह, नेमिचंद्र जैन आदि।

कुछ नए कवियों में भी आलोचकोचित गहरी व प्रखर समीक्षा शक्ति दिखाई देती है। उसमें मुख्य है - अज्ञेय, गजानन माधव 'मुक्तिबोध', गिरीजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि।

हिंदी गद्य के विभिन्न अंगों पर भी समीक्षा लेखन का स्वतंत्र कार्य आरंभ हुआ। डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने समीक्षात्मक निबंधों में समीक्षा को एक नई दिशा प्रदान की। डॉ. नामवर सिंह की 'कहानी और कहानी', डॉ. इंद्रनाथ मदान की 'आज का हिंदी उपन्यास', डॉ. बच्चन सिंह की 'आलोचक और आलोचना' ऐसी पुस्तकों से समीक्षा में नई दिशाओं के संकेत मिलते हैं।

आज की नई समीक्षा पद्धति पर पाश्चात्य समीक्षकों रेतसम, राबर्ट पेन वारेन, ब्लैकमर आदि का प्रभाव देखा जा सकता है। हिंदी समीक्षा पद्धति का भारतीय काव्यशास्त्र से तो प्रायः संबंध विच्छंद सा हो गया है, उसके स्थान पर पश्चिम के आधुनिकतम समीक्षा सिद्धांतों को अधिकाधिक अपनाया जा रहा है। आलोचना को वैज्ञानिक आधार देना बुरा नहीं किंतु पाश्चात्य समीक्षा की कोरी नकल करना अवांछनीय है।

पुस्तक समीक्षा का भी समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा है। प्रतीक आलोचना, वार्षिकी, माध्यम आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर पुस्तकीय समीक्षाएँ प्रकाशित होती रही हैं।

आज हिंदी साहित्य के आलोचना क्षेत्र में पाश्चात्य आलोचना प्रतिमानों का अंधानुकरण की प्रवृत्ति अपेक्षा से ज्यादा बल पकड़ रही है। इससे आलोचना की मूल प्रवृत्ति ही नीजी अनुभूतियाँ उपेक्षित होती जा रही है। आधुनिकता के नामपर, यथार्थ के नाम पर जीवन तथा साहित्य को निराशा और अतिभोगवाद की ओर ढकेला जा रहा है। परंपराओं का रिश्ता तोड़ नए प्रतिमानों की जोरदार नारेबाजी से साहित्य और जनमानस में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता है। ऐसी दशा में आलोचना क्षेत्र में अराजकता की स्थिति अनिवार्य है। इसप्रकार की आलोचना द्वारा साहित्य का विकास न होकर ऱ्हास अवश्यभावी है।

आज के प्रगतिशील समीक्षक के सम्मुख यह एक बड़ा दायित्व है कि वह अपनी प्रगतिशील समीक्षा को वर्ग विशेष की आलोचना की एकांगिता के पूर्वग्रह तथा प्रचार समीक्षा के सीमित स्वार्थ से मुक्त रखकर उसे उन समस्त स्वस्थ प्रतिमानों से मंडित करे जिनसे साहित्य की उर्वरता और उदात्तता अक्षुण्ण रह सके।

* * *

6. आधुनिक हिंदी काव्य का विकास

प्रस्तावना :-

हिंदी साहित्य विकास के संदर्भ में 'आधुनिक काल' एक तरह से संधिकाल मानना ठीक रहेगा। इस काल में प्राचीन और नवीन दोनों तरह के साहित्य को सुरक्षित रखा गया।

कविता के क्षेत्र में भी हम कह सकते हैं इस युग के कवियों ने नवीन के प्रति मोह के साथ प्रचीन के प्रति आग्रह भी किया।

हिंदी काव्य साहित्य के विकास के प्रथम चरण में जिस काल को 'पुनर्जागरण का काल' कहना उचित है - भारतेंदु जी ने देशभक्ति के साथ साहित्य सृजन भी मनःपूर्वक किया।

साहित्य विकास के दूसरे चरण में द्विवेदी जी ने 'सरस्वती पत्रिका' के प्रकाशन के साथ-साथ ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग किया। गद्य और पद्य दोनों क्षेत्र में हिंदी को एक संस्कारित रूप दिया। प्रथम चरण की अपेक्षा इस काल की कविता में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक उभरा, विज्ञान की प्रगति का द्योतक बुद्धिवाद काव्य में अधिक छलका। परिणामस्वरूप प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों, मूल्यों का काफी खंडन किया गया।

विकास का तीसरा चरण अर्थात हिंदी काव्य साहित्य का यौवन काल 'छायावादी युग' कहलाता है। इस काल के कवियों ने हिंदी काव्य परंपरा को विकसित और परिमार्जित किया। प्रसाद, पंत, निराला इस 'छायावाद की बृहद त्रयी' ने छायावादी काव्य में भावों की कोमलता, अनुभूति की संवेदना विद्यमान हैं।

'छायावादोत्तर काल' आधुनिक हिंदी काव्य के विकास का चतुर्थ चरण है। प्रगतिवादी साहित्य प्रवृत्तियाँ, दलित-पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति, मार्क्सवाद का असर, नारी स्वतंत्रता, मानवतावाद आदि विशेषताओं के साथ हिंदी काव्य साहित्य पुष्ट होता गया। सरलता, व्यंग्यात्मकता, मुक्तछंद, गीतिशैली, अलंकारों के आडंबरों का बहिष्कार काव्य शैली की विशेषताएँ बन गई।

छायावादोत्तर काल के बाद प्रगतिवाद समाजवाद के साथ हिंदी साहित्य आगे बढ़ा। यथार्थवाद, मनोविश्लेषणवाद तथा विज्ञानवाद से सारा संसार एक नयापन विकास महसूस करता गया। साहित्य के साथ हिंदी काव्य भी इनको अपनाकर नई कविता के रूप में विकसित हुआ।

1. भारतेंदु युग (पुनर्जागरण काल)

'भारतेंदु युग' हिंदी कविता का जागरण का युग है। इस समय पहली बार समाज को तत्कालीन रूप या स्थिति के विषय में चित्रण करने वाली अभिव्यक्ति हुई। ऐसे समय भारतेंदु हरिश्चंद्र का उदय हुआ।

इनके काव्य में भक्ति, शृंगार और राष्ट्रीयता इन तीनों रसों का अनूठा संगम रहा। उनकी राष्ट्रभक्ति की सूचक ये पंक्तियाँ हैं -

"अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात, यहै अति ख्वारी।।"

भारतेंदु जी प्राचीन परिपाटी का अनुसरण करते हुए भी नूतनता की ओर अग्रसर रहे। इनके काव्य में तत्कालीन जनमानस रूप प्रतिबिंबित हुआ है।

अकाल, महामारी, राजनीतिक विषमता, आर्थिक शोषण, नारीसुधार, धर्म समाज शिक्षा आदि के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को प्रकट करना, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों का खंडन किया गया, देशप्रेम की भावना का पोषण हुआ। विधवाओं की दशा का वर्णन बालविवाह का विरोध किया गया। गद्य विधा का विकास इस काल की विशेषता रही परंतु काव्य जगत में भी इनका अंकन किया गया।

जनता की भाषा में जनता की बात काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त हुई यह भारतेंदु युग की सबसे बड़ी देन थी।

भारतेंदुयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :-

भारतेंदु युग का काव्य साहित्य विस्तृत तथा विविधतापूर्ण रहा। इनकी काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है -

1. राष्ट्रीयता :-

इस युग के कवियों ने भारतीय इतिहास के गौरव को जगाया, लोगों में राष्ट्रीय भावना जगाने का प्रयास किया। इस काल के कवियों में प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, भारतेंदु इनका समावेश होता हैं।

2. सामाजिक चेतना :-

सामाजिक जीवन की उपेक्षा न कर जनता की समस्याओं की ओर ध्यान देना तथा उसे व्यापक रूप देना इस काल के कवियों ने उचित समझा। परतंत्र भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना आदि तत्कालीन महत्वपूर्ण मुद्दों को सहानुभूति से सोच समझकर उनको शब्दरूप देने का प्रयत्न किया गया। जिंदादिल कवि भारतेंदु ने -

"रोवहु सब मिलि आवहु भारत आई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।"

इन शब्दों में भारतीय समाज की पीड़ा को व्यक्त किया।

3. भक्तिभावना :-

परंपरागत धार्मिकता और भक्तिभावना को इस काल में गौण स्थान प्राप्त हुआ। इस काल में सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति तथा वैष्णवभक्ति इन तीन प्रकार की भक्ति काव्य की रचना की गई। संसार की मोहमाया, नश्वरता, विषयासक्ति की निंदा आदि विषयों पर कविताएँ की गई। वैष्णवभक्ति के अंतर्गत अनेक कवियों ने राम-कृष्ण और अन्य देवी देवताओं का वर्णन किया है। धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय भावना पर इन कवियों ने उदारता का परिचय दिया है। देशभक्ति का भी ईश्वरभक्ति से समन्वय करने की प्रवृत्ति इस काल में दिखाई देती है।

4. शृंगारिकता :-

भारतेंदु काल के कवियों ने शृंगार रस को काव्य की आत्मा मानकर अपनी रचना को अभिव्यक्त किया है। प्रतापनारायण मिश्र को छोड़कर प्रायः सभी मुख्य कवि अपनी कविताओं में भक्ति, शृंगार और विशुद्ध शृंगार की ओर बढ़े। परंतु उन्होंने 'नखशिख' और 'नायिकाभेद' पर परंपरागत काव्यशैली में काव्यरचना की है।

5. हास्य-व्यंग्य :-

हास्य-व्यंग्यात्मक कविताओं की रचना भी भारतेंदु काल में प्रचुर मात्रा में हुआ। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों पर व्यंग्य करने के लिए कवियों ने विषय और शैली की दृष्टि से अनेक प्रयोग किए। प्रतापनारायण मिश्र तथा प्रेमघन इनमें प्रमुख हैं।

6. रीति निरुपण :-

रीति निरुपण की दिशा में भी इस काल में योगदान दिया गया। बालगोविंद मिश्र ने इस काल में 'भाषा-छंद-प्रकाश' लिखा। कन्हैयालाल पोद्दार कृत 'अलंकार प्रकाश' और 'कविराजा मुरारीदान का जसवंत जसोभूषण इसी काल की रचनाएँ हैं। काव्यशास्त्र के पद्य की चिरपरिचित सीमाओं से मुक्ति करके उसे नए आयाम प्रदान किए गए।

7. समस्यापूर्ति :-

समस्यापूर्ति यह एक अत्यंत लोकप्रिय काव्यपद्धति थी। कवियों की प्रतिभा तथा रचना कौशल को परखने के लिए कवि गोष्ठियों और कवि संमेलनों में कठिन विषयों पर समस्यापूर्ति कराई जाती थी। इनमें प्रशंसा प्राप्त करना गौरव की बात समझी जाती थी।

8. काव्यानुवाद :-

भारतेंदु काल में संस्कृत से तथा अंग्रेजी से काव्यानुवाद भी किए गए। राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुदित 'रघुवंश' और 'मेघदूत', श्रीधर पाठक कृत 'गोल्ड स्मिथ कृत हरमिर' का अनुवाद इन्हीं में से है। खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा दोनों का ललित रूप में प्रयोग करने का और अंग्रेजी की काव्यकृतियों का भाषांतरण करना इसका श्रेय भारतेंदु जी को ही देना चाहिए।

9. कलापक्ष :-

काव्यरूप की दृष्टि से इस काल के कवियों ने प्रधान रूप में मुक्तक काव्य की रचना की है। लोकसंगीत की शैली भी उस काल में लोकप्रिय थी। दोहा, चौपाई, सोरठा, कुंडलिया, रोला, हरिगीतिका आदि मात्रिक छंद और सवैया, मंदाक्रांता, शिखरिणी आदि वार्णिक छंद कवियों के बीच विशेष तौर पर प्रभावित रहे।

10. प्रकृतिचित्रण :-

प्राकृतिक सौंदर्य का स्वच्छंद वर्णन भारतेंदुयुगीन कविता की एक विशेषता रही। परंतु अधिकतर कवियों ने परंपरा का ही निर्वाह किया।

भारतेंदुयुगीन कवि :-

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र :-

एक समृद्ध वैश्य परिवार के सदस्य भारतेंदु हरिश्चंद्र 'गिरिधरदास' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। बचपन में ही वे मात-पितृछाया से वंचित रहे।

प्राथमिक शिक्षा से लेकर उनकी शिक्षा घर में ही हुई। हिंदी, अंग्रेजी तथा उर्दु का उन्होंने अध्ययन किया। इनके अतिरिक्त मराठी, गुजराती, बंगला, संस्कृत आदि भाषा भी वे सीख चुके थे। भारतेंदु साहित्य की सेवा तो

करते ही थे साथ में समाजसेवा भी। उन्होंने कई स्कूल खोले, वाचनालय खोले, परीक्षाएँ निर्धारित की, सभा-क्लब्ज का आयोजन किया। 'हरिश्चंद्र डिग्री कॉलेज' उन्होंने ही स्थापित किया हुआ है। बचपन से ही वे कविता करने लगे थे। उनकी काव्य प्रतिभा, सर्वतोमुखी रचना क्षमता के कारण उस समय के पत्रकार तथा साहित्यकारों ने उनको भारतेंदु उपाधि से सन्मानित किया।

पत्रिकाएँ :- 'बालबोधिनी', 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रकाशन किया।

काव्यकृतियाँ :- सत्तर काव्यकृतियाँ जिनमें 'प्रेममालिका', 'प्रेमसरोवर', 'गीतगोविंदानंद', 'वर्षाविनोद', 'विनय प्रेम पचासा', 'प्रेम फुलवारी', 'वेणुगीति' उल्लेखनीय काव्यकृतियाँ।

प्रमुख विशेषताएँ :-

भारतेंदु जी अपनी अनेक रचनाओं में एक ओर प्राचीन काव्य-प्रवृत्तियों के अनुमति रहे तो दूसरी ओर नवीन काव्यधारा की ओर भी आकृष्ट रहे। राजभक्ति के साथ उन्होंने देशभक्ति भी की। नायक-नायिका के सौंदर्य वर्णन में ही न रमकर उन्होंने उनके लिए नवीन कर्तव्यक्षेत्रों का भी निर्देश किया।

इतिवृत्तात्मक शैली के साथ उनमें हास्य व्यंग्य का पैनापन भी उनके काव्य में मौजुद है। उर्दू, खड़ीबोली हिंदी और ब्रजभाषा का उपयोग उन्होंने कविताएँ लिखने के लिए किया। छंदोबद्ध कविताओं के साथ उन्होंने गेय पद शैली में भी अपना प्रतिभा कौशल दिखाया है।

भारतेंदु जी अपने समय के उच्च कोटि के कवि थे। उन्होंने पाँच प्रकार की काव्य रचनाएँ प्रस्तुत की। भक्तिप्रधान, शृंगारप्रधान, देशप्रेमप्रधान, सामाजिक समस्याप्रधान, प्रकृतिचित्रण प्रधान रचनाएँ। भारतेंदु जी नवयुग के अग्रदूत थे। अपनी ओजस्विता, सरलता, भाव मर्मज्ञता और प्रभविष्णुता में उनका काव्य इतना प्राणवान है कि इस युग का शायद ही कोई कवि उनसे अप्रभावित रहा हो।

2. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' :-

बद्रीनारायण चौधरी भारतेंदु मंगल के एक प्रमुख सदस्य तथा श्रेष्ठ कवि थे। मिर्जापुर के एक संपन्न ब्राह्मण परिवार में जन्मे चौधरी जी प्रवृत्ति और प्रकृति से रईसी ठाठ-बाट में रहने वाले आदमी थे। हिंदी के साथ फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत भाषा भी वे अच्छीतरह जानते थे।

कवि के रूप में ही उनकी साहित्य सेवा की शुरुआत हुई। 'कजली' लिखने में उन्हें विशेष रूचि थी। इनकी कजली संग्रह 'कजली कादंबिनी' के नाम से प्रकाशित हुआ।

'अब्र' नाम से उन्होंने उर्दू में कुछ कविताएँ लिखी।

रचनाएँ :-

'जीर्ण जानपद', 'आनंद अरुणोदय', 'हार्दिक हर्षादर्श', ' मयंक महिमा', 'वर्षा बिंदु' इन रचनाओं के साथ 'प्रेमघन सर्वस्व' प्रथम भाग में उनकी अन्य रचनाएँ संकलित की गई हैं।

विशेषताएँ :-

दोहों और 'वृजचंद्र पंचक' में उनकी काव्यरचना दिखाई देती हैं। उनकी शृंगारिक कविताएँ रसिक संपन्न और रसिकमान्य हैं। समस्यापूर्ति के कौशल में भी वे निपुण थे।

काव्य के विषय :-

इनके काव्य के वर्ण्य विषय जातीयता, समाजदसा और देशप्रेम हैं। देश की दुरवस्था के कारणों और देश की उन्नति के उपायों का विपुल वर्णन इनकी कविता में दिखाई देता हैं। जो इनके सच्चे देशभक्ति का परिचायक हैं।

शैली :-

कजली, होली, लावनी आदि शैली में लोकगीतात्मक कविताएँ लिखी।

ज्यादातर रचनाएँ ब्रजभाषा में की। प्रेमघन वस्तुतः 'भारतेंदु मंडल' के उल्लेखनीय कवियों में से जिनकी खड़ीबोली का अधिकांश रचनाएँ समसामायिक सामाजिक, राजनीतिक चेतना से ओतप्रोत है।

3. प्रतापनारायण मिश्र :-

भारतेंदु मंडल के श्रेष्ठ कवि प्रतापनारायण मिश्र जी भावुक प्रकृति के कवि थे। बचपन से ही उनको कविता में रूचि थी। अपने मनमौजीपन और मस्ती के कारण वे विशेष प्रसिद्ध थे।

रचनाएँ :-

मन की लहर, 'शृंगार विलास', 'प्रेम पुष्पावली', 'दंगलखंड', 'तुष्यंताम्', 'मानस विनोद', 'शैल सर्वस्व'।

विशेषताएँ :-

तत्कालीन समस्याओं को अपने काव्य में स्थान दिया। हास्य व्यंग्यात्मक कविता लिखने में अग्रणी रहे। समस्यापूर्ति करना खूब जानते थे। इनकी सवैया का स्वर भक्ति और शृंगार का होता था।

शैली :-

लावणी शैली में अनेक कविताएँ लिखी। मुख्यतः ब्रजभाषा को अपनाया। खड़ी बोली में उतना लगाव नहीं था।

4. अंबिकादत्त व्यास :-

कविवर दुर्गादत्त व्यास जी के बेटे और सनातन धर्म के अनुयायी एवं प्रचारक थे। अपने कवि जीवन की शुरुआत उन्होंने भारतेंदु द्वारा स्थापित 'कविता वर्धिनी सभा' से किया।

रचनाएँ :-

कुल 78 रचनाएँ की। हिंदी और संस्कृत में। 'पावन पचासा', 'सुकवि सतसई', 'हो ही होही' उल्लेखनीय कृतियाँ।

खड़ी बोली में - 'कंस वध' रचना। समस्यापूर्ति के क्षेत्र में इनकी भी धाक जमी हुई थी।

विशेषताएँ :-

इन्होंने अपनी कविताओं में सरल और कोमलकांत पदावली के प्रयोग को प्राधान्य दिया। अतुकांत काव्य लिखने का प्रयास किया।

5. ठाकुर जगमोहनसिंह :-

मध्यप्रदेश के विजयरागवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। काशी में रहकर संस्कृत और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। भारतेंदु जी से तब संपर्क हुआ। वे उनके खास दोस्त थे।

रचनाएँ :-

'श्यामालता', 'श्यामा सरोजिनी', 'देवयानी', 'मेघदूत' और 'ऋतूसंहार' अनुदित रचनाएँ। जो इन्होंने ब्रजभाषा में लिखीं।

विशेषता :-

स्वाभाविक प्रतिभा, भावुक मनोवृत्ति। सरस मधुर ब्रजभाषा की रचनाएँ। अलंकार विधान भी उत्कृष्ट हैं।

6. अन्य कवि :-

राधाकृष्णदास - 'भारत बारहमासा', 'देशदशा'।

बालमुकुंद गुप्त - अंग्रेज राज्य के कारण टूटती सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था का मार्मिकता से वर्णन किया।

आचार्य शुक्ल जी ने भारतेंदु के जीवन के विश्लेषण के संदर्भ में निम्न कथन दिया है जो प्रायः उस समय के सभी कवियों पर समान रूप से लागू होता है।

2. द्विवेदी युग (जागरण-सुधार काल)

इस युग के साहित्य के प्रमुख सूत्रधार तथा प्रवर्तक, इस युग के प्रधान साहित्यिक महावीरप्रसाद द्विवेदी को इस युग का श्रेष्ठ पुरुष माना जाता हैं। सरस्वती पत्रिका को संपादन का उत्तरदायित्व उन्होंने काफी साल तक किया। इसी पत्रिका के माध्यम से उन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली के संदर्भ में स्थित सभी विचारों को मिटाने की चेष्टा की। साहित्य के गद्य-पद्य को समान रूप से महत्व देकर खड़ीबोली की व्याकरणसम्मत परिष्कृत एवं संस्कारित रूप देने का श्रेय भी द्विवेदी जी को ही जाता है।

इस युग में राष्ट्रीयता का स्वर अधिक उभर आया। काँग्रेस का स्वाधीनता आंदोलन तथा विज्ञान युग की बौद्धिकता की छाप इस काल की कविता पर स्पष्ट दिखाई देती हैं।

इस युग में निसंदेह खड़ीबोली में सुस्पष्टता और मधुरता व्यंजना में गंभीरता और कोमलता आदि गुण आ गए थे। फिर भी उस भाषा में एक अटपटेपन की कमी थी जो बाद में छायावाद ने पूरी की।

अपने काल की समृद्धि तथा सांस्कृतिक वैभव से साहित्य ने प्रेरणा ली। प्रकृति सौंदर्य के चित्रण ने साहित्य में नया रूप प्रकट किया।

राम-कृष्ण जैसे चरित्रों को आधुनिक संवेदना देकर साहित्य में प्रस्तुत किया। सरस्वती पत्रिका ने पढ़ने वालों की संख्या बढ़ाई। नवीन विषयों की ओर लेखकों का ध्यान भी आकर्षित किया।

द्विवेदीयुगीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ :-

हिंदी साहित्य के विकास में इस काल में युगांतरकारी कार्य हुआ। साहित्य को एक तरह से परिष्कृत रूप मिला। इस काल के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ (प्रवृत्तियाँ) इस प्रकार थी -

1. खड़ीबोली की पूर्ण प्रतिष्ठा :-

यद्‌यपि भारतेंदु काल में भी ब्रज के साथ खड़ीबोली में काव्यरचना के प्रयत्न किए गए। फिर भी द्‌विवेदी युग में खड़ीबोली को पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। मैथिलीशरण गुप्त ने सबसे पहले खड़ीबोली में 'जयद्रथ वध' नामक खंडकाव्य लिखा। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपना प्रथम खंडकाव्य 'प्रियप्रवास' की रचना की। एक प्रकार से खड़ीबोली को हिंदी काव्य में प्रतिष्ठा मिलने लगी।

2. राष्ट्रीय भावना :-

इस युग की काव्यरचना का प्रधान स्वर राष्ट्रीय भावना का उत्थान है। इस युग के प्रायः सभी कवियों ने देशभक्तिप्रधान रचनाएँ प्रस्तुत की। पराधीनता का दुख राष्ट्रीय चेतना की जागृति को काव्य में प्रकट करके स्वातंत्र्य प्राप्ति के प्रयत्नों में सहभाग लिया गया। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, नाथूराम शर्मा आदि कवियों ने जनता में साहस, देशप्रेम, राष्ट्रसम्मान, मातृभक्ति आदि गुणों के उदय के लिए प्रयत्न काव्यरचना को माध्यम बनाकर किए। अपनी देशभक्ति का परिचय देकर जनता का ध्यान राष्ट्रीय भावना की ओर आकर्षित किया।

3. समाज के साधारण वर्ग का वर्णन :-

इस युग में समाजसुधार की भावना और भी बढ़ी थी। साधारण मानव को गौरव प्राप्त हुआ था। मनुष्य भी सुख-दुख की विविध भाव-भावनाओं का वर्णन साहित्य में सहज भाव से किया जाने लगा था।

हीन दीन वर्ग के प्रतिनिधि कृषक, विधवा आदि का भी वर्णन कवियों ने अपने काव्यद्‌वारा किया। नाथूराम शर्मा ने 'गर्भखंड रहस्य' नामक रचना में गर्भ में ही विधवा हो जानेवाली नारियों के कष्टमय जीवन का बड़ा मार्मिक चित्रण किया। शिक्षाविहीन नारियों के चित्र भी वर्णन किए गए।

इसप्रकार साधारण वर्ग को द्‌विवेदी युग में वर्ण्य विषय बनाया गया।

4. नीति और आदर्श :-

इस युग के काव्य का स्वरूप नीतिपरक तथा आदर्शवादी था। काव्य में भी असत् पर सत् की विजय दिखाते हुए कर्तव्य पालन, आत्मगौरव आदि उच्च आदर्शों की प्रेरणा दी गई है। हरिऔध द्‌वारा प्रेमप्रवास, मैथिलीशरण गुप्त जी का साकेत, गोकुलचंद वर्मा का गांधीगौरव आदि रचनाएँ आदर्शवाद के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

5. वर्ण्य विषय का क्षेत्र विस्तार :-

द्‌विवेदी काव्य में काव्य के विषयों में विविधता आई। आचार्य महावीर प्रसाद द्‌विवेदी ने तो लिखा है कि 'चींटी से लेकर हाथी तक के पशु, भिक्षुक से लेकर राजा तक के मनुष्य, जल से सागर तक सभी पर कविता हो सकती थी।

इस काल में काव्य में प्रकृति भी स्वतंत्र विषय बन गई। मैथिलीशरण गुप्त, रामचंद्र शुक्ल, गिरिधर शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, हरिऔध आदि के काव्य में प्रकृति का अतीव मनोवेधक चित्रण मिलता है।

6. हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य :-

वास्तविकता यह है कि पूर्व युगीन जिंदादिली या हास्य-व्यंग्य के लिए आवश्यक फक्कड़पन इस युग के काव्य में नहीं रहा, परंतु राजनीतिविषयक शोषण, सामाजिक कुरितियाँ, धर्मावडंबर, पाश्चात्यों का अंधानुकरण,

व्यभिचार आदि विषयों पर जरूर कविताएँ लिखी गई। बालमुकुंद गुप्त इस युग के बड़े सशक्त व्यंग्यकार है। नाथूराम शर्मा - 'गर्भरण्ड रहस्य' में कवि ने गर्भ में ही विधवा हो जानेवाली बालिका के माध्यम से सामाजिक कुरीति का पर्दाफाश किया है।

7. काव्यरूपों का वैविध्य :-

इस युग में निर्मित काव्य के विविध रूपों को देखा जा सकता है। जैसे :- प्रियप्रवास', 'साकेत', 'रामचरित चिंतामणि'। प्रबंध काव्य - 'जयद्रथ वध', 'रंग में भंग', 'वैदेही वनवास' आदि खंडकाव्य, शकुंतला जन्म, केशों की कथा आदि पद्यकथाओं की इस काल में निर्मिति हुई। प्रबंध मुक्तक काव्य की रचना इस काल में की गई। प्रगीतों के लिखने की शुरुआत इसी काल में हुई।

8. इतिवृत्तात्मकता :-

वृत्तांत या वर्णन को इतिवृत्त कहा जाता है। ये काव्य वर्णनप्रधान है, जिसमें रसात्मकता का अभाव होते हुए भी कल्पनारंजितता नहीं होती थी।

9. छंद वैविध्य :-

यह काल छंदों की दृष्टि से काफी संपन्न काल है। दोहा, सवैया, रोला, छप्पय, कुंडलिया, सार सरस, लावनी, वीर आदि का कुशलतापूर्वक प्रयोग इस काल में किया गया। संस्कृत के छंदों का तथा उर्दू के छंदों का भी उपयोग किया गया।

10. अनुवाद करने की प्रवृत्ति :-

अनुवाद की तरफ भी इस काल में कवियों का ध्यान गया। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक आदि ने अनुवाद किए। इसमें मूल उद्देश्य यही होता था कि खड़ीबोली का साहित्य किसी न किसी प्रकार समृद्ध हो। खुद महावीरप्रसाद द्विवेदी इस बात के समर्थक थे।

द्विवेदी युग के प्रमुख कवि :-

भारतेंदु युग का पूरक युग के रूप में इस काल में काव्यक्षेत्र में काव्यरचना का निर्माण हुआ। कई काव्य प्रवृत्तियों का - जिनका आरंभ भारतेंदु युग से हुआ था - इस युग में सबल, सशक्त विकास हुआ। इस प्रक्रिया में शामिल कवियों की जानकारी इस प्रकार हैं -

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी :-

हिंदी साहित्य क्षेत्र में आधुनिक काल में भारतेंदु युग के बाद सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व द्विवेदी जी रहे हैं। उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव के निवासी द्विवेदी जी गरीब थे। आर्थिक दुर्बलता के कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा भी ठीक ढंग से न हो सकी।

अपनी रोज की जिंदगी के लिए उन्हें तीव्र संघर्ष करना पड़ा। साहित्य के प्रति रूचि उनको बचपन से ही थी। उर्दू के साथ साथ उन्होंने अंग्रेजी, मराठी, संस्कृत, बंगला, गुजराती आदि भाषाओं का अध्ययन भी किया था। नौकरी, अध्ययन और पत्र-पत्रिकाओं में लेखन वे बराबर करते रहे।

नौकरी छोड़कर वे 'सरस्वती पत्रिका' के संपादन बन गए। लगातार बीस साल वे साहित्यसेवा से जुटे रहे। संपादक के पद से दूर होने के बाद भी वे आजीवन लिखते रहे।

जिंदगी भर उन्होंने यही सोचकर साहित्य सृजन किया कि साहित्य काव्य समाज के नैतिक और पुष्ट मनोवृत्ति के लिए पोषक बने। स्वभावतः वे अत्यंत सरल, स्वाभिमानी, निर्भीक तथा निश्छल स्वभाव के थे। हिंदी को समृद्ध तथा उन्नत बनाना उनका जीवन उद्देश्य था।

अपनी जीवनी में उन्होंने हिंदी की अनेक कमजोरियों को दूर करके व्यवस्थित रूप दिया। एक प्रकार से वर्तमान हिंदी भाषा का रूप निर्धारित करने और उसे सजाने-सँवारने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा। इसी कारण विद्वानों ने उनके समय को हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग के नाम से उन्हें संबोधित किया है।

रचनाएँ :-

'काव्यकुंज', 'अबला विलाप', 'कुमारसंभवसार' (अनुदित), 'काव्यमंजुषा', 'सुमन', 'गंगालहरी', 'ऋतुतरंगिणी'। इनके काव्य में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता है। उन्होंने कविता में कहीं-कहीं संस्कृत की अनुप्रासयुक्त पदावली का भी प्रयोग किया है।

2. पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' :-

द्विवेदी युग से पूर्व ही शर्मा जी के 'आर्यसमाज' से प्रभावित होकर काव्य को ही अपनी प्रवृत्तियों, भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। अपनी जीवनी में तो शर्मा जी एक वैद्य थे जिन्हें 'पीयूष पाणी वैद्य' कहकर पुकारा जाता था। पहले वे ब्रजभाषा में कविता करते रहे। बाद में खड़ीबोली में करने लगे।

देशप्रेम, समाजसुधार, विधवाओं और अछूतों का दारूण दुख, स्त्री शिक्षा प्रचार, अंधविश्वासों का विरोध जैसे विषयों को उन्होंने अपने साहित्य का विषय बनाया।

रचनाएँ :-

'अनुराग रत्न', 'शंकर-सरोज', 'गर्भरण्डा रहस्य', 'शंकर सर्वस्व' आदि।

इनकी कविताएँ प्रतापनारायण मिश्र द्वारा संपादित 'ब्राह्मण' पत्रिका में प्रकाशित हुआ करती थी। रीतिकालीन पद्धति पर उन्होंने कुछ शृंगारमयी रचनाएँ भी की हैं।

वे अतिशयोक्तिपूर्ण कविता लिखते थे। फबतियाँ और फटकार इनकी कविताओं की विशेषता थी। छंदशास्त्र के बड़े विद्वान थे।

3. श्रीधर पाठक :-

भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के कड़ी के कवि रहे। आचार्य शुक्ल जी इन्हें 'स्वच्छंदता के प्रवर्तक' मानते हैं।

खड़ीबोली के ये प्रधान समर्थक कवि कहे जा सकते हैं, यद्यपि इनकी खड़ीबोली में ब्रजभाषा के क्रियापद भी मौजुद हैं। देशभक्ति, समाजसुधार के साथ प्रकृति चित्रण यह पाठक जी की कविता के प्रमुख विषय हैं।

वे कुशल अनुवादक भी थे। कालिदास के 'ऋतुसंहार' और गोल्ड स्मिथ कृत 'हरमिट' का इन्होंने अनुवाद किया।

रचनाएँ :-

'श्रांत पथिक', 'उजड़ ग्राम', 'अनुदित'। 'वनाष्टक', 'काश्मीर की सुषमा', 'देहरादून' और 'भारत गीत' मौलिक कृतियाँ हैं।

वैचारिक पक्वता, भावुकता, सुरुचि संपन्नता इनकी कविता के विशेष गुण है।

ओजमयी, प्रवाही, संगीतात्मक और चित्रमय शैली इनके काव्य के विशेष हैं।

4. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :-

द्विवेदी जी के प्रमुख शिष्य तथा उस युग के प्रतिनिधि कवियों में श्रेष्ठ कवि रहे। सिक्ख धर्म को स्वीकार कर वे अपने नाम के साथ सिंह जोड़ने लगे। वे हिंदी के साथ अंग्रेजी, फारसी, बंगाली, गुरुमुखी का अध्ययन कर चुके थे।

विद्यार्थी दशा से ही वे लिखने लगे थे। ब्रज के स्थान पर खड़ीबोली की स्थापना कर उन्होंने 'प्रियप्रवास' महाकाव्य की रचना की। खड़ीबोली की यह सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह पूरा काव्य संस्कृत के वर्णवृत्तों में लिखा महाकाव्य है। यह सतरा सर्गों में बद्ध है। इसके लिए उपाध्याय जी को 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' मिला था।

प्रमुख रचनाएँ :-

ब्रजभाषा में 'रसकलश'। खड़ी बोली में 'वैदेही वनवास', 'प्रियप्रवास'। वैदेही वनवास में उन्होंने राम की शक्ति, सौंदर्य और शील से युक्त चरित्र चित्रण करने का प्रयत्न किया है।

खड़ीबोली को काव्य के लिए उपयुक्त साबित करने वाले महत्वपूर्ण कवि साबित हुए।

5. मैथिलीशरण गुप्त :-

झाँसी में जन्मे गुप्त जी बड़े सहदय ईश्वरभक्त तथा काव्यप्रेमी पिता के पुत्र रहे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने इन्हें 'राष्ट्रकवि' उपाधि से सम्मानित किया। द्विवेदी युग का सर्वोत्तम प्रतिनिधि कवि माना जाता हैं।

शुरु से ही इन्हें काव्य में रूचि रही। साहित्यसेवा उनके पूरे जीवन की साधना थी। खुद गुप्त जी राम के भक्त, उपासक थे। राष्ट्रप्रेमी, साहित्यप्रेमी और रामभक्त इन तीन गुणों से मिश्रित एक सुंदर, कोमल, उतनी ही सशक्त साहित्यकृति रचने में वे सफल रहे।

रचनाएँ :-

मौखिक तथा अनुदित रचनाएँ - 'अधुप' उपनाम से उन्होंने 'वीरांगना', 'मेघनाद वध', 'प्लासी का युद्ध' का बंगला से अनुवाद किया।

मौलिक रचनाएँ :-

'जयद्रथ वध', 'शाकुंतल', 'झंकार', 'स्वदेशसंगीत', 'हिंदू', 'शक्ति', 'सैरंध्री', 'महुष', 'साकेत' आदि।

'साकेत' प्रबंध काव्य की गणना हिंदी के श्रेष्ठ प्रबंध काव्यों में की जाती हैं। देशभक्ति तथा गांधीवाद का गहरा असर आपकी रचनाओं से छलकता है।

'गुरुकुल' काव्य की रचना करके उन्होंने सिक्खों के बलिदानपूर्ण आख्यानों को पाठकों तक पहुँचाया। 'वनवैभव' की रचना करके उन्होंने भारत में व्याप्त हिंदु-मुस्लिम एकता की समस्या का समाधान प्रस्तुत करने की चेष्टा की। 'शक्ति' काव्य में संघशक्ति का महत्व बताया। 'साकेत' प्रबंध काव्य के लिए गुप्त जी को 'हिंदुस्थानी अकादमी' तथा 'मंगला प्रसाद' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसमें नवरस कम अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। शिल्प की दृष्टि से यह श्रेष्ठ काव्य रहा हैं।

गुप्त जी की भाषा सरल, साहित्यिक हिंदी है। प्रायः संस्कृत छंदों को ही उन्होंने अपनाया है।

खड़ीबोली हिंदी की द्विवेदीयुगीन काव्यधारा को समृद्ध करने में मैथिलीशरण गुप्त जी का योगदान सर्वश्रेष्ठ है।

6. पं. रामनरेश त्रिपाठी :-

जौनपुर जिले के त्रिपाठी जी बचपन से ही साहित्य काव्य प्रेमी रहे। सरस्वती पत्रिका के कारण ही वे खड़ीबोली की तरफ आकृष्ट हुए। खड़ीबोली के कवियों में इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

रचनाएँ :- तीन खंडकाव्य - मिलन, पथिक, स्वप्न।

ये तीनों काव्य देशभक्ति से ओतप्रोत है। यह हिंदी साहित्य में एक सर्वथा नवीन प्रयास था। देशभक्ति की भावना को काव्य में ढालकर उन्होंने इसे रमणीय और आकर्षक रूप दिया। अपने काव्य 'स्वप्न' में उन्होंने मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का भी सुंदर अंकन किया है। प्रकृति के सुंदर चित्र इनके काव्य में पाए जाते हैं।

कवि होने के साथ-साथ त्रिपाठी जी सहृदय संपादक भी थे। 'कविता कौमुदी' के आठ भागों में इन्होंने बड़ी योग्यता से हिंदी, बंगला तथा संस्कृत कविताओं का संकलन और संपादन किया। लोकगीतों के लिए प्रयास करके उन्हें प्राप्त करना पड़ा।

-: अन्य उल्लेखनीय कवि :-

1. रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' :-

ब्रज, खड़ीबोली दोनों भाषाओं में कुशल। अधिकतर फुटकर रचनाएँ। 'पूर्णसंग्रह' शीर्षक से संकलित। 'संग्राम निंदा', 'स्वदेशी कुंडल'।

2. रामचरित उपाध्याय :-

भाषा और भाव दोनों स्तरों पर द्विवेदी युग का अनुकरण किया।

रचनाएँ :- राष्ट्रभारती, देवदूत, देवसभा, विचित्र विवाह, रामचरित चिंतामणि - प्रबंध काव्य।

अपने व्यापक अनुभव तथा लोक व्यवहारज्ञान के परिचायक 'सूक्ति मुक्तावली' की रचना।

3. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' :-

पहले उर्दू के कवि बाद में ब्रजभाषा में रचनाएँ। 'त्रिशुल' उपनाम से। सुकवि मासिक पत्रिका का संपादन भी किया। ग्रामों में हिंदी कविता की रूचि बढ़ाने का प्रयत्न। हिंदी प्रसार-प्रचार दोनों में सहयोग।

4. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' :-

लालन-पालन साहित्यिक वातावरण में हुआ। 'जकी' उपनाम से फारसी में रचनाएँ।

रचनाएँ :- 'गंगालहरी', 'गंगावतरण', 'शृंगार लहरी' आदि। प्राचीन छंदों को अपनाया। डॉ. श्यामसुंदरदास ने इन्हें ब्रजभाषा का 'टैनियन' कहा है।

5. सत्यनारायण 'कविरत्न' :-

आधुनिक कवि होकर भी सवैया छंद की सर्जना में माहीर थे। 'भ्रमरदूत' खंडकाव्य सबसे लोकप्रिय, प्रसिद्ध। 'प्रेमकली', 'हृदयतरंग' - काव्यसंग्रह।

6. सियारामशरण गुप्त :-

गांधीवादी चेतना से भरे काव्य। काव्य में करूणा, आशा, अहिंसा के दर्शन होते हैं। रचनाएँ :- 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'बापू'। 'पाथेय' सर्वश्रेष्ठ कृति।

3. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा

आधुनिक हिंदी काव्य के विकास में द्‌विवेदी युग के पश्चात हिंदी काव्य की जो धारा विषयवस्तु की दृष्टि से स्वच्छंद प्रेमभावना, प्रकृति पूजा, प्रकृति में मानवीय क्रियाकलापों तथा भावव्यापारों के आरोप और कला की दृष्टि से लाक्षणिकता प्रधान नवनवीन अभिव्यंजना पद्‌धति को लेकर आई उसे 'छायावाद' कहा जाता हैं।

छायावाद की धारा अपना जीवन आदर्श लेकर गांधी, टैगोर, विवेकानंद आदि के दर्शनों से प्रेरित होकर, व्यक्तिवाद, आत्माभिव्यक्ति, कलावाद के विभिन्न रूपों में प्रकट हुई।

छायावाद के इस युग में जो विविध काव्यधाराएँ प्रवाहित हुई वे इसप्रकार हैं -

छायावाद की विविध काव्यधाराएँ :-

1. राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा
2. छायावादी काव्यधारा
3. प्रेम और मस्ती का काव्य
4. हास्य-व्यंग्यात्मक काव्य
5. ब्रजभाषा काव्य

इनमें से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की अधिक जानकारी इसप्रकार हैं।

-: राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा :-

जिस प्रकार रीतिकाल में रीतिबद्‌ध शृंगार सहित कविता में वीररस प्रधान राष्ट्रीय काव्यधारा प्रवाहित रही उसी प्रकार छायावाद में भी राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा उसी के समानांतर ही प्रवाहित रही।

माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवि छायावाद से अपनी सशक्त कृतियों द्‌वारा महत्वपूर्ण योगदान के साथ स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग भी लिया। अतः उनकी कविताओं में अनुभूतियों की सच्चाई और आवेश दिखाई देता है।

युगों से शोषित भारतीय जनता को विज्ञान से प्राप्त नए साधनों से सज्जित ब्रिटिश साम्राज्यवादीयों के साथ संघर्ष के लिए प्रेरित करके जनमानस में जागरण और संघर्ष के भावों का संचार करने का कठिन काम कवियों ने किया।

अतीत के गौरव का सजीव चित्रण करना उस समय जनता में आत्मविश्वास को जागृत करने का दूसरा उपाय था। रामायण, महाभारतकालीन युगपुरुषों के चरित्रों के उदाहरण काव्यद्वारा प्रस्तुत करके जनता के मन में विश्वास एवं आस्था पैदा करने का प्रयत्न किया।

अतीत की गरिमा के साथ वर्तमान दुर्दशा का चित्रण करके भी देशप्रेम भावना की जागृति के प्रयत्न किए गए। उस युग की आवश्यकता थी कि हर व्यक्ति दीन-दुखियों के कल्याण के लिए सर्मपित भावना रहे। शोषितों के उद्धार का काम कर्तव्य समझे। अतः रचनाओं में कवित्व कम और उपदेश की मात्रा अधिक थी।

इन कवियों ने स्वाधीनता के आंदोलन के दो महत्वपूर्ण मूल्यों, असहयोग और आत्मबलिदान के लिए जनता को प्रेरित किया।

संक्षेप में इस युग के प्रायः सभी कवियों ने देश के अतीतगौरव के प्रति अटूट श्रद्धा व्यक्त करने के साथ-साथ देश को परतंत्रता से मुक्त करने का दृढ़ विश्वास भी व्यक्त किया।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रमुख कवि :-

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए' नवीन जी की इस रचना की तरह समाज में स्वाधीनता के प्रति सपने जगाते, मन में स्वतंत्रता की आँस लेकर इस काल के कई कवियों ने देशभक्ति और साहित्यसेवा की। इस काल के प्रमुख कवि इसप्रकार हैं :-

1. माखनलाल चतुर्वेदी :-

एक अध्यापक के नाते हिंदी के साथ गुजराती, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का अध्ययन चतुर्वेदी जी ने किया। 'प्रभा' नाम की पत्रिका का संपादन किया। खंडवा की 'कर्मवीर' पत्रिका का कार्यभार भी संभाला।

देश की दयनीय अवस्था से भलीभाँति पहचाने थे। इनके व्यक्तित्व में देशप्रेम और साहित्यप्रेम का सुंदर समन्वय था। पहले क्रांतिकारियों का साथ देनेवाले चतुर्वेदी जी गांधीजी के प्रभाव से अहिंसावादी बन गए। अपने देशसेवा काल में भूमिगत होते हुए कभी जेल में भी उन्होंने कई कविताएँ तब 'एक भारतीय आत्मा' नाम लेकर लिखी।

रचनाएँ :-

छायावादी कविता संग्रह - 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी'।

अन्य रचनाएँ :- 'माता', 'समर्पण', 'युगाचरण', 'मरणज्वार'।

विशेषता :-

इनका समूचा काव्य राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत हैं। 'फूल की चाह' छोटी परंतु लोकप्रिय कविता जिसमें देश की खातिर आत्मबलिदान की भावना प्रकट हुई है। भाषा सरल किंतु ओजस्वी। छंद की दृष्टि से भी कविताओं में नवीनता दिखाई देती हैं।

2. दिनकर :-

राष्ट्रकवि दिनकर जी बिहार के थे। पटना विश्वविद्यालय से उन्होंने बी.ए. किया था। सरकारी नौकरी की और राज्यसभा के सदस्य भी थे। भारतीय युवक चेतना के ओजस्वी गायक रामधारी सिंह 'दिनकर' जी

छायावाद के अनूठे प्रतिनिधि रहे। आधुनिक हिंदी काव्य की समस्त विधाओं पर इनका अधिकार रहा। 'कुरुक्षेत्र' नाम के खंडकाव्य से उनका नाम मशहुर हुआ।

प्रमुख काव्यकृतियाँ :-

'रेणुका', 'रसवन्ती', 'हुंकार', 'द्वंद्वगीत', 'धुपछाँह', 'उर्वशी', 'रश्मिरथी'।

कुरुक्षेत्र और रश्मिरथी इनके खंडकाव्य हैं। दिनकर जी ने भारत के अतीत और वर्तमान दोनों का सजीव चित्रण करते हुए राष्ट्रीय भावना चेतना का महान कार्य किया। चीनी आक्रमण के अवसर पर उन्होंने 'परशुराम की प्रतिक्षा' नामक काव्य से राष्ट्रीय भावना का आक्रोश शब्दों में ढ़ाला।

3. सियारामशरण गुप्त :-

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के छोटे भाई। बड़े भाई के कारण साहित्य के बारे में रूचि बढ़ गई। घर में रहकर हिंदी के साथ बंगला, अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती तथा मराठी भाषाओं का अध्ययन किया। खुद अपना नाम बना लिया।

रचनाएँ :- काव्य रूपक - 'उन्मुक्त', प्रशस्तिकाव्य - जयहिंद।

अनुदित काव्य - 'गीता संवाद'। मुक्तक प्रबंध - 'बापू'।

गांधीवाद में अटूट आस्था, अंतर्मुखी कवि। अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि पर मानव की प्रतिष्ठा की है। अधिकांश रचनाएँ करूणा और शांत रस से समन्वित है। उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक, विरोधाभास आदि अलंकारों के सुंदर उदाहरण इनके काव्य में मिलते हैं।

4. सुभद्राकुमारी चौहान :-

प्रयाग के निहालपुर गाँव से सुभद्राकुमारी जी 1941 के असहयोग आंदोलन के प्रभाव से अपनी शिक्षा अधूरी ही छोड़कर राजनीति में सक्रिय हो गई। महादेवी वर्मा जी की निकटतम सहेली रही। विद्यार्थी दशा से ही वे कविता करने लगी थी। प. माखनलाल चतुर्वेदी जी के संपर्क में आने से इनकी काव्यसाधना को प्रोत्साहन मिला। स्वतंत्रता के बाद वे मध्यप्रदेश की विधान सभा की सदस्या निर्वाचित हुई।

रचनाएँ :-

'मुकूल', 'उन्मदिनी', 'त्रिधारा', 'सभा के खेल', 'सीधे सादे चित्र'।

'मुकूल' कवितासंग्रह के लिए उन्हें 'सेक्सटिया' पुरस्कार मिला है। उनकी 'वीरों का बसंत' तथा 'झाँसी की रानी' सामान्य जनता में लोकप्रिय हुई। वीर, वात्सल्य, शृंगार रस से युक्त उनकी भाषा सरल, सुबोध और भावपूर्ण है। सरस भाषा और अर्थगौरव से संपन्न शब्दप्रयोगों के कारण अन्य रचनाओं के बल पर ही सुभद्राकुमारी जी हिंदी साहित्य में ख्यातनाम हुई।

5. रामनरेश त्रिपाठी :-

साहित्यकार के साथ-साथ त्रिपाठी जी कठोर देशभक्त रहे। प्रयाग में उन्होंने साहित्य भवन नाम से पुस्तकों का प्रकाशन संस्था खोली। छात्रावस्था से ही सवैया, घनाक्षरी आदि रचने लगे। इनका कृतित्व बहुमुखी है। मौलिक काव्यरचनाएँ, खंडकाव्य मिलन, पथिक, स्वप्न। मुक्तक काव्य 'मानसी'।

द्विवेदी युग से कविताएँ लिखते थे। त्रिपाठी जी ने काव्यों में राष्ट्रसेवा के आदर्श की स्थापना करते हुए समाजविरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा समाज को दी। गांधीवाद का गहरा असर, अच्छे शैलीकार, रसवादी कवि त्रिपाठी जी का स्थान हिंदी काव्य विकास में श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण है।

6. उदयशंकर भट्ट :-

इनके जीवन का अधिकांश काल दिल्ली तथा लाहौर में व्यतित हुआ। इनका व्यक्तित्व छायावादी युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत में क्रमशः विकसित होनेवाली विविध प्रवृत्तियों तक फैला हुआ है।

रचनाएँ :- 'तक्षशिला', 'राका', 'मानसी', 'विश्वामित्र',। इनमें इनकी चेतना के विविध स्वर सुने जा सकते हैं।

7. जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' :-

मिलिंद जी का स्वर छायावादी युग में ही मुखर अवश्य हुआ परंतु वे प्रकृति के कोमलकांत होकर नहीं परंतु राष्ट्रीय चेतना को लेकर हुआ था। इसी कारण इनकी गणना युगीन राष्ट्रीय प्रतिनिधि कवियों में की जाती है।

इनकी कविता का एकमेव लक्ष्य है राष्ट्रीय नवजागरण और नवनिर्माण। 'भारती पत्रिका' संपादन किया। साठ से भी अधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

रचनाएँ :- 'जीवन संगीत', 'नवयुवक का गान', 'बलिपथ के गीत', 'भूमि की अनुभूति', 'पंखुरियाँ'।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा की सामान्य प्रवृत्तियाँ :-

-: इस काल के कवि, कवि के साथ देशभक्त भी थे। अपनी अनुभूति का प्रकटीकरण राष्ट्रसेवा हेतु करना इन्होंने अपना फर्ज माना।

-: छायावाद काल में भी ओजस्वी, कठोर उसी समय करूण भावों से युक्त कविताएँ लिखी गई।

-: पाश्चात्य विचारों का असर वर्तमान दुरवस्था इसके बीच चिंतनशील होकर कवियों ने सामान्य जनता के दुखों को शब्द दिए।

-: मासिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण सामान्य लोगों तक कविता पहुँची। हिंदी भाषा का विकास होने में इस बात की सहायता हुई।

-: छंदों का प्रयोग, अनुवाद इसप्रकार रचनाएँ होने लगी।

-: असहोयग, असहकार आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन, अहिंसा आदि गांधीवादी तत्वों से प्रेरित कवियों ने उन्हीं तत्वों का पुरस्कार अपने काव्य में किया।

-: पौराणिक घटनाओं को नए ढंग से सोचने-देखने के ढंग ने कवियों की वाणी में बदलाव आया। शैली पर भी यह प्रभाव दिखाई दिया। भाषा में ओज दिखाई दिया।

1. छायावादी कविता

छायावाद का युग सन 1918 से सन 1939 तक का माना जाता है। आधुनिक काल का यह तीसरा चरण है। गद्य की दृष्टि से यह विविध प्रवृत्तियों के विकास काल रहा। इस समय आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल, नाटक के

युग में जयशंकर प्रसाद, कहानी साहित्य में प्रेमचंद अपनी साहित्यसेवा में जुटे हुए थे। अतः यह शुक्ल, प्रसाद-प्रेमचंद युग रहा हैं। एक प्रकार से द्विवेदी युग में शुरु हुए साहित्य विकास का यह चरम विकास का काल था।

कविता के क्षेत्र में इस काल में द्विवेदी युग से शुरु हिंदी काव्य की जो धारा विषयवस्तु की दृष्टि से स्वच्छंद प्रेमभावना, प्रकृति पूजा, प्रकृति में मानवीय क्रिया कलापों तथा भावव्यापारों के आरोप और कला की दृष्टि से लाक्षणिकता प्रधान नवजीवन अभिव्यंजना पद्धति को लेकर चली उसे 'छायावाद' कहा जाता हैं।

छायावाद की पृष्ठभूमि तथा उद्भव के कारण :-

छायावादी काव्यधारा अपने आप में स्वतंत्र है। यह काव्यधारा दो महायुद्धों के बीच की कविता हैं। कुछ ऐसी सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इसे कारण हुई। वह इस प्रकार है -

-: यह काल था राष्ट्रीय जागरण तथा राष्ट्रीय आंदोलन का। लो. तिलक की मृत्यु के बाद पूरे देश में गांधीवाद की लहर दौड़ी थी। अहिंसा-आंदोलनों का प्रमुख वैशिष्ट्य बना था।

-: गांधीवाद के साथ समाज में योगी अरविंद, रामकृष्ण परमहंस, रवींद्रनाथ टागोर तथा विवेकानंद जैसे युगपुरुषों के दर्शन का समाजपर गहरा असर था।

-: पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और संस्कृति के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप हमारे देश के और समाज के बाहरी और भीतरी जीवन में प्रत्यक्ष और परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे। इससे सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्ति ने छायावाद को प्रेरणा दी।

-: समाज में फैली जाँतिपाँति, अंधविश्वास, धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़िप्रियता ने नवयुवकों को उनके अलग सपने देखने को बाध्य किया। व्यवहारवाद तथा बुद्धिवाद का जन्म इसी कारण हुआ। छायावाद में इसका प्रतिबिंब जरूर देखने को मिलता है।

-: प्रस्थापित सभी बातों से विद्रोह, मानवतावाद, वैयक्तिकता, सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति में चेतना का आरोप, गीत शैली आदि बातें अंग्रेजी साहित्य के 'रोमांटिसिज्म' के परिणामस्वरूप हिंदी काव्य में भी दिखाई देने लगी।

-: ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधार की दृढ़ नैतिकता, असंतोष और विद्रोही भावना से कवि अंतर्मुख बने। उनकी अपनी नीजी भावनाएँ अनायास ही काव्यधारा से फूट पड़ी।

छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :-

1. व्यक्तित्व :-

छायावादी काव्य में व्यक्तिगत भावनाओं की प्रधानता होती हैं। छायावादी कवि समाधि से निरपेक्ष होकर व्यष्टि में लीन रहता हैं। पूरे वस्तुजगत के नीजी भावनाओं में रँगाकर देखता हैं। एक प्रकार से अपने व्यक्तिगत सुख-दुख, हर्ष-शोक को ही वह वाणी प्रदान करता है। परिणामस्वरूप छायावादी काव्य में व्यक्तित्व की प्रधानता दिखाई देती है।

2. शृंगार भावना :-

शृंगार भावना को छायावाद में प्रधानता मिली। यह शृंगार ऐंद्रिक शृंगार या स्थूल शृंगार नहीं बल्कि सूक्ष्म आंतरिक शृंगार है। शृंगार उपभोग की नहीं कौतुहल की चीज मानी गई।

3. सौंदर्यानुभूति :-

सौंदर्य की प्रधानता छायावादी काव्य में प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है। प्रेम और सौंदर्य ये दो विषय छायावादी कवियों के अत्यंत प्रिय विषय रहे। यहाँ भी बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य के उद्घाटन में उन कवियों की दृष्टि अधिक रही।

4. प्रकृति का मानवीकरण :-

'प्रकृति' छायावादी कवियों के नस-नसों में समाई हुई है। प्रकृति पर मानवीकरण अथवा मानव व्यक्तित्व का आरोप छायावाद की प्रमुख विशेषता रही हैं। उन्होंने प्रकृति को अनेक रूपों में देखा, कभी उसे अगाध, अनंत, विशाल सत्ता माना तो कभी अपनी प्रेयसी। मुख्यतः प्रकृति को नारी के रूप में देखा।

5. वेदना एवं करूणा की भावना :-

कभी आध्यात्मिक तो कभी लौकिक रूप में छायावादी कवियों ने अपनी भावनाएँ प्रकट की। यथार्थ की सृष्टि से मनुष्य जीवन की सभी भावनाएँ खास कर शोक, विरह, विषमता, असफलता, क्रंदन आदि के साथ जीवन की क्षणभंगुरता को इन कवियों ने अपनी कविता का विषय माना। अतः अनेक कवियों के काव्य में वेदना एवं करुणा की व्यंजना अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है।

6. दुखवाद :-

वैयक्तिकता की प्रधानता ने निराश और विरक्त और आत्मकेंद्री कवि अपनी निराशा दबा न सके। उन्होंने अपने काव्य में विषाद का स्वर भर दिया।

7. निर्बल विद्रोह भावना :-

छायावादी कवि बाह्यजगत की भीषणता से त्रस्त होकर एक प्रकार का तटस्थता भाव रखने लगे। इसी कारण वैयक्तिक दुख, निराशा, अपयश के प्रतिक्रिया के रूप में अपनी विद्रोह भावना, निर्बलता उनके काव्य में फूट पड़ी।

8. मानवतावाद :-

रवींद्रनाथ और विवेकानंद का 'विश्वबंधुत्व', रामकृष्ण परमहंस तथा गांधीजी का मानवतावाद, पूरे भारतीयों पर छाया-सा था। इसीसे छायावादी काव्य में मानवता के, राष्ट्रीय जागरण के भाव उभर आए।

9. अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम :-

छायावादी काव्य में अज्ञात सत्ता को कवि अपने आंतरिक प्रेम के कारण कभी प्रियतम का रूप देते हैं। अर्थात यह अज्ञात सत्ता 'ब्रह्म' से भिन्न है।

10. नारी के प्रति नवीन भावना :-

छायावादी कवियों ने नारी सौंदर्य को भिन्न दृष्टि से देखा। उसे वासनापूर्ति के साधन के रूप में नहीं। नारी को उन्होंने जरूर प्रेयसी के रूप में देखा परंतु उसे वासना के गर्त से ऊपर उठाकर आदर्श मानव के रूप में सम्मानित किया। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में -

"नारी ! तुम श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में।"

11. जीवन दर्शन :-

छायावादी कवियों का मूल दर्शन सर्वात्मवादी है। कल्पना के साथ-साथ छायावाद में मानवप्रेम, प्रकृति प्रेम, करूणा, उदारता आदि भावनाएँ प्रचुर मात्रा में दिखाई देती हैं। इसमें विश्वबंधुत्व का संदेश भी नीहित रहता हैं।

12. लाक्षणिकता से युक्त प्रतीक प्रधान शैली :-

इस युग के कवियों ने अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिकता से युक्त प्रतीक प्रधान शैली को अपनाया।

13. दुरुहता एवं अस्पष्टता :-

अशरीरी सौंदर्य, व्यक्तिवादी कविता कुछ कठिण तथा अस्पष्ट बन पड़ी है।

14. नाविन्यपूर्ण छंद विधान और गीतात्मकता :-

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में छंदों के विविध प्रयोग किए। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी ने इस क्षेत्र में सर्वाधिक नवीन रूपों की सृष्टि की। इस काल का काव्य मुख्य रूप से गीतात्मक रहा।

छायावादी प्रमुख कवि :-

1. जयशंकर प्रसाद :-

छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी में संपन्न घराने में हुआ। बाल्यावस्था में ही वे कविता करने लगे। स्वभाव से वे सरल, उदार, मृदुभाषी, स्पष्टवक्ता और साहसी थे। सम्मेलनों में उपस्थित होकर कविता-पाठ करना या किसी संस्था का सभापति होना उन्हें स्वीकार नहीं था।

प्रसाद जी हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि थे। उन्होंने पहली बार अपने काव्य में मानव के सुख-दुख, चिंतन आदि सूक्ष्म भावनाओं के चित्रण के माध्यम से नए युग का सूत्रपात किया, जो 'छायावाद' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनका साहित्य - महाकाव्य - कामायनी,

काव्यरूपक - 'करुणालय'। खंडकाव्य - 'प्रेमराज्य'

गीतिकाव्य - 'कानन-कुसुम', 'चित्राधार', 'झरना', 'लहर'

चम्पू काव्य - 'उर्वशी'।

प्रसाद मूलतः प्रेम, आनंद और सौंदर्य के कवि थे। 'प्रेम' उनके काव्य का प्रमुख विषय रहा है। उनके काव्य में मानव-सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य और भावसौंदर्य के बड़े भव्य कलापूर्ण और प्रभावशाली चित्र मिलते हैं। उनके काव्य में जीवन और आशा का प्रेरक उदात्त संगीत मुखरित हुआ है। 'कामायनी' उनकी अंतिम कृति है। यह छायावाद की सर्वश्रेष्ट कृति मानी जाती है। इसकी कथा 15 सर्गों में विभक्त है जिनका नामकरण चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा आदि मानव के विभिन्न भावों पर आधारित है। सूक्ष्म मनोविकारों को मूर्त स्वरूप देने में उन्होंने सफलता पाई है। उनकी भाषा संस्कृत गर्भित होते हुए भी सरस, मधुर और आकर्षक है। रस निरुपण में प्रसाद किसी रस विशेष को अपना लक्ष्य बनाकर नहीं चले हैं। उनके काव्य का प्रारंभ शृंगार रस होता है और अंत शांत या करूण रस से।

संक्षेप में प्रसाद जी उस युग के महान कवि थे। उनकी 'कामायनी' विश्वसाहित्य की श्रेष्ठ कृतियों में स्थान पाने की अधिकारिणी है।

2. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' :-

सूर्यकांत त्रिपाठी जी हिंदी साहित्य में 'निराला' उपनाम से प्रसिद्ध हैं। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व में भी 'निराला'पन छलकता है।

'निराला' जी का जन्म मेरितीपुर में हुआ। तीन वर्ष की अवस्था में ही उन्हें 'मातृस्नेह' से वंचित होना पड़ा। इकलौता पुत्र होने से उनका पालन-पोषण बड़े ठाठ से हुआ। स्वाध्याय द्वारा संस्कृत साहित्य के साथ दर्शनशास्त्र, अंग्रेजी साहित्य तथा बंगला साहित्य का ज्ञान उन्होंने पाया।

बचपन से ही वे कविता करते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा पाकर वे साहित्यक्षेत्र में आगे बढ़े। कलकत्ता में उन्होंने 'समन्वय' तथा 'मतवाला' आदि पत्रिकाओं का संपादनभार सँभाल लिया। अंतिम दिनों में वे प्रयाग में रहे।

'निराला' जी बहुमुखी प्रतिभा के कवि थे। वे छायावाद के प्रमुख कवि, समर्थक, प्रगतिवाद के प्रवर्तक, गीतिकाव्य को नया रूप, माधुर्य प्रदान करने वाले कलाकार, निर्भिक आलोचक, पत्रकार तथा अपने युग के सबसे विद्रोही साहित्यिक थे।

उनका प्रथम काव्यसंग्रह 'परिमल' नाम से है। उनकी प्रमुख रचनाएँ - 'अनामिका', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'नए पत्ते', 'अर्चना' और 'आराधना'। निराला जी मुक्तछंद के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'तुलसीदास' इनका खंडकाव्य है।

भाषाविशेष :- संगीतात्मकता, नादसौंदर्य, सूक्ष्म दार्शनिकता, चित्रमयता, ओज आदि अच्छी कविता के सारे गुण इनकी कविताओं में पाए जाते हैं। इनकी 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' कविताएँ यथार्थ दर्शन कराने वाली लोकप्रिय कविताएँ रही हैं।

उनकी 'राम की भक्ति पूजा' कृति सबसे सशक्त मानी जाती हैं। इसमें धर्म का प्रतीक 'राम' तथा अधर्म का प्रतीक 'रावण' को मानकर धर्माधर्म का संघर्ष शब्दबद्ध करने की सफल चेष्टा निराला जी ने की है।

इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, उसमें सामासिक शब्दों का आधिक्य है। पदों में गेयता का खयाल रखा गया है। छंदसंबंधी प्राचीन मान्यताओं को तोड़कर उन्होंने नए (मुक्त) छंद की एक ऐसी पद्धति का श्रीगणेशा किया जिससे कविता लिखने में सुगमता या सरलता निर्माण हुई।

इस प्रकार 'निराला' का निरालापन उनके विद्रोही व्यक्तित्व, स्वच्छंद काव्यप्रवृत्ति में नीहित हैं।

3. महादेवी वर्मा :-

महादेवी वर्मा छायावादी काव्यधारा की एक महान एवं समर्थ कवयित्री हैं। इनके पिताजी वकिल थे। जबलपुर तथा इलाहाबाद में उन्होंने अपनी शिक्षा पूर्ण की। दर्शनशास्त्र में उन्होंने एम.ए. किया। 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की प्रधानाचार्या बनकर वे काम करने लगी।

समाज और साहित्य से संबंधित अनेक संस्थाओं का उन्होंने प्रवर्तन, संचालन आजीवन किया। वे एक कुशल संगीतज्ञ तथा चित्रकार भी थी। अतः संगीतात्मकता तथा चित्रमयता आपके काव्य के प्रमुख गुण रहे। इनके जीवन दर्शन का मूलाधार है विरह वेदना।

वेदना में ही उन्हें अपने प्रिय आराध्य, अपने प्रिय की अस्तित्वमयी अनुभूति होती है। मीरा जैसी इस भाव ने ही उन्हें 'आधुनिक मीरा' बनाया है।

पहले वे ब्रजभाषा में लिखती थी। बाद में खड़ीबोली में लिखने लगी। इन्होंने पद्य के साथ-साथ गद्यलेखन भी काफी किया है।

उनका साहित्य :-

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'दीपशिखा', 'सांध्यगीत' आदि काव्यसंग्रहों से 'यामा' काव्यसंग्रह बना है। 'नीरजा' पर उन्हें हिंदी साहित्य संमेलन पुरस्कार मिला। 'हिमालया' उनका संपादित ग्रंथ है। उनकी खड़ी बोली की सभी रचनाएँ 'चाँद' नाम की पत्रिका में संपादित हुई।

छायावाद के प्रवेश के साथ महादेवी जी ने हिंदी काव्य जगत में प्रवेश किया और अपना पूरा सहयोग दिया। छायावाद के साथ-साथ रहस्यवाद का भी आपने प्रसार किया। उन्होंने वास्तव में छायावादी पर्यावरण में रहस्यसाधना अधिक की हैं। वेदना भाव को अपनाकर ससीम-असीम, आत्मा-परमात्मा के संबंध को उन्होंने बड़े कलात्मक ढंग से व्यक्त किया। इसी कारण आधुनिक युग की 'सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवयित्री' मानी गई।

विशेष :- इनकी कविताएँ गीतिकाव्य के अंतर्गत आती हैं। इनकी कविता में मधुर भाव ओतप्रोत है। कविताएँ संक्षिप्त, अनुभूति की गहनता लिए गेय बनी हैं। स्वरताल का खयाल करके बनी इन कविताओं में नादमाधुर्य भी है।

भाषा :- महादेवी जी की भाषा विशुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली मात्र है। इनमें प्रसाद और माधुर्य गुण विद्यमान है। इसमें प्रतीकात्मकता है। अपवादात्मक त्रुटियों के बावजूद उनकी भाषा सर्वत्र सरल, सरस, प्रवाही, कोमल और मधुर हैं।

4. सुमित्रानंदन पंत :-

पंत जी का जन्म उत्तर प्रदेश के अंतर्गत कौसानी गाँव में हुआ। बचपन से ही माता के चल बसने के कारण प्रकृति की गोद में ही वे पले। कौसानी (अल्मोड़ा) की प्राकृतिक सुषमा ने उनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव छोड़ा। घंटों प्रकृति के विभिन्न सुंदर रूपों को निहारते उन्होंने मानो प्रकृति के रूपों को समझ लिया, जान लिया। उसके भोलेपन को आत्मसात किया। परिणामस्वरूप उनकी कविता में प्रकृति का सजीव, स्वाभाविक चित्रण तथा कोमल स्वरूप दिखाई देता है।

रमणी के सौंदर्य की अपेक्षा प्रकृति की सुषमा को वे अधिक सुंदर मानते थे।

उनकी रचनाएँ :-

महाकाव्य - 'लोकायतन' इसपर उन्हें 'सोविएत भूमि नेहरु पुरस्कार' मिला।

खंडकाव्य - 'ग्रंथि', 'मुक्तियज्ञ'।

मुक्तक काव्य - 'उच्छवास', 'वीणा', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगांत', 'ग्राम्या', 'वाणी', 'अतिमा', 'युगपथ', 'उत्तरा' आदि।

संकलन - 'आधुनिक कवि', 'रश्मिबंध चिदंबरा', 'पल्लविनी', 'हरी बाँसुरी सुनहरी टेर'।

पंत जी ने खय्याम की रुबाईयों का हिंदी रुपांतर भी किया हैं।

विशेष :-

पंत जी प्रगतिवादी चेतना से और अरविंद दर्शन से प्रभावित थे।

उनके काव्य में प्रकृति के रूपों के सुंदर दर्शन होते हैं। कविता में प्रकृति के साथ मानव जीवन के प्रति एक किशोर जिज्ञासा और रहस्यभावना भी है। वे भाषा के प्रति सजग रहे।

भाषा :-

उनकी भाषा प्रवाही रही। कई रचनाओं में उनकी भाषा सरल तथा सपाटबयानी बन गई। अनुप्रास, उपमा, रूपक, श्लेष, यमक आदि कई समासों के शब्द उनकी कविता में पाए जाते हैं। ब्रज के साथ फारसी का उपयोग भी उन्होंने किया है। भाषा अत्यंत कोमल और मधुर है। इसमें चित्रमयता तथा संगीतात्मकता भी है।

इसप्रकार श्री अरविंद से प्रभावित सुमित्रानंदन पंत जी छायावाद के श्रेष्ठ और विकसनशील कवि रहे।

2. प्रगतिवादी काव्यधारा

उद्भव के कारण :-

'प्रगतिवाद' हिंदी काव्य की छायावादोत्तर एक प्रधान काव्यधारा है। छायावाद की भौतिक जीवन से उदासीन, आत्मनिष्ठ, सूक्ष्म, अंतर्मुखी प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में 'प्रगतिवाद' का जन्म हुआ है। छायावाद की अत्याधिक आत्मनिष्ठता, काल्पनिकता और आदर्शवादीता की प्रतिक्रिया प्रगतिवाद में प्रस्फुटित हुई।

जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है वही साहित्यिक क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' के नाम से अभिहित की जाती है। प्रगतिवाद एक प्रकार से मार्क्सवाद का ही साहित्यिक रूप है।

मार्क्सवाद के अनुसार सृष्टि में दो तत्व प्रधान हैं।

1. स्वीकारात्मक और
2. नकारात्मक।

इन दोनों का संघर्ष ही जीवन है। इसके परिणामस्वरूप सृष्टि में चेतना या गतिशीलता है। इस चेतना का आधार भौतिक पदार्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से प्रगतिवाद केवल 'अर्थ' की ही सत्ता स्वीकार करता है। समाज की उन्नति की मूलाधार 'अर्थ' ही हैं। अर्थ की संतुलित व्यवस्था ही समाज एवं भौतिक जीवन को उन्नत बना सकती है।

प्रगतिवाद के मूलतत्व :- मूल प्रवृत्तियाँ :-

1. प्रगतिवाद का मूल आधार मार्क्स का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद हैं।
2. प्रगतिवाद जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखता है। ईश्वर, नियतिवाद, कर्म, भाग्य आदि बातों में वह विश्वास नहीं करता।
3. वह साम्यवाद का मित्र तथा पूँजीवाद का शत्रु है। वह एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें सबको उन्नति करने का सामान्य सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने का अवसर और अधिकार प्राप्त हो।
4. शोषितों में वह वर्गभावना की चेतना जागृत करके त्याग और बलिदान के लिए प्रेरित करता है।

5. वर्गहीन समाज रचना उसका अंतिम उद्देश्य है। समष्टि के सुख में ही व्यक्ति का सुख वह मानता है।

6. प्रगतिवाद नारी स्वातंत्र्य का समर्थक है। प्रगतिवादी समाज नारी को समानाधिकार देना चाहता है। नारी उपभोग की नहीं प्रेरक शक्ति मानी जाती है।

7. कला को प्रगतिवाद अभिव्यक्ति का साधन मानता है। जीवन की उपयोगिता पर उसका मूल्य माना-समझा जाता है।

8. प्रगतिवाद व्यक्ति से समाज बढ़कर मानता है तथआ व्यक्ति पर समाज का अंकुश चाहता है।

9. प्रगतिवाद यथार्थ का समर्थन करता है। वह केवल आदर्श, महानता, सौंदर्य की ओर आकृष्ट न होकर वर्तमान जीवन में दुख, शोषण, कठोरता और कुरूपता को भी मान्यता देकर सत्य का चित्रण करना चाहता है।

10. प्रगतिवादी साहित्य में साहित्यकार सीधी-सादी, सरल तथा स्वाभाविक भाषा शैली को अपनाता है। परंपरागत छंदों की जगह नवनवीन छंदों का वह स्वागत करता है।

प्रगतिवाद की मर्यादाएँ तथा प्रगतिवाद पर आक्षेप :-

1. प्रगतिवाद का दार्शनिक आधार चेतना से शून्य जडवाद हैं।

2. वह समाज का सर्वांगिण विकास नहीं बल्कि एकाकी चित्र प्रस्तुत करना चाहता है, किसी एक वर्ग का चित्रण करना चाहता है।

3. सुंदरता की जगह वह कुरूपता का स्वागत स्वीकार करना चाहता है।

4. जीवन की चिरंतनता पर वह विश्वास नहीं करता।

5. हृदय के भावों से सहानुभूति न होकर भी शोषितों के लिए लिखे साहित्य में सहज अनुभूति का अभाव नजर आता हैं।

6. प्रगतिवाद वैज्ञानिकता और बौद्धिकता के प्राधान्य से रसात्मकता और सहृदयता से वंचित-सा रहता है।

जहाँतक हिंदी साहित्य का प्रश्न है, प्रगतिवादी साहित्य यहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों की उपज हैं। उसमें अपना बहुत कुछ है। परंतु इसपर अंग्रेजी तथा रूसी साहित्य का प्रभाव अवश्य पड़ा है।

प्रगतिवादी काव्यधारा की विशेषताएँ :-

1. रूढ़िविरोध :-

प्रगतिवादी साहित्यकार ईश्वर को सृष्टि का निर्माता, कर्ता न मानकर जागतिक द्वंद्व को विकास का समन्वय कारण स्वीकारता है। उसे अंधविश्वासों, मिथ्या परंपराओं, रूढ़ियों पर प्रखर प्रहार करके मानव को मानवरूप में देखना पसंद है।

2. शोषितों का करूण गान :-

शोषित वर्ग मानव के लिए अभिशाप है। अतः प्रगतिवादी साहित्यिक मजदूर, किसान पीड़ितों का सहानुभूति से कारुणिक चित्रण करता है।

3. शोषकों के प्रति घृणा रोष :-

शोषितों के प्रति करूणा के साथ शोषकों के प्रति मन में रोष लेकर प्रगतिवादी साहित्यकार पूँजीवादी व्यवस्था को कुचलना चाहता है। अपना क्रोध, रोष वह कविताओं में व्यक्त करता हैं।

4. क्रांति की भावना :-

परंपरागत रुढ़ि नष्ट करके नए समाज की स्थापना करने वाला प्रगतिवादी साहित्यकार समझौते नहीं करता, ना ही हृदयपरिवर्तन बल्कि वह क्रांति चाहता है। साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स का वह गुणगान करना चाहता है।

5. मानवतावाद :-

प्रगतिवादी कोमल सहृदय है। वह शोषितों, दुर्बलों के लिए अपार करुणा रखता है। उसके लिए सभी धर्मों के सभी मानव बराबर हैं, समान है।

6. वेदना और निराशा :-

छायावाद की तरह प्रगतिवाद में करुणा, वेदना, निराशा का चित्रण जरूर आता है। उसे (साहित्यकार को) विश्वास है कि सामाजिक वैषम्य को दूर करने में वह अवश्य सफल होगा।

7. नारी चित्रण :-

प्रगतिवादी साहित्यकार नारी को शोषित मानता है। बरसों से बंदिनी बनी नारी के प्रति उसके मन में आदर है। वह उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व मानता हैं।

8. यथार्थ चित्रण :-

प्रगतिवादी काव्य में निम्नवर्ग के यथार्थ जीवन को स्थान मिला। अबतक उच्च वर्ग या मध्यवर्ग का चित्र प्रतिबिंबित जरूर हुआ था। प्रगतिवादी कवि ने अपनी वाणी से व्यथित वर्ग की वेदना को मुखर किया।

9. सामाजिक समस्याओं का चित्रण :-

प्रगतिवादी कवि देशीविदेशी समस्याओं को समस्त संसार की समस्याओं को अपना मानता है। वह हिंदुस्थान-पाकिस्तान का विभाजन, कश्मीर समस्या, बंगाल का अकाल आदि का वर्णन अपनी कविता में करता हैं।

10. कलासंबंधी मान्यता :-

प्रगतिवादी कवि की भाषा भाव के अनुसार होती है। वह स्वाभाविक होती है। मुक्तक, अतुकांत छंदों को इस्तेमाल करना वह पसंद करता है। अभिव्यक्ति में छंद, अलंकारों का आडंबर वह नहीं चाहता।

संक्षेप में प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओं के बावजूद हिंदी की काव्यधारा के विकास में एक बहुत महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा है। उसने व्यक्तिवादी यथार्थ के घेरे से काव्य को बाहर निकालकर सामान्य जनजीवन के बीच प्रवाहित कर दिया।

प्रगतिवादी प्रमुख कवि :-

1. केदारनाथ अग्रवाल :-

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद के सशक्त कवि हैं। इनकी कविताओं में अर्थनीति के विरुद्ध प्रहार, सामाजिक विषमतापर व्यंग्य तथा जनशक्ति को प्रेरित करने का प्रयत्न दिखाई देता है।

काव्यरचना :-

'युग की माँग' - यथार्थवादी दृष्टि से प्रेरित काव्यरचना।

'युग की गंगा', 'फूल नहीं, रंग बोलते हैं।', 'आग का आइना' प्रमुख काव्यसंग्रह हैं।

विशेषता :-

इनकी कविताओं में मानव और प्रकृति के सौंदर्य का बड़ा वेगवान, सहज वर्णन पाया जाता है। 'माँझी न बजाओ बंशी' काव्यशिल्प में प्रातिनिधिक कविताएँ हैं।

2. नागार्जुन :-

इनका वास्तविक नाम 'वैद्यनाथ मिश्र' है। 'यात्री' के नाम से वे मैथिली में भी कविताएँ लिखते थे। वे हिंदी के उपन्यासकार भी हैं। अपनी रचनाओं में किसानों-मजदूरों की समस्या उठाकर वे नए समाज की प्रतिष्ठापना करना चाहते हैं।

साहित्य :-

'बादल को घिरते देखा हैं।', 'पाषाणी', 'चंदना', 'रवींद्र के प्रति', 'सिंदुर तिलकित भाल' आदि कविताएँ।

विशेष :-

इनकी कविताएँ तीन प्रकार की हैं।

1. गंभीर, संवेदनात्मक और कलात्मक।
2. सामाजिक कुरूपता, अव्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वास पर चूभता हुआ व्यंग्य।
3. उद्‍बोधनात्मक कविताएँ।

3. मुक्तिबोध :-

इनका पूरा नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है। विद्‍यार्थी दशा से वे साहित्यप्रेमी रहे।

साहित्य :-

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' - कविता संग्रह। 'तारसप्तक' में नई कविताधारा की कविताएँ संकलित हैं।

4. रामविलास शर्मा :-

अंग्रेजी के पीएच. डी. हैं। हंस पत्रिका के संपादक। ये प्रगतिवादी समीक्षक रहे हैं। 'मुन्शी हिंदी विद्‍यापीठ' के निदेशक रहे हैं।

5. शिवमंगल सिंह 'सुमन' :-

जीवन और यौवन के श्रेष्ठ कवि हैं। उत्तम गीतकार। प्रगतिवादी कवि के रूप में इनका स्थान ऊँचा है। छोटी-छोटी गीतात्मक कविताएँ तथा लंबी और उपदेशात्मक कविताएँ इन्होंने लिखी हैं। सरल से सरल भाषा में गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति करने में यह सफल हुए हैं।

काव्यसंग्रह :-

'हिल्लोल', 'प्रलय सृजन', 'विश्वास बढ़ता ही गया', 'तब आँखे नहीं भरी'।

3. प्रयोगवादी कविता

प्रस्तावना :-

प्रयोगवादी कविता के उद्भव के कारण :-

बीसवी शताब्दी में उत्थान काल में मानव जीवन के मूल्यों में विशेष परिवर्तन दिखाई देता है। समाज युद्ध की विभीषिकाओं से त्रस्त था। सामाजिक, राजनैतिक परिस्थिति के इस ऊहापोह में साहित्यकार भी बदला, उसके दृष्टिकोण में नयापन आया। सन 1943 में एक नवीन प्रकार के काव्य के दर्शन होने लगे थे। इसे प्रतिष्ठापकों ने 'प्रयोगवादी काव्य' कहकर पुकारा था। इस नवीन धारा के कर्णधार 'अज्ञेय' जी माने जाते हैं। उनका मानना था कि आजकल की (उस काल की) नवीन युगचेतना को नवीन आदर्शों तथा नवीन संस्कृतियों को प्राचीन परंपरागत भाषा शैली द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारी भाषा का अबतक का रूप प्राचीनता का अनुसरण करने के कारण शिथिल और निर्बल हो उठा है, इसलिए हमें प्रचलित भाषा और आलंकारिक परंपराओं का मोह छोड़कर नवीन भाषा, नवीन प्रतीक, नए उपमानों का सहारा लेना पड़ेगा। फलतः 'प्रयोगवाद' का निर्माण हुआ। यह विचारधारा (प्रयोगवाद) 'प्रगतिवाद' की विरोधी विचारधारा थी।

उद्भव के ओर कारण :-

1. प्रगतिवादी कवि मध्यवर्गीय जीवन की चेतना का प्रकाशन करते-करते ऊब गए तब उनमें अहंवाद और वैयक्तिकता की भावना आई। युरोपीय साहित्य के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित प्रवृत्तियों का अत्याधिक प्रभाव उस युग की कविता पर अत्याधिक था। इसलिए यौन वर्जनाओं का उद्घाटन एवं यौन संबंधी प्रतीकों की प्रचुरता प्रयोगवाद में स्वीकारी गई।

2. धर्मवीर भारती की राय से - प्रयोगवाद ने नई परिस्थितियों से प्रभावित नई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नए काव्यरूप, नई गठन खोजी। वह काव्य का विकास और प्रगति होने में सहयोगी सिद्ध हुई। विकास का यह एक महत्वपूर्ण चरण था।

3. रामेश्वर शर्मा की राय से :-

   क) प्राचीन सौंदर्य के मानदंड रूढ़िबद्ध हो चुके थे। अतः नए मानदंडों की स्थापना अनिवार्य थी।

   ख) जब किसी नई मान्यता की स्थापना की जाती है तब संघर्ष अटल होता है।

   ग) रुढ़ एवं परंपराबद्ध अभिव्यंजना पद्धति जब समर्थ नहीं रहती तब लेखक या कवि के मानस में एक संघर्ष पैदा होता है।

   घ) नवीन वस्तु एवं प्राचीन शैली के संघर्ष के फलस्वरूप नवीन शिल्प का आग्रह और सक्षम नवीन प्रतीक एवं उपमानों का ग्रहण किया गया।

4. डॉ. देवराज :-

इन्होंने नवीन कविता का उद्‌भव एवं विकास इसप्रकार दिखाया, "पुरानी कविता रूढ़िग्रस्त एवं अरोचक हो उठी, दूसरे काव्यभाषा को जनभाषा के निकट लाना है अथवा काव्य निबंध अनुभूति को जीवन के संपर्क में लाना है, बदलते हुए जीवन की नई संभावनाओं के उद्‌घाटन के लिए मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए नवीन प्रयोग करने लगे।

5. अज्ञेय जी की राय है कि प्रयोगशील कविता में नए सत्यों या नई यथार्थताओं का जीवित बोध हैं।

6. पं. नंददुलारे वाजपेयी :- कहते हैं कि प्रयोगवाद 'अस्वस्थ धारा' है। वे आगे कहते हैं कि किसी भी अवस्था में प्रयोगों का बाहुल्य वास्तविक साहित्य सृजन का स्थान नहीं ले सकता।

7. गजानन मुक्तिबोध का कहना है कि हिंदी की वर्तमान प्रयोगवादी कविता में हृदय और मस्तिष्क, अनुभूति और उक्तिवैचित्र्य के उचित समन्वय की आवश्यकता है।

प्रयोगवादी काव्यधारा की अवस्थाएँ :-

1. आरंभ :-

1943 में अज्ञेय द्‌वारा संपादित 'तारसप्तक' से माना जाता है।

सात कवि :-

अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, डॉ. रामविलास शर्मा।

2. दूसरा तारसप्तक :-

1951 में प्रकाशित।

सात कवि :-

भवानीप्रसाद मिश्र, शकुंतला माथुर, हरिनारायण व्यास, समशेर बहाद्‌दुर, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती।

3. तीसरा तारसप्तक :-

इसके बाद चौथा तारसप्तक भी प्रकाशित हुआ। 'पाटल' और 'दृष्टिकोण' नामक मासिक पत्रिकाओं में प्रयोगवादी कविताएँ प्रकाशित होने लगी।

प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रधान विशेषताएँ :-

1. घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद :-

प्रयोगवादी कविता के कवि की अंतरात्मा में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद इतनी दृढ़ता के साथ बैठा हुआ है। वह सामाजिक जीवन के साथ किसी भी तरह समन्वय नहीं कर सकता। उनकी अनुभूति का केंद्र 'अहं' है। इनकी वाणी में 'मैं' की पुकार हैं और 'अहम्' का विस्फोट है।

2. अतिनग्न यथार्थवाद :-

प्रयोगवादी काव्य में दूषित मनोवृत्तियों का चित्रण असीम एवं पराकाष्ठातक पहुँचा है। प्रयोगवादी साहित्य में अरूचिकर, अश्लिल, ग्राम्य, समाज से बहिष्कृत ऐसी बातों का यथार्थवाद के नामपर चित्रित किया जाता है। ऐसे चित्रीकरण में वह गौरव मानता है।

3. निराशावाद :-

प्रयोगवादी कवि केवल वर्तमान से नाता रखते हैं। वे निराशा से घिरे हैं तथा अतीत की प्रेरणा तथा भविष्य का उल्लास से अलग रहना पसंद करते हैं।

4. अति बौद्धिकता :-

प्रयोगवादी कविता में अनुभूति की अपेक्षा बौद्धिक कसरत की मात्रा अधिक है। ये कवि पाठक के हृदय को तरंगित करने के बदले उसकी बुद्धि को अपनी पहेली, बुझौवल के चक्रव्यूह में फँसाकर तंग करना चाहते हैं।

5. वैज्ञानिक युगबोध, नए मूल्यों का चित्रण :-

प्रयोगवादी कवि मूल्यों के विघटन से अद्भुत, कुत्सित विकृतियों का चित्रण करते हैं। इनकी कविता में यातना, घुटन, द्वंद्व, निराशा, अनास्था, क्षणभंगुरता आदि का अंकन चित्रण है।

6. उपमानों की नवीनता :-

रूपकों की और अलंकारिकता के संबंध में प्रयोगवादी कवि नवीनता ढूँढते है। उनकी कविता, कविता न रहकर 'कारिगरी' बनती है।

7. विषय परिधि :-

प्रयोगवादी कवियों की कविता की परिधि अत्यंत व्यापक है। इसलिए उसमें चींटी से लेकर हिमालय तक सब प्रकार के पदार्थों को ग्राह्य मानकर स्वीकार किया गया।

8. छंद :-

प्रयोगवादी कवि प्रायः छंद-बंधन को अस्वीकार कर मुक्तछंद की परंपरा में विश्वास रखते हैं। शैली में भी उन्होंने नए-नए प्रयोग किए हैं।

4. नई कविता

प्रस्तावना :-

प्रयोगवादी कविता का अगला चरण 'नई कविता' है। जब प्रयोगवादी कविता के बारे में भी काफी चर्चा हुई, अच्छे बुरे मत प्रदर्शित हुए, एक समय आ गया जब कविता को 'प्रयोगवादी' की जगह 'नई कविता' कहना शुरु हुआ।

यह एक मिश्रित काव्यधारा है। छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, समाजवादी, वैयक्तिकताप्रधान आदि तरह से उसका स्वतंत्र प्रवाह बाद में शुरु हुआ। इसमें नए भाव, नए शिल्प, नई भाषा, नए विचार आदि के कारण 'नवीनता' आ गई।

हिंदी जगत् में नई कविता के अर्थ दो तरह से किए जाते हैं। एक तो प्रयोगवादी कविता जो पहले प्रगतिवादी कहलाई जाती थी और दूसरी देश के आजादी के बाद की कविता। मतलब आजादी के बाद से आजतक की संपूर्ण हिंदी कविता को नई कविता कहा जा सकता है।

इसमें प्रयोगवादी, प्रगतिवादी, रोमान्सपरक, हालावादी, परंपरावादी, प्रतीकवादी आदि भिन्न काव्यधाराओं से प्रभावित एक मिले-जुले से काव्य का सृजन हो रहा है।

नई कविता की विशेषताएँ :-

1. संत्रास, कुण्ठा, घुटन, दर्द, उबकाई जैसे भावों की अभिव्यक्ति :-

और लोगों की तरह कवियों के लिए स्वतंत्रता के बाद का काल 'मोहभंग' का काल रहा। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाली आशा-आकांक्षाओं का स्वप्न अब टूट चुका था। बढ़ती हुई बेरोजगारी, अत्याचार ने जीने की विवशता को स्वीकार लिया था। सामान्य मनुष्य मन-ही-मन घुटन का अनुभव करने लगा था। एक असहायता, मजबूरी से उसे उबकाई आने लगी। उस समय के कवियों ने इन सब भावों को अपने शब्द दे दिए।

2. अस्तित्ववादी चिंतन :-

भारतीय चिंतन में 'जीने की चाह' (जिजीविषा) के बारे में काफी विचार किया गया है। आधुनिक काल में द्वितीय महायुद्ध की विभिषिका ने मनुष्य को मृत्यु को वरण करने की स्थिति में ला दिया। मृत्यु भी जीवन का सत्य है यह दिखला दिया। नई कविता के अनेक कवियों ने अस्तित्ववादी चिंतन को अपनी संवेदना का अंग बनाकर अभिव्यक्ति प्रदान की।

3. रसानुभूति की अमान्यता :-

नई कविता में रस की अनुभूति को स्वीकार नहीं किया जाता। पारंपारिक मानदंडों में काव्य के लिए रस का सर्वाधिक वर्चस्व रहा था। परंतु नई कविता के कवि रसानुभूति को नहीं बल्कि सहानुभूति तथा युगीन संवेदना को मूल्य मानते हैं। रसानुभूति को वे क्षणैक मानते हैं।

4. विद्रोह के स्वर :-

नई कविता का युग विद्रोह का और संघर्ष का काल रहा है। सुखद स्वप्नों का भंग हो गया। अतः समाज में एक तरह की निराशा दिखाई दी। नवयुग के जागरूक कवि युगीन स्थिति के प्रति विद्रोह के स्वर मुखरित करने लगे। इसी भावना को कविता में वाणी मिली।

5. अकेलापन और अजनबीपन :-

समाज की दुख दर्दभरी भागदौड़ और भीड़ के बीच व्यक्ति खुद को अकेला महसूस करने लगा। कई बार हर बार उसे अपनी तरफ से समझौता करने की बारी आई। व्यवहार, रिश्तों में एक तरह का अजनबीपन आ गया और इसी भाव को कवि अपनी कविता में व्यक्त करने लगे।

6. क्षणानुभूति :-

मनुष्य हर क्षण को मूल्यवान मानता है। वह अनुभूति की गहराई को, खरेपन को मानता है। समय से ज्यादा आत्मानुभूति क्षणानुभूति को इसीलिए उसने मुखर किया।

7. अतिशय वैयक्तिकता :-

अब संसार का माहौल ऐसा बन गया था कि व्यक्ति अपने आप में केंद्रित है। कष्ट, वेदना और संघर्ष को वह स्वयं अकेला भोग रहा है। यही अकेलापन आत्मकेंद्रित भावना के कारण अपनी कविता में अभिव्यक्त करता गया।

8. व्यंग्य की प्रवृत्ति :-

नई कविता में व्यंग्य काफी मात्रा में है। नया कवि सजग कलाकार है। समाज के प्रति होनेवाले अपने दायित्व को वह भलिभाँति जानता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले देखे गए सपनों के बाद वस्तुस्थिति में होने वाली बेरोजगारी, दुख-दर्द, शोषण, कष्ट आदि को वह अपने शब्दे अपना स्वर देना चाहता हैं।

9. मिथकीय प्रयोग :-

मिथकों का प्रयोग नई कविता में काफी मात्रा में पाया जाता हैं।

10. शिल्प विधा में नवीनता :-

नई कविता में पाई जानेवाली शिल्प विधा की नवीनता इस प्रकार है -

उपमानों की नवीनता - पुराने उपमानों की जगह नई कविता में उपमान भी नए थे। प्रकृति की जगह महानगरीय जीवन की फैक्टरियाँ, बड़ी-बड़ी इमारतें, ज्ञान-विज्ञान, मनोविज्ञान इसमें जुड़ गया।

* * *

-: प्रश्नमंजुषा :-

दीर्घोत्तरी प्रश्न :-

1. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा का सामान्य परिचय दीजिए।
2. हिंदी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. भाषा, साहित्य तथा भाषाक्षेत्र का विचार करते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन स्पष्ट कीजिए।
4. आदिकालीन साहित्य पर तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का असर किस प्रकार हुआ था?
5. आदिकाल को 'वीरगाथाकाल' क्यों कहा जाता है? और क्या यह नामकरण उचित हैं?
6. रासो काव्य की परंपरा बताते हुए उसके विभिन्न अर्थ स्पष्ट कीजिए।
7. रासो काव्य के विभिन्न प्रकार बताते हुए रासो काव्य की प्रवृत्तियाँ बताईए।
8. भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का सुवर्णयुग क्यों माना जाता हैं? स्पष्ट कीजिए।
9. भक्तिसाहित्य के निर्माण में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थिति प्रभावशाली रही है, स्पष्ट कीजिए।
10. निर्गुण भक्तिसाहित्य की ज्ञानाश्रयी शाखा की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए। संत कबीर के आलोक में।
11. जायसी के साहित्य की चर्चा करते हुए निर्गुण भक्तिसाहित्य की प्रेमाश्रयी शाखा की प्रवृत्तियाँ बताईएँ।
12. सगुण भक्तिसाहित्य की विशेषताएँ बताईए।
13. संत तुलसीदास के साहित्य का विचार करते हुए सगुण भक्ति साहित्य की प्रवृत्तियाँ बताईए।
14. संत सूरदास की रचनाओं की जानकारी देते हुए कृष्णभक्ति की विशेषताएँ बताईए।
15. भक्तिकालीन साहित्य की सामाजिक उपादेयता किन्हीं दो संतकवियों के साहित्य के आधार पर दीजिए।
16. भक्तिकालीन नीति साहित्य का परिचय दीजिए।
17. रीतिकाल को शृंगारकाल क्यों कहा जाता है?
18. रीतिकाल की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थिति स्पष्ट कीजिए।
19. रीतिकालीन साहित्य की शैलीगत प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।
20. रीतिकालीन वीर रसात्मक काव्य तथा भक्तिकाव्य का वर्णन कीजिए।

21. हिंदी गद्य के लिए कारणीभूत परिस्थितियों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
22. भारतेंदु युगीन विविध साहित्य विधा तथा उनकी विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
23. 'हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास काल का विभाजन और प्रेमचंद युगीन उपन्यासों की विशेषताएँ' इस विषय पर सोदाहरण विवेचन कीजिए।
24. 'कहानी विधा के विकास में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का स्थान, उसकी शिल्पगत प्रवृत्तियाँ तथा उनका वर्ण्य विषय' विस्तार से लिखिए।
25. 'भारतेंदु युगीन नाटककार सभी तरह की विशेषताओं से संपन्न नाटककार रहे' प्रस्तुत विधान की पुष्टी कीजिए।
26. हिंदी साहित्य में हिंदी निबंध विकास वर्णन कर उसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का योगदान स्पष्ट कीजिए।
27. आधुनिक हिंदी के विकास में आलोचना के उद्भव तथा विकास का वर्णन कीजिए।
28. भारतेंदु युग के प्रमुख कवियों की कृतियों के आधार पर उस युग के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।
29. छायावाद की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए प्रमुख छायावादी कवियों की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
30. प्रयोगवादी कविता के उद्भव के कारण तथा प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रधान विशेषताएँ विषय पर विस्तार से लिखिए।

टिप्पणियाँ :-

1. जैन धार्मिक रासो
2. पृथ्वीराज रासो
3. गोरखनाथ
4. चंदवरदाई
5. अमीर खुसरो
6. विद्‌यापति
7. जायसी
8. मीरा
9. नंददास
10. रसखान
11. रहीम
12. चिंतामणि
13. कविदेव
14. केशवदास
15. सेनापति
16. मतिराम
17. पद्‌माकर
18. घनानंद
19. भूषण
20. बिहारी
21. प्रेमचंदयुगीन उपन्यास की विशेषताएँ
22. स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों के प्रकार
23. कहानीकार जैनेंद्रकुमार
24. साठोत्तर कहानी
25. साठोत्तर युग के नाटक
26. साठोत्तर युग के उपन्यास
27. समांतर कहानी
28. प्रेमचंदोत्तर कहानी की विविध शैलीयाँ
29. भारतेंदु युग के नाटकों की विशेषताएँ
30. द्‌विवेदी युग के निबंधों की विशेषताएँ
31. आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल
32. नई आलोचना
33. मैथिलीशरण गुप्त
34. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा
35. छायावाद के उद्‌भव के कारण
36. छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
37. कवि जयशंकर प्रसाद
38. कवियित्री महादेवी वर्मा
39. प्रयोगवादी कविता
40. नई कविता

* * *

-: संदर्भ ग्रंथ :-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास - संपा. डॉ. नगेंद्र
3. हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
4. हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास - बाबू गुलाबराय
5. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
6. हिंदी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
7. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा
8. हिंदी साहित्य : एक परिचय - डॉ. त्रिभुवन सिंह
9. हिंदी रीति साहित्य - डॉ. भगीरथ मिश्र
10. रीतिकाव्य की भूमिका - डॉ. नगेंद्र
11. रीतियुगीन काव्य - डॉ. कृष्णचंद्र वर्मा
12. हिंदी रीतिकालीन काव्य पर संस्कृत काव्य का प्रभाव - डॉ. दयानंद शर्मा
13. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
14. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य - रामरतन भटनागर
15. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - डॉ. रीताकुमार
16. नए प्रतिनिधि कवि - डॉ. हरिचरण शर्मा
17. हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना
18. हिंदी साहित्य की नवीन विधाएँ - डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया
19. हिंदी के प्रतिनिधि निबंधकार - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
20. हिंदी उपन्यास - उद्भव और विकास - डॉ. सुरेश सिन्हा
21. उपन्यास : स्थिति और गति - डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
22. हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - श्रीनारायण चतुर्वेदी दद्दा

* * *